परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणाः–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

वर्द्धमान पुराण

ग्रन्थकर्त्ता

नवल जी शाह

सम्पादक

पन्नालाल जी जैन वसन्त

प्रकाशक

दिगम्बर जैन पुस्तकालय

सूरत (गुजरात)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त-शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त-चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या-चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्रायः होता है। फलतः उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तृत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि-परिवार

श्री वर्द्धमानाय नमः।

कविरत्न श्री नवलशाहजी विरचित—

वर्द्धमान पुराण

मालाल जैन 'वसंत' साहित्याचार्य।

दिगम्बर जैन पुस्तकालय—सूरत।

॥ ॐ ॥

कविरत्न श्री नवलशाहजी विरचित—

श्री वर्द्धमानपुराण

[भाषा छन्दोबद्ध]

संशोधक और सम्पादक—

श्री० पं० पन्नालालजी जैन 'वसंत' साहित्याचार्य, सागर।

पुस्तक नं०
मूल्य
विषय

प्रकाशक—

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैनपुस्तकालय—सूरत।

हिंगनघाट नि० श्रेष्ठिवर्य निहालचन्दजी
दोशीकी ओरसे 'जैनमित्र' के ४२ वें
वर्षके ग्राहकोंको भेट।

प्रथमावृत्ति] वीर सं० २४६८ [प्रतियां १४००

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस—सूरतमें मूलचन्द किसनदास
कापड़ियाने मुद्रित किया।

मूल्य २), कपड़ेकी जिल्द २।)

मूलचंद किसनदास कापड़िया
प्रकाशक
दिगंबर जैन पुस्तकालय

प्रकाशकीय निवेदन।

श्री० पं० पन्नालालजी जैन साहित्याचार्य 'वसंत' सागर— अत्यन्त परिश्रमी और जैन साहित्य उद्धारके परम प्रेमी एक उत्तम विद्वान हैं। आपने हमें "पंचस्तोत्रसंग्रह" और "मोक्षशास्त्र" सान्वयार्थ व सटीक तैयार करके प्रकाशनार्थ दिया। उसके बाद आपने हमें लिखा कि मैंने बुंदेलखण्डमें सं० १८०० में हुए एक जैन कविरत्न श्री० नवलशाहजी कृत 'वर्द्धमानपुराण' शास्त्र नामक पद्यशास्त्रका संशोधन कर उसे प्रकाशनार्थ तैयार किया है, उसे आप प्रकट कर दें तो इस ग्रन्थका उद्धार होकर बुन्देलखण्डके इन जैन कविकी उत्तम कृति प्रकाशमें आजावे।

हमने विचार किया कि यदि इस ग्रन्थको किसी दानीकी ओरसे उपहार स्वरूप प्रकट करनेका प्रयत्न किया जाय तो इसका प्रकाशन व प्रचार सुलभतया हो सकता है। अत: इसके लिये 'जैनमित्र' में सूचना निकाली, तो दो दानी महाशयोंने इस विषयमें हमसे पूछताछ की; उनमेंसे हिंगनघाट निवासी श्रीमान् सेठ निहालचन्दजी दोशीने इसके उद्धारार्थ व जैनमित्रके ग्राहकोंको वितरणार्थ ५००) देना स्वीकार किया। लेकिन इतनेसे इस अपार मंहगीमें यह कार्य नहीं हो सकता था, तो भी हमने साहस किया कि शेष रुपये अपने दिगम्बर जैन पुस्तकालय सूरतसे लगा देंगे, लेकिन इसका प्रकाशन व प्रचार अवश्य कर देना चाहिये, अत: पण्डितजीको उत्तर देकर इस ग्रन्थकी प्रेस कापी मंगा ली व दानी महाशयको इसकी स्वीकारता दी और

'जैनमित्र' में प्रकट भी किया कि यह महान ग्रन्थ "मित्र' के ग्राहकोंको उपहार स्वरूप दिया जायगा।

इसप्रकार यह कथामय धर्मग्रन्थ प्रकाशमें आ रहा है। इस वर्द्धमानपुराणमें सिर्फ श्री वर्धमानस्वामीका चरित्र ही नहीं है, लेकिन इसमें विद्वान् कविने जैन धर्मके प्रत्येक अंगोंका वर्णन भी यथाप्रसंग किया है, जिससे यह एक धर्मशास्त्र बन गया है।

जैन साहित्यमें संस्कृत-प्राकृत पद्यमें जितने शास्त्रोंकी रचना हुई है उतनी हिन्दी भाषाके पद्य ग्रन्थोंकी नहीं हुई है। कवि भूधरदास-जीके पार्श्वपुराण छंदोबद्ध काव्य–ग्रन्थकी रचनाके बाद इस वर्द्धमान-पुराणकी रचना हिन्दी कवि नवलशाहजीने सं० १८२५ में इतनी विद्वत्तापूर्वक की है कि इसके विद्वान संपादकने इसे 'महाकाव्य' कहा है, जो उचित ही है।

ग्रन्थके अन्तमें कवि नवलशाहजीने अपना परिचय देते हुये अपनी गोलापूर्व जातिकी उत्पत्ति श्री आदिनाथ तीर्थंकर द्वारा की गई बतलाई है। यह आपने जातिप्रेम वश या किंवदन्तियोंके आधारसे लिखा होगा ऐसा प्रतीत होता है।

जातियोंकी उत्पत्ति किसीप्रकार इतनी पुरानी हो ही नहीं सकती। श्री आदिनाथस्वामीके समयमें श्री भरत चक्रवर्तीने क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमेसे ब्राह्मण वर्णकी स्थापना की थी अर्थात् उस कालमें सिर्फ ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह ४ वर्ण ही थे. जातियोंका कोई नाम-निशान ही नहीं था, तब गोलापूर्व जातिकी स्थापना उस वक्त कैसे हो सकती है? वर्तमानमें प्रचलित किसी भी जातिकी स्थापनाका काल १००० या १२०० वर्षसे पूर्वका नहीं है। श्री० सम्पादक-

जीने भी टिप्पणीमें व अपने आद्य निवेदनमें इस बातको स्पष्ट कर दिया है कि गोलापूर्वोंकी उत्पत्ति उस समय हो ही नहीं सकती। अतः यह कथन भ्रमपूर्ण है।

इस पद्य ग्रन्थमें सम्पादकजीने जगह २ टिप्पणियां दी है तथा आद्य निवेदनमें इस काव्य ग्रन्थकी महत्ता दर्शाई है तथा १०१ विषयोंकी ऐसी बृहत् सूची तैयार कर दी है जिसको पढनेसे संक्षेपमें महावीरचरित्रका सार मालूम होजाता है। सारांश यह है कि **श्री० पं० पन्नालालजी जैन साहित्याचार्यने** इस ग्रन्थके संपादन और संशोधनमें काफी परिश्रम करके इसे सर्वांगसम्पन्न बना दिया है तथा यह कार्य आपने सेवाभावसे ही किया है, जिसके लिये आप अनेकशः धन्यवादके पात्र हैं। और आपकी यह जैन साहित्यसेवा चिरकालतक स्मरण रहेगी। जैन समाज आपकी इस सेवाके लिये आपका जितना भी उपकार माने कम है।

अन्तमें इस ग्रन्थके दानी **श्री० सेठ निहालचन्दजी दोशी हिंगनघाट निवासी**का उपकार माने व आपको धन्यवाद दिये बिना हम नहीं रह सकते, जिन्होंने इस ग्रन्थको प्रकट कराकर 'जैनमित्र' के ४३ वें वर्षके ग्राहकोंको व स्नेही-सम्बन्धियोंको भेट देनेकी व्यवस्था की है। इस ग्रन्थकी कुछ प्रतियां विक्रयार्थ भी निकाली गई है, आशा है कि उनका शीघ्र ही प्रचार हो जायगा ताकि इसकी दूसरी आवृत्ति प्रकट करनेका मौका मिल सके।

सूरत-वीर स० २४६८
आश्विन वदी १
ता० २५-९-४२

निवेदक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
—प्रकाशक।

संक्षिप्त जीवन परिचय—

श्रेष्ठिवर्य निहालचन्दजी दोशी—हिंगनघाट निवासी।

सेठ श्री निहालचन्दजी दोशी मारवाड प्रान्तमें अजमेर शहरके निवासी सेठ फूलचन्दजी दोशीके सुपुत्र है।

आपका जन्म वि० संवत १९४२ मिती श्रावण सुदी ७ ता० १७–८–१८८५ मे हुआ था। जब आपकी उम्र करीब आठ वर्षकी थी उस समय सेठ चुन्नीलालजी चांदमलजी दोशी हिंगनघाट निवासी फर्मके संचालक सेठ चादमलजी दोशीने आपकी योग्यतासे मुग्ध होकर ता० १०–६–१८९३ को गोदमें लिया। आपकी फर्म-संचालनकी सुयोग्यता देखकर विक्रम सं० १९५६ मिती माह सुदी ५ को नागपुरमे जोहारमलजी छोगालालजीके यहा विवाह संस्कार करा दिया गया।

आपने इस फर्मका कार्य १४ वर्षकी उम्रसे संभालकर अपनी दीर्घदृष्टि तथा व्यवहारकुशलता आदिसे उन्नति करते हुये खण्डेलवाल समाजके मुख्य फर्मोंमें गिनाया।

आप शुरूसे धर्मप्रेमी है, वर्तमानमें आपका नित्य कर्म देव-पूजन स्वाध्याय सामायिकके बाद दुकान पर जाना अनिवार्य है।

आपके कर्मवशात् अभीतक आपको कोई संतान नहीं हुई तब आपने इस फर्मका कार्य संभालनेके लिये अपने सगोत्री सेठ बिहारीलालजी दोशी पेलखू जि० मथुरा निवासीके सुपुत्र चि० बाबू सूरजमलजीको मथुरा ब्रह्मचर्याश्रमसे लाकर गोद लिया है।

आपको जिस समयसे इस अनित्य संसारका अनुभव हुआ है और अपने कर्तव्यका विचार आया उस समयसे आपने मुख्य २ सिद्धक्षेत्र तथा अतिशयक्षेत्रोंकी यात्रा सकुटुम्ब तथा अन्य असमर्थ सजातीय भाई बहिनोंको साथमें लेकर कईवार की, तथा साथ २ क्षेत्रोपर आवश्यकीय कार्योंकी पूर्तिके लिये हजारों रुपयोंका दान करके-पुण्योपार्जन किया है।

क्षेत्रका नाम	कार्य	लागत रकम.
मांगीतुंगीजी	धर्मशालाके अन्दर कम्पाउन्डमें विशाल कुवा तैयार कराया	३५००)
नासिक	धर्मशालामें कुवा तैयार कराया	५००)
पावागिरजीमें	कुवा तैयार करनेके लिये	५००)
कारकलमें	कुवा तैयार करनेके लिये	५००)
मुक्तागिरजी	श्री बाहुबलिस्वामीकी मूर्ति स्थापन करनेके लिये	१०००)
गिरनारजी	प्रथम पहाड़में पानीका कुण्ड मन्दिरजीके नीचे बनानेके लिये	११००)
सिंदी	मन्दिरका जीर्णोद्धार करनेमें	१०००)

इसके अलावा आप सकुटुम्ब तथा सजातीय असमर्थ बन्धुओंको लेकर जब श्री गोमटस्वामीके महा मस्तकाभिषेकके समय मेलेमें गये उस समय आपने ३०००) रुपया खर्चकर मुख्य २ क्षेत्रोंकी यात्रा कराई। इसतरह आपने अभी अभी तीन वर्षमें ११०००) रुपयाका दान करके अपनी कमाई हुई लक्ष्मीका सदुपयोग किया।

आपने दर दर जाकर मुनिराजोंको आहारदान व शास्त्रदान आदि देकर पुण्योपार्जन किया।

आपके फर्म द्वारा निर्मापित डिगनघाटमें दो मन्दिर हैं, जिनकी कुल व्यवस्था कारभार संभालते हुये आगेके लिये मंदिरोंकी व्यवस्था सुचारुरूपसे चलानेके लिये करीब ६००) रुपया सालकी आयकी स्टेटका इन्तजाम कर दिया है तथा जिला वर्धामें सिन्दी नामक ग्रामके मंदिरका जीर्णोद्धार कराकर उसका कारभार आप चलाते हैं।

इसके अलावा इस चातुर्मासके उपलक्षमें आपने एक सरस्वती भवनकी स्थापना की, जिसमें मुख्य मुख्य ग्रन्थोंका संग्रह करके बहुत बड़ी कमीकी पूर्ति की। साथमें आपके विचार इस समय एक अद्वितीय धर्मप्रभावना करनेके हृदय समुद्रमें उत्पन्न हुये, लेकिन वर्तमान वातावरणके कारण प्रत्यक्षरूपसे करनेमें असमर्थ रहे, किन्तु आप हमेशा श्री महावीरस्वामीसे यही प्रार्थना करते रहते हैं कि हमारी यह मनोकामना शीघ्र सफल हो।

इसप्रकार आप इतने थोड़े समयके अन्दर क्षेत्रोंकी कमीकी पूर्ति करते हुये पुण्योपार्जन करके यशके भागी बने।

श्री महावीर दि० जैन वाचनालय
श्री महावीर जी (राज.)

श्रीमान सेठ निहालचन्दजी दोशी, हिंगनघाट।

जन्म सं० १९४२ श्रावण सुदी ७ ता० १७-८-८५

[इस ग्रन्थके दानी]

आपको नित्य स्वाध्याय करते हुये करीब चालीस वर्ष होने आये लेकिन जब शास्त्र ज्ञानमें विशेष उन्नति नहीं हुई तब आपको कर्मोदयका आभास हुआ तब आपने ज्ञानावरण कर्मके क्षय करनेके लिए 'जैन-मित्र के ग्राहकोंको तथा कुछ स्नेही संबंधी भाइयोंके स्वाध्यायार्थ श्री वर्द्धमानपुराणकी ११०० प्रतियां भव्यात्माओंको भेंट करनेके लिये स्वीकारता दी।

आपकी धर्मपत्नीका स्वभाव बहुत ही सरल और शान्त है। आप हमेशा अपने पतिके कार्योंमें पूर्ण सहयोग देती है तथा समयानुसार नित्य धार्मिक क्रियाओंको करती हुई घरका कारभार संभालती है।

—प्रकाशक।

शुद्धाशुद्ध पत्रक।

पृष्ठ	छन्द नम्बर	अशुद्ध	शुद्ध
६	४१	अर विन्द	अरविन्द
१०	७४	चादन	चाटन
१३	३	सुदर्षन	सुदर्शन
१५	१९	काननमे	काननमें
१६	३०	दुःख	दुख
१७	४१	जहाँ	जहँ
२३	९९	तानकी	तामकी
२४	१०८	जाय	जाइ
२६	टिप्पणीमें	१ कुबेर	१ कनेर
२७	१३३	कुपथ पाक पाक	कुपथ पाक
२८	१	अआचरैं	आचरैं
२८	८	कुतुही	तुतुही
२९	१८	मदफर	हफर
२९	१९	तिम	तीम
३०	२१	निज पान	निज निज पान
३१	२१	मफल	मकल
३१	३४	नरक दुःख	नरकाति दुख
३३	५९	मृग	शृग
३४	६२	यही	याही
३७	[illegible]	ज्वलनजटि	ज्वलनजटी
३८	१०७	रक्र	चक्र
३९	११३	शार	शार
३९	११६	लैं	लैं
४०	११९	सम्हारन	सम्हार न

पृष्ठ	छन्द नम्बर	अशुद्ध	शुद्ध
४०	१२३	तिपृष्ठ	त्रिपृष्ठ
४३	१६०	देह तह तहँ	देह तहँ
४६	१८२	भृगतैं	भुगतै
४७	१	त्रिजग	त्रिजगत
४७	७	कृपावन्त	कृपावन्त
४७	टिप्पणीमें	छोडा	थोडा
४८	१२	वध विन	वर्धावन
४८	१३	बहु	बहुत
५३	६६	ओर	अरु
६०	१३१	नहीं	नहिं
६१	१४२	कापकौ	कायकौ
६७	३७	हम चढ़ि	हय चढ़ि
६७	४१	मनि	पुनि
६९	५८	मनको	बलको
७४	१०७	चिन्दानन्द	चिदानद
७४	१०७	सर्गोत्तम	सर्वोत्तम
७५	११०	नव भव	नर भव
७७	१२५	तज	तजे
७८	१३४	पुण्यजनित	पुण्यजनितबहु
८०	८	निशङ्कादिक	निःशङ्कादिक
८५	टिप्पणीमे	उपपाद शैया	उपपाद शय्या
८६	६८	आदि तरु	आदिक तरु
८७	७१	वल्कमिका	वल्कभिका
८८	[illegible]	मुगन्ध	सुगन्ध
९५	२७	दह	द्रह
९६	३६	इजी	दूजी
१००	[illegible]	सोतादा	सीतोदा

पृष्ठ	छन्द नम्बर	अशुद्ध	शुद्ध
१०१	टिप्पणीमें	दिया है	दी है
१०४	१११	नेन	नैन
१०५	११८	नम्र	नम्र
१२१	४५	जन्मासैक	जन्मा नैक
१२२	५८	कल्पद्रुम	कल्पद्रुप
१४८	१७२	पश्चिम	पश्चिम
२०७	३१२	छाजईमें	छाजई
२२५	३६	निजर	निर्जर
२३७	१६४	मधुर	मधुर
२५१	८२	निमल	निर्मल
२६५	६०	नारक	नारक
२६६	टिप्पणीमें,	मान	सान
२७२	प्रथम गाथामें	णवहि	णवदि
२७८	टिप्पणीमें,	घटाकर	घटाकार
२७९	१७८	छेदोपस्थान	छेदोपस्थापन
२८०	१८१	तीनके	तिनके
२८०	१८७	इतने	इनते रहित
२८८	टिप्पणीमें,	सर्वघाति, सर्वघाति	सर्व घाति
३०६	टिप्पणीमें,	भुन्तामध्ये	भ्रूलतामध्ये
३५५	५१	नेनु	नैनू
३६७	१५९	जे न करें	'जै नर करे'
३७५	२२८	चक्वी पद	चक्री पद
३७७	२५२	हस्तिनागपुर,	हस्तिनागपुर
३८५	३३२	मुम्ब सों	मुख सों

आद्य निवेदन।

हिन्दी साहित्यके विचारक विद्वानोंका आज यह स्पष्ट मत होगया है कि हिन्दी भाषाकी उत्पत्ति और विकासमें जैन कवियोंने सबसे ज्यादा भाग लिया है। हिंदीभाषाका उत्पत्तिकाल विक्रम संवत् ७१० माना जाता है। और उसकी उत्पत्ति प्राकृत तथा अपभ्रंश भाषासे हुई मानी जाती है। उसके बाद उसमें क्रमिक परिवर्तन और परिवर्धन होते रहे—अनेक जैन अजैन कवियोंने उसके साहित्यको पल्लवित किया है। जिसप्रकार संस्कृत कवियोंका ध्यान पद्य रचनाकी ओर ही अधिक रहा है उसीप्रकार हिन्दी कवियोंका ध्यान भी पद्य रचनाकी ओर ही अधिक रहा है।

हिन्दी साहित्यमें आज जो गद्य साहित्य उपलब्ध है वह बहुत प्राचीन नहीं है। मेरी इच्छा थी कि मैं यहां उत्पत्ति-कालसे लेकर आजतककी गद्यपद्यरूप हिन्दीके नमूने उपस्थित करता तथा जैन कवियोंने अपनी रचनाओंके द्वारा उसके विकास और वर्धनमें जो भाग लिया है उसका क्रमपूर्ण परिचय पाठकोंके सामने रखता, परन्तु इस मंहगाईके जमानेमें उस सबका यहां उल्लेख करना उचित नहीं मालूम होता। इसलिये सामग्रीका संकलन रहते हुए भी उस विषयमें यहां कुछ भी नहीं लिखता।

ग्रन्थका आधार और उसका अन्तःपरीक्षण।

यह वर्धमानपुराण ग्रन्थ कविवर नवलशाहजीकी पद्यात्मक रचना है। ग्रन्थकर्ताने लिखा है कि हमने इसकी रचना आचार्य सकलकीर्ति द्वारा विरचित संस्कृत वर्धमानपुराणके अनुसार की है, परन्तु दोनोंको देखनेसे पता चलता है कि कविवरने अपने ग्रन्थमें संस्कृत वर्धमानपुराणसे कथाभाग मात्र ही लिया है, इनकी वर्णनशैली स्वतन्त्र है। ग्रन्थकर्ताने अपने इस ग्रन्थमें धर्मशास्त्रका वर्णन भी बहुत विस्तारके साथ किया है। मेरा तो ऐसा ख्याल है कि रचना करते समय कविका यह ख्याल रहा है कि मैं इसे केवल काव्यग्रन्थ न बनाकर धर्मशास्त्रका भी ग्रन्थ बना दूं और इसीलिये उन्होंने इसमें धर्मशास्त्रके प्राय प्रत्येक अंगोंका विस्तारके साथ वर्णन किया है।

कविवर भूधरदासजी द्वारा रचित हिन्दी पद्यबन्ध पार्श्वपुराण हिन्दीका एक स्वतन्त्र महाकाव्य कहा जाता है, इसकी रचना इस ग्रन्थसे पहले हो चुकी थी। दोनोंकी रचना देखनेसे मालूम होता है कि वर्धमानपुराणके रचयिताने पार्श्वपुराणका अच्छी तरह अवलोकन किया है, क्योंकि इस ग्रन्थमें कितने ही ऐसे प्रकरण मिलते हैं जिनकी रचना प्राय पार्श्वपुराणकी पद्धतिपर ही हुई है, परन्तु इसमें धर्मशास्त्रका वर्णन उससे भी कहीं अधिक मात्रामें हुआ है। इन्होंने धर्मशास्त्रके वर्णनमें हरिवंशपुराण, चरचा शतक, ज्ञानार्णव, द्रव्यसंग्रह, गोम्मटसार, तत्त्वार्थसूत्र और त्रिलोकसारका विशेष आश्रय लिया मालूम होता है।

कहीं कहीं धर्मशास्त्रके वर्णनमें कुछ अंश ऐसे भी लिखे गये

है जिनका कुछ आधार नहीं मालूम होता और ऐसा होनेसे उनका वर्णन पूर्व परम्परासे असंगत जान पडता है, परन्तु ऐसे स्थल बहुत ही थोडे हैं और उनके नीचे हमने नोट्स भी लगा दिये है, जिससे पाठकोको किसी प्रकारकी भ्रान्ति नही हो सकेगी। जो अंश पूर्व परम्पराके विरुद्ध लिखे गये हैं उनके वैसा लिखनेमे ग्रन्थकर्ताका अभिप्राय दूषित नही जान पडता, किन्तु उन्होंने जिन संस्कृत प्राकृत सूत्र अथवा गाथाओंके आधारपर वे अंश लिखे है उन्हे उनका अर्थ समझनेमें भ्रान्ति हुई मालूम होती है, और जो संस्कृतका प्रौढ विद्वान् नहीं है उसके ऐसा होना असंभव नहीं है।

इस ग्रन्थकी रचना दोहा, चौपाई, सोरठा, गीता, जोगीरासा, इकतीसा–सवैया, चाल, पद्धति, तेईसा, गाथा, छप्पय, करखा, अरिल्ल, चर्चरी, त्रिभङ्गी और शार्दूलविक्रीडित छन्दमें की गई है, परन्तु गाथा और शार्दूलविक्रीडित ग्रन्थकर्ताकी निजकी रचना नही है। 'उक्तं च' कहकर उनका ग्रन्थान्तरोंसे उद्धरण किया है। कुछ सवैया भी दूसरे ग्रन्थोंसे उद्धृत किये गये है। ग्रन्थकर्ताने ग्रन्थके अन्तमें अपने छंदोंका परिमाण भी बतलाया है जो कि नीचे लिखे हुए चक्रमे स्पष्ट किया गया है, परन्तु छानबीन करनेपर उसका प्रमाण ठीक ठीक नहीं मिलता। हा, ग्रन्थकर्ताने सब छन्दोंका जितना जोड बतलाया है उतना अवश्य मिल जाता है। होसकता है कि इसमें हमारी गणनामें भूल होगई हो अथवा इस वर्धमान पुराणकी अनेक जगहकी अनेक प्रतियोंमें पाठ-भेद पाये जाते हैं इसलिये संभव है कि किसी अन्य प्रतिके आधारसे ग्रन्थकर्ता द्वारा कहा हुआ प्रमाण ज्योंका त्यों निकल आता हो।

छन्द नाम	ग्रन्थकर्ता द्वारा बतलाया हुआ परिमाण	उपलब्ध परिमाण
चौपाई	२९६६	२९६०
दोहा	४०८	४२१
सोरठा	१२	१०
गीता	६३	७३
जोगीरासा	५०	३६
उल्लाल	८	८
नाराच	४७	४२
पद्धरि	१८७	११४
तोटक	६	६
गाथा	१	२
छप्पय	८	७
[illegible]	१	१
अडिल्ल	२०	२०
[illegible]	६	५
त्रिभंगी	११	९
[illegible]	१	१
	३८०६	३८०३ + ३ त्रुटित

संशोधन और सम्पादन ।

हमें गत वर्ष ग्रीष्मावकाशके समय मास्टर पंचमलालजी साधेलीय द्वारा वर्धमानपुराणकी एक प्रति मिली । यह प्रति सि० कारेलाल कुन्दनलालजी सागरके मंदिरकी है । इसकी पत्र संख्या १३२½ है। सिगई बृधूलालजीने उसकी प्रतिलिपि की है, प्रतिलिपि अर्वाचीन ही है और अनभिज्ञ लेखकोंके द्वारा प्रतिलिपि होनेमें जो अशुद्धियां रह जाती हैं उनकी इसमें भी कमी नहीं है, परन्तु अपेक्षाकृत शुद्ध और सुवाच्य है । जो अशुद्धियां रही हैं वे साधारण है, उनका मूल

शब्द समझनेमें कुछ कठिनाई नहीं हुई है। लेखकके प्रमादसे मूल कापीमें छन्दोंके नम्बर देनेमें कुछ क्रमभङ्ग हो गया है जो हमने नवीन प्रतिलिपि करते समय ठीक कर दिया है। जिस प्रति परसे यह प्रतिलिपि की गई थी वह भी बहुत प्राचीन नहीं है और लेखन-सम्बन्धी अशुद्धियां छोडकर दोनोंमे कुछ विशेषता नहीं पाई जाती।

मास्टर पंचमलालजीने उक्त पुस्तक देते हुए मुझसे कहा कि आप इसका संशोधन कर दीजिये, हम अपने सांधेलीय प्रेसमें इसे प्रकाशित करना चाहते है। ग्रीष्मावकाशका समय था इसलिये हमने कार्य शुरू कर दिया। मूल पुस्तकपर संशोधन और टिप्पणी देना उचित नहीं समझा गया, इसलिये मुझे ही उसकी दूसरी कापी करनी पडी। भारी परिश्रमके बाद लगभग १½ माहमें यह कार्य पूर्ण होगया। पूर्ण होनेपर मैंने मास्टर सा०से कहा कि आपका कार्य तैयार होचुका है, प्रकाशित कब करायेंगे? परन्तु कागज वगैरहकी मंहगाईके कारण उन्होंने उसके प्रकाशनमें विलम्ब वतलाया। तैयार चीजका बहुत समयतक पडा रहना अच्छा नहीं, यह सोचकर हमने मास्टर सा०की आज्ञासे श्रीमान् मूलचन्द्र किसनदासजी कापडियाको लिखा और उन्होंने इसे प्रकाशित करना सहर्ष स्वीकृत कर लिया, जिससे कुल मेटर सूरत भेज दिया गया। अब यह पुस्तक उन्हींके सत्प्रयत्नसे प्रकाशित होरही है अतः उक्त महाशय धन्यवादके पात्र हैं।

इस ग्रन्थमें धर्मशास्त्रके कितने ही स्थल इतने दुरूह और विस्तृत है कि जबतक उनका सरल हिन्दीमें गद्यानुवाद न किया जावे तबतक हरएक पाठकोंको उनसे यथोचित लाभ नहीं होसकता। मेरी इच्छा भी थी

कि ग्रन्थके अन्तमें ऐसे परिशिष्ट जोड़ दिये जाते जिससे सब विषय स्पष्ट हो जाता परन्तु इस समय वह सब विचार मनके मन ही रखना पड़ते हैं। यदि सुअवसर मिला तो आगेकी आवृत्तियोंमें इन सब विषयोंका खुलासा करनेका प्रयत्न करूंगा।

जहां टिप्पणीसे काम चल सकता था हमने वहां टिप्पणी दे दी है और जहां टिप्पणीसे काम चलता नहीं दिखा वहां उस वर्णनके आधारभूत ग्रन्थोंके नाम लिख दिये हैं तथा यह भी लिख दिया है कि इस विषयका स्पष्ट वर्णन अमुक ग्रन्थमें मालूम करना चाहिये। हमारे कुछ मित्रोंकी सलाह थी कि ग्रन्थका संशोधन इस रीतिसे किया जावे कि जिससे ग्रन्थकी भाषा आजकी भाषा हो जावे परन्तु मुझे वह सलाह ठीक नहीं मालूम हुई, क्योंकि उससे ग्रन्थकी प्राचीनता और यथार्थता लुप्त हो जाती है। इसलिये हमने ग्रन्थकर्ताके मूल शब्दोंको सुरक्षित रखा है। अत्यन्त आवश्यकता पड़ने पर ही उनमें उचित परिवर्तन किया है।

ग्रन्थकी भाषा।

ग्रन्थकी भाषाको न तो ब्रजभाषा ही कहा जा सकता है और न खड़ी बोली ही। किन्तु यह तत्कालिक हिन्दी है। हमारे कवि बुन्देलखण्डके अलंकार थे इसलिये उनकी भाषामें बुन्देलखण्डी हिन्दी भाषाके बहुतसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं, जैसे 'लावों', 'कॅंवुरो' आदि, परन्तु वे अपने स्थानपर अनुचित नहीं मालूम होते।

किसी भी कविकी भाषापर उसके निवास प्रदेशमें प्रचलित हुई भाषाका प्रभाव अवश्य रहता है। ग्रन्थको एकबार प्रारम्भसे अन्त तक

देख जानेपर यही मालूम होता है कि कविकी भाषा उनकी निसर्ग सिद्ध भाषा है—इसमें कृत्रिमता नहीं है—दूसरोंके शब्दोंको उन्होंने अपना नहीं बनाया है। बीच बीचमें अलंकारकी पुट भी दी गई है जिससे भाषाकी सुन्दरता बढ़ गई है। इसमें कुछ शब्द ऐसे भी है जिनका नवीन पाठक विपरीत अर्थ समझ सकते है, जैसे 'अस्तुति', 'अस्तवन' आदि। परन्तु बुन्देलखण्डमें 'स्तुति' को 'अस्तुति' और 'स्तवन' को 'अस्तवन' अब भी बोला जाता है। यदि उन शब्दोंसे प्रथम अक्षर अलग कर दिये जाते हैं तो छन्दोभंग हो जाता है, इसलिये पाठकोंको ध्यान रखना चाहिये। वह कविकी भूल नहीं है, किन्तु उनके निवास क्षेत्रका प्रभाव है। हमने ऐसे शब्दोंपर टिप्पणी भी दे दी है। लेखकोंके प्रमादसे कही कही कुछ अंश त्रुटित हो गया है, दोनों प्रतियोंमें मिलान करनेपर भी जब ठीक नहीं मिला तब या तो उस स्थानको खाली छोड़ दिया गया है या विशेष हानि न समझकर प्रकरणके अनुसार कोष्ठकके भीतर अपनी ओरसे पाठ जोड दिया गया है और उसकी सूचना-टिप्पणी दे दी गई है। ४०४ पृष्ठपर २ चौपाइयोंका पाठ मूल पुस्तकमें त्रुटित है वहां उनकी जगह खाली छूटी हुई है। मूल पुस्तकमें नंबर भी त्रुटित पाठके छोड दिये गये है परन्तु हम इस मुद्रणमें उनका इशारा नही कर सके, और न नम्बर ही छोड सके। स्मरण रखते हुए भी यह कार्य रह गया इसका हमें रंज है। हां टिप्पणीमें पाट त्रुटित होनेकी सूचना अवश्य दे दी गई है।

इस ग्रन्थमें कितनी ही जगह ऐसे भी शब्द प्रयुक्त हुए हैं जो

गुरु रूपसे लिखे गये हैं, परन्तु उनका उच्चारण लघुरूप लेना पडता है और लघुरूप लिखे हुए शब्दोंका गुरु रूप उच्चारण करना पडता है। ऐसे शब्दोंका उच्चारण करने और मात्राएं गिननेके समय पाठकोंको सावधानीसे काम लेना चाहिये, नहीं तो छन्दोभङ्ग प्रतीत होने लगता है। उस समयकी हिन्दी हीमें ही क्यों, आजकी हिन्दीमें भी ऐसे अनेक शब्द बोले और लिखे जाते हैं जिनके उच्चारण और लिखनेमें कुछ अन्तर पड जाता है। जैसे अमृत शब्दमें 'अ' वर्ण लघु लिखा जाता है परन्तु उसका उच्चारण आजकल दीर्घ होने लगा है। यह यद्यपि गलत है परन्तु प्रचलित परम्पराको कौन रोक सकता है?

कविका परिचय और ग्रन्थ निर्माणकाल।

वर्धमानपुराणके रचयिता कविवर नवलशाहजी हैं। इन्होंने इसी ग्रन्थके अन्तमें अपना विस्तृत परिचय स्वयं लिखा है जिससे उनके जीवनचरित्र पर प्रकाश डालनेमें बहुत सुविधा हुई है। यह 'गोलापूर्व जैन' थे, इनका गोत्र 'प्रजापति' और बँक 'वड़चँदेरिया' था। आपने अपने पूर्वजोंका परिचय देते हुए लिखा है कि भेलसी गांवमें भीषमशाह रहते थे उनके चार पुत्र थे—१-बरोहन, २-कृपानिधान, ३-अहमन और रतनशाह। पिता पुत्र सभी धर्मात्मा थे, सम्पत्ति भी अटूट थी इसलिये इनके द्वारा हमेशा धार्मिक कार्य होते रहते थे। एक दिन पिता पुत्रोंने मिलकर विचार किया कि अपने पास अतुल्य सम्पत्ति है, राज्यदरबारमें भी पर्याप्त सन्मान है और समस्त जनता भी हम लोगोंको चाहती है इसलिये कोई ऐसा काम करना चाहिये

१-यह गांव टीकमगढ स्टेटसे १८ मील दूर है।

जिससे पवित्र जैन धर्मकी प्रभावना हो। कुछ देरकी सलाहके बाद जैन मन्दिर निर्माण, बिम्ब प्रतिष्ठा और गजरथ चलानेका निश्चय किया गया। सम्पत्तिकी कमी नहीं थी इसलिये दूसरे ही दिनसे मन्दिर निर्माणका कार्य शुरू होगया और कुछ ही महिनोंमें बनकर तैयार होगया। तोरण ध्वजा आदिसे मन्दिर सजाया गया। जगह जगह निमन्त्रण भेजकर सहधर्मी भाइयोंको बुलाया गया। शुभ मुहूर्तमें गजरथका फेरा हुआ। आये हुए लोगोंका खूब सन्मान किया गया। रथोत्सवके समय मनुष्योंकी अपार भीड एकत्रित हुई थी उन सबके भोजनपानकी व्यवस्था भी भीषमशाहके द्वारा ही की गई थी। बुन्देलखण्डके कुछ वृद्ध मनुष्योंके मुंहसे हमने सुना है कि उस रथमे इतनी अधिक भीड़ हुई थी कि ५२ मन मिर्चोंका चूरमा परोसनेको नही हुआ था।

उस समय भेलसी गांवके मुखिया लोदी ठाकुर थे, उन्होंने चार संघके साथ मिलकर भीषमशाहजीको टीका किया और सिगई पद दिया। यह घटना सं० १६५१के अगहन मासकी है। उस समय बुन्देलखण्ड शिरोमणि राजा जुझारका राज्य था। इस पुण्य कार्यसे सिगई भीषमशाह-जीका कुल उत्तरोत्तर वृद्धि और सम्पत्तिको प्राप्त होता गया। उनके चौथे पुत्र जो रतनशाह थे उनके जद्दोले नामक पुत्र हुए। जद्दोलेके आनंदी-राम और आनंदीरामके मनिराम नामक पुत्र हुए। परिस्थितिमें परिवर्तन होनेसे मनिरामजी भेलसीको छोडकर खटोला ग्राममें रहने लगे। यह ग्राम बुन्देलखण्डमें गंज मलाराके पास है। मनिरामजीके चार पुत्र हुए— १ केशवराय, २ हरजू, ३ खाडेराय और परमानन्द। उनमें खाडेरायके

३ पुत्र हुए—१ देवाराय, २ भोज इन्द्र और ३ मनभान। देवाराय-जीके प्राणमती पत्नीसे चार पुत्र हुए—१ नवलशाह, २ तुलाराम, ३ घासीराम और बान्धवसिंह। इनमेंसे प्रथम नवलशाह ही इस ग्रन्थके कर्ता हैं। इनकी वंशपरम्परा इसप्रकार है—

भीष्मशाह
|
१ बलराम २ कृपानिधान, ३ अर्जुन, ४ रतनशाह
|
जदुराई
|
आनंदराम
|
मनीराम
|
१ श्रवन, २ लालराय, ३ परमानन्द
|
१ देवाराय, २ भोजइन्द्र ३ मनभान
|
१ नवलशाह, २ तुलाराम, ३ घासीराम, ४ बान्धवसिंह

उस समय वहां क्षत्रशालके वंशजोंका राज्य था जो कि हिन्दू धर्मावलम्बी थे। राजा अपनी प्रजाका बहुत ही नीतिपूर्वक पालन करते थे इसलिये उनकी प्रजा हर तरहसे सुखी रहती थी।

कविवर नवलशाहजीने अपने पुत्रकी सहायतासे इस हिन्दी भाषाके छन्दोबद्ध वर्धमानपुराणकी रचना की थी। ग्रंथरचनाकी समाप्ति चैत्र सुदी पूर्णिमा बुधवार विक्रम संवत १८२५के प्रात काल हुई थी। यह कवि बुन्देलखण्डके कवियोंमें अत्यन्त श्रेष्ठ कवि थे। पाठकगण

ग्रन्थका स्वाध्याय कर उनकी कविताशैली तथा धर्मशास्त्र विषयक ज्ञानकी परख स्वयं करेंगे। विस्तारके भयसे मैं यहां उनकी सुन्दर कविताओंके नमूने उद्धृत नही कर सका हूं। इस ग्रन्थके सिवाय इनकी और कोई सन्दर्भरूप रचना अभी तक देखनेमे नहीं आई। हां, भजन वगैरह प्रकीर्ण रचनाएं बुन्देलखण्डमें जहां तहां पाई जाती हैं। वर्धमानपुराणमें महाकाव्यके समस्त लक्षण पाये जाते है इसलिये यह हिन्दीका एक स्वतन्त्र महाकाव्य कहा जा सकता है।

एक विशेष बात।

कविवर नवलशाहजीने अपना परिचय लिखते समय गोलापूर्व जातिके उद्भवके विषयमें एक विशेष बात लिखी है जो कि इसप्रकार है—

चौपाई।

'गोयलगढ़के वासी तेस, आए श्री जिन आदि जिनेश।
चरणकमल प्रनमै धर शीस, अरु अस्तुति कीनी जगदीश॥'
तब प्रभु कृपावन्त अति भये, श्रावक व्रत तिनहूंको दये।
क्रिया चरणकी दीनी सीक, आदर सहित गही निज ठीक॥
पूर्व हि थापी नेत जु एह, अरु गोयलगढ़ थान वहेह।
तातैं गोलापूरब नाम, भाष्यो श्री जिनवर अभिराम॥'

उन्होंने यह सब किस आधारपर लिखा, बहुत प्रयत्न करनेपर भी मैं इस बातका पता नही चला सका। आज जैन समाजमें जो प्रचलित उपजातियां और उनके गोत्र, बेंक तथा मूर वगैरह पाये जाते है प्रायः उन सभीका सच्चा इतिहास धपलेमें है। हम लोग अपने प्रमादसे अपना सच्चा इतिहास सुरक्षित नही रख सके यह भारी दुःखका

कई घंटे एक आसनसे बैठकर ग्रन्थके धर्मशास्त्र सम्बन्धी अंश सुने हैं। पण्डितजीकी कृपा और परिश्रमके प्रति हम अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

इस ग्रन्थका शुद्धिपत्रक तथा विषयसूची श्रीमान् देवेन्द्रकुमारजी बनारस और हीरालालजी पांडे सागरने तैयार की है इसलिये मैं इनका भी आभार मानता हूं।

क्षमा याचना।

मैंने ग्रन्थके संशोधन तथा सम्पादन आदिमें अपनी शक्तिवश पूरा प्रयत्न किया है फिर भी अनेक अशुद्धियोंका रह जाना संभव है इसलिये मैं अपने विद्वान् पाठकोंसे क्षमायाचना करता हुआ प्रार्थना करता हूं कि वे उसे शुद्ध कर पढ़ें और उनकी सूचनाएं मुझे भी देनेकी कृपा करें ताकि आगेकी आवृत्तियोंमें वे दूर की जा सकें।

विनीत—

"वसन्तकुटीर"–सागर
ता० ३१-९-४२.

पन्नालाल जैन।

नं० विषय	पृष्ठ	पद्य
१५–भगवान् आदिनाथके समवशरणमे भरत-चक्रवर्तीने पूछा कि हमारे कुलमे आपके समान और कौन होगा ? इसका उत्तर ।	२१–२२	८५–९१
१६–मरीचिकुमारका कपिलमतका प्रचारकरना।	२२–२३	९२–९६
१७–कुतपके प्रभावसे मरीचिकुमार ब्रह्म स्वर्गमे देव हुआ।	२३	९७–९८
१८–वहांसे च्युत होकर भरतक्षेत्रकी साकेता नगरीमे कपिल ब्राह्मण और काली ब्राह्मणीके जटिल नामका पुत्र हुआ।	२३	९९–१०१
१९–जटिल, परिव्राजक होकर कुतपके प्रभावसे सौधर्म स्वर्गमे देव हुआ, वहासे मनुष्य तथा देवकी अनेक पर्याय धारण कर स्थावर योनियोंमे भ्रमण करता रहा।	२३–२७	१०२–३३
२०–अन्त मङ्गल।	२७	१३४
तृतीय अधिकार—		
२१–मङ्गलाचरण	२८	१
२२–मगध देशकी राजगृही नगरीमे शाडिल विप्रके यहां स्थावर नामका पुत्र हुआ। फिर परिव्राजककी दीक्षा धारण कर महेन्द्र स्वर्गमे देव हुआ। वहांसे च्युतकर राजगृही नगरीमे विश्वभूति राजाके विश्वनन्द नामका पुत्र हुआ।	२८	२–६
२३–यहां अपने चचेरे भाई विशाखनदी द्वारा किये गये विद्रोहका वर्णन।	२८–३१	७–४०
२४–विश्वनन्दीका दीक्षा लेना, यह समाचार सुनकर विशाखनन्दीके पिता विशाखभूतिका चिन्तित होकर दीक्षा लेना और तपके प्रभावसे महाशुक्र स्वर्गमे उत्पन्न होना।	३२	४१–५१

सं०	विषय		पद्य
	वंदनाको गया। वहाँ मुनिराजके मुखसे धर्मोपदेशको सुनकर दीक्षित हो गया। और तपस्याके प्रभावसे लान्तव स्वर्गमें देव हुआ। वहां उसके विभव तथा धार्मिक चर्याका वर्णन।		
६१–	कौशल देशकी अयोध्यापुरीमे वज्रसेन राजा राज्य करते थे। उनकी रानीका नाम शीलवती था। पूर्वोक्त देव लान्तव स्वर्गसे चयकर इन्हींके हरिषेण नामका पुत्र हुआ। वहां उसके विभव आदिका वर्णन। समय पाकर हरिषेणका दीक्षित होना। और महा शुक्र स्वर्गमे देव होना।	५७–६२	१०५–१५६

पञ्चम अधिकार—

सं०	विषय		पद्य
६२–	मङ्गलाचरण। धातकी खण्डके पूर्व विदेहक्षेत्रमे पुष्कलावती देशकी पुण्डरीकिणी नगरीमे राजा सुमित्र और रानी सुव्रता निवास करती थीं। पूर्वोक्त देव महाशुक्र स्वर्गसे चयकर प्रियमित्र कुमार नामक पुत्र हुआ। क्रमसे वह पिताका पद पाकर चक्रवर्ती हुआ। चक्रवर्तीकी विभूति, चौदह रत्न, नवनिधि, देश, आश्रित राजा, बल, पचेन्द्रियोंके विषय, महल तथा सेना आदिका वर्णन।	६३–७२	१–९१
६३–	प्रियकुमार चक्रवर्तीकी धार्मिक प्रवृत्तिका वर्णन। एकवार चक्रवर्ती सीमन्धरस्वामीके समवशरणमें गये। भगवान्की दिव्य ध्वनि सुनकर उसका चित्त विषयोंसे	७३–७९	९२–१४२

नं०	विषय	पृष्ठ	पद्य
	विरक्त होगया। उसी समय उसने बारह अनुप्रक्षाओंका चिंतवन कर और वैराग्य भावनायें भाकर दीक्षा ले ली। तथा तपके प्रभावसे सहस्रार स्वर्गमे देव हुआ। वहा उसके विभव, आहार, आयु आदिका वर्णन।		
	षष्ठम अधिकार—		
३४—	मङ्गलाचरण। जम्बूद्वीप भरतक्षेत्रके छत्राकार नगरम नन्दवर्ध राजा राज्य करते थे। उनके वीरमती नामकी रानी थी। उक्त देव स्वर्गसे चय कर उन्हीके नन्द नामका पुत्र हुआ। यहा उसके राज्य आदिका वर्णन। एक दिन नन्दराजा प्रौष्ठिल नामक मुनि महाराजसे धर्मोपदेश सुनकर दीक्षित होगया। और तप करने लगा। उसी समय उसने सोलहकारण भावनाओंका चिंतवन कर तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया और अन्तमे समाधिमरण कर अच्युत स्वर्गमे इन्द्र हुआ। वहा उसके विशाल वैभवका वर्णन।	८०—९२	१—१३०
	सप्तम अधिकार—		
३५—	मङ्गलाचरण। जम्बूद्वीपका विस्तृत वर्णन।	९३—१०१	१—८२
३६—	भरतक्षेत्रके आर्यखण्डमे मगधदेशका वर्णन वहा कुण्डलपुर नगरमे राजा सिद्धार्थ और रानी प्रियकारिणीका वर्णन। देवोंने आकर नगरीकी रचना की। तथा	१०२—११६	८३—२३३

नं०	विषय	पृष्ठ	पद्य
	रानीने सोलह स्वप्न देख पतिसे उनका फल पूछा। देवियों द्वारा जिनमाताकी सेवा होना और देवोंका गर्भ कल्याणकके लिये कुण्डलपुर आना। और गर्भकालमे देवियोंका मातासे अनेक पहेलियोंका पूछना, आदि।		
अष्टम अधिकार—			
३७–	मङ्गलाचरण। चैत्र शुक्ल त्रयोदशीके दिन पूर्वोक्त अच्युत स्वर्गका इन्द्र, महाराज सिद्धार्थको महारानी प्रियकारिणीके वर्धमान नामक पुत्र हुआ। चतुर्निकायके देवोंने विभूति सहित ले जाकर भगवानका जन्माभिषेक किया। वहांसे वापिस आकर उनके माता पिताका सन्मान कर सौधर्म इन्द्रने ताण्डवनृत्य किया। इत्यादिका वर्णन।	११६–१२८	१–१२०
नवम अधिकार—			
३८–	मङ्गलाचरण। वर्धमान जिनेन्द्रकी बाल्यावस्थाका वर्णन।	१२९–१३४	१–५५
३९–	भगवान्का वैराग्य वर्णन। उसी समय बारह अनुप्रेक्षाओंका विस्तृत स्वरूप तथा लोकभावनाके अन्तर्गत तीनो लोकोंका अत्यन्त विशद वर्णन।	१३४–१६६	५६–३१८
४०–	उत्तम क्षमा आदि दशधर्मोका विशद निरूपण।	१६६–१६९	३१९–३३८

नं०	विषय	पृष्ठ	पद्य
	दशम अधिकार—		
४१	मङ्गलाचरण। लौकान्तिक देवोंके द्वारा भगवानका सम्बोधन होना। तथा तप कल्याणकके लिये स्वर्गसे देवोका आना और नगरके बाहिर भगवानका दीक्षा लेना। पञ्च महाव्रत, पञ्च समिति आदिका विशद वर्णन। भगवानकी तपस्या तथा आहारका वर्णन।	१७०–१९०	१–१९४
४२	ऋद्धियोका अत्यन्त विशद निरूपण।	१९०–२०२	१९५–२९१
४३	बाईस परीषहोंका स्पष्ट वर्णन।	२०२–२०९	२९२–३१८
४४	चौरासी लाख उत्तर गुणोंका वर्णन।	२०९–२११	३१९–३३२
४५	उज्जैन नगरके स्मशानमें भगवान पर रुद्र द्वारा उपसर्ग होना। परन्तु भगवानका ध्यानमें विचलित नहीं होना।	२११–२१४	३३३–३५३
४६	चन्दना सतीकी कथा–	२१४–२१६	३५४–३७४
४७	वर्धमानस्वामीकी तपस्या तथा कर्मक्षय निरूपण। उसीमें शीलके १८००० भेदोंका वर्णन। आदि।	२१६–२२१	३७५–४०६
	एकादश अधिकार—		
४८	मङ्गलाचरण। भगवानको केवलज्ञान होना तथा ज्ञान कल्याणकका उत्सव करनेके लिये देवोंका आना। उसीमें देवोंके दलका वर्णन।	२२२–२२८	१–७३
४९	समवशरण रचनाका वर्णन–	२२९–२३६	७४–१५७
५०	अष्ट प्रातिहार्य वर्णन।	२३७	१५८–१६६
५१	इन्द्रने आकर समवशरणकी तीन प्रदक्षिणा देकर भगवानकी स्तुति की तथा अष्टद्रव्यसे पूजा की, इत्यादिका वर्णन।	२३८–२४३	१६७–२१२

नं०	विषय	पृष्ठ	पद्य
द्वादश अधिकार—			
५२–मङ्गलाचरण। गणधरके अभावमे भगवानकी दिव्यध्वनिका नहीं खिरना। इसलिये इन्द्रका गौतम ब्राह्मणके पास जाना। इन्द्रका गौतमके साथ सम्वाद होना। गौतमका समवशरणकी ओर आना। वहां मानस्तंभ देखकर उसका अहङ्कार दूर होना तथा भगवान्‌की स्तुति कर उनसे अनेक प्रकारके प्रश्न करना।	२४४–२५५	
त्रयोदश अधिकार—			
५३–मङ्गलाचरण। भगवानकी दिव्यध्वनिमे धर्मोपदेश होना। प्रथम ही सप्तभङ्गका व्याख्यान।	२५६–२५७	१–१६
५४–सप्त तत्वका निरूपण होना। उसमे जीव तत्वका उपयोग, अमूर्तिकत्व, कर्तृत्व, भोक्तृत्व, और देह प्रमाणत्वका वर्णन।	२५८–२६१	१७–३९
५५–समुद्घात वर्णन	२६१–२६४	४०–५५
५६–चौवीस स्थान भ्रमण वर्णन। उसमे गति, इन्द्रियादि मार्गणाओका वर्णन। उसमें भी सर्वप्रथम नरक गतिका वर्णन।	२६४–२६६	५६–७३
५७–तिर्यञ्च गतिका वर्णन	२६७–२६९	७४–१००
५८–मनुष्यगतिका वर्णन	२७०–२७२	१०१–११६
५९–देवगतिका वर्णन	२७२–२७७	११७–१६१
६०–इन्द्रिय मार्गणा, काय मार्गणा	२७७–२७८	१६२–१६७
६१–योगमार्गणा, वेदमार्गणा, कषायमार्गणा ज्ञानमार्गणा।	२७८–२७९	१६८–१७७

नं०	विषय	पृष्ठ	पद्य
६२	संयममार्गणा, दर्शनमार्गणा।	२७९–२८२	१७८–२०७
६३	लेश्यामार्गणा, भव्यत्वमार्गणा।	२८३–२८४	२०९–२२५
६४	सम्यक्त्वमार्गणा, संज्ञीमार्गणा और आहारमार्गणा।	२८४–२८५	२२६–२३६
६५	चौदह गुणस्थानका पृथक्२ निरूपण।	२८६–२९०	२३७–२६९
६६	जीवके भेद। उसमे बहिरात्मा, अंतरात्मा आदिके लक्षण तथा गुणस्थानोंका समय निरूपण।	२९१–२९३	२७०–२९१
६७	जीव समासका विशद निरूपण।	२९३–२९८	२९२–३४०
६८	पर्याप्ति, प्राण, संज्ञा और उपयोगका निरूपण।	२९९–३००	३४१–३४७
६९	ध्यानका निरूपण। उसमे आर्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान और शुक्लध्यानका वर्णन।	३००–३०१	३४८–३६१
७०	ध्यानका विशेष निरूपण, उसमे पिंडस्थ ध्यानके पृथिवी तत्व, जलतत्व, अग्नितत्व, पवनतत्व, और आकाशतत्वका वर्णन।	३०१–३०४,	३६२–३८६
७१	पदस्थ ध्यानका वर्णन।	३०४–३१५,	३८७–४८६
७२	रूपस्थ और रूपातीत ध्यानका वर्णन।	३१६–३१७,	४८७–५०२
७३	प्रत्यय, जातिस्थान और योगोंका वर्णन।	३१७–३१८,	५०३–५११
७४	कुल कोटि वर्णन।	३१९–३२०,	५१२–५१८
७५	चौबीस दण्डकोंका वर्णन।	३२०–३२४,	५१९–५५७
७६	जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव तथा सिद्ध जीवोंका वर्णन।	३२४–३२६,	५५८–५७३

चतुर्दश अधिकार—

७७	मङ्गलाचरण। अजीव तत्वका वर्णन।	३२७–३३०	१–३०
७८	आश्रव तत्वका वर्णन।	३३०–३३१	३१–३५

नं०	विषय	पृष्ठ	पद्य
७९	बन्ध तत्वका निरूपण। उसमे प्रकृति-बन्ध, स्थिति बन्धका निरूपण।	३३१-३३२	३६-४९
८०	तीन पल्योंका वर्णन	३३२-३३७	५०-९४
८१	अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका निरूपण।	३३७-३३८	९५-९९
८२	संवरतत्व, निर्जरातत्व और मोक्षतत्वका वर्णन।	३३८-३३९	१००-११०
८३	पाप, पुण्यका वर्णन।	३३९-३४९,	१११-२१९
	पञ्चदश अधिकार—		
८४	मङ्गलाचरण। सम्यक्त्वके दश भेद तथा उसकी महिमाका वर्णन।	३५०-३५४,	१-४२
८५	श्रावकधर्मका वर्णन। उसमे त्रेपन क्रिया मूलगुण तथा बावीस अभक्ष्योंका वर्णन।	३५५-३५७	४३-६२
८६	बारह व्रत निरूपण। उसमे पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत तथा चार शिक्षाव्रतोंका वर्णन।	३५७-३६०	६३-९३
८७	ग्यारह प्रतिमाओंका निरूपण।	३६१-३६३	९४-११७
८८	चार दान, दातारके पांच आभूषण, पांच दूषण, सात गुण, नवधाभक्ति, चौदह मद तथा पात्र, अपात्र कुपात्र आदिका वर्णन।	३६३-३६६	११८-१५०
८९	जलगालन, अन्थऊ, अष्टांग सहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रका वर्णन।	३६६-३६९	१५१-१७५
९०	यति धर्मका वर्णन।	३६९-३७०	१७६-१८३
९१	षट्काल वर्णन।	३७०-३७५	१८४-२३४
९२	तीर्थंकरोंके माता पिता तथा जन्म नगरीके नाम।	३७५-३७७	२३५-२५६

सं०	विषय	पृष्ठ	पद्य
९३	तीर्थंकरोंके चिह्न आयु, शरीरकी ऊंचाई, वर्ण, मोक्षस्थान तथा अंतरका वर्णन।	३७८–३८०	२५७–२८४
९४	बारह चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण, नारद, रुद्र और कामदेव का परिचय।	३८०–३८३,	२८५–३१६
९५	पञ्चम, और षष्ठम कालका विशेष वर्णन। भगवानका उपदेश सुनकर गौतम ब्राह्मणका दीक्षा लेना तथा भगवानकी वाणी सुनकर उसका द्वादशाङ्ग रूप रचना करना और उसके पद, अक्षर वगैरहका वर्णन।	३८३–३८९,	३१७–३७३
	षोडश अधिकार—		
९६	मङ्गलाचरण। विहारके लिये इन्द्रकी भगवानसे प्रार्थना करना। भगवानका आर्य देशोंमे विहार होना। राजगृहीके विपुलाचलपर भगवानके समवशरणका जाना। तथा राजा श्रेणिकका वदनाके लिये समवशरणमे पहुचना।	३९०–३९६,	१–५९
९७	व्रतोंका विशद वर्णन।	३९७–४०५	६०–१४१
९८	राजा श्रेणिकके भवान्तरका वर्णन।	४०५–४१०	१४२–१९५
९९	समवशरणमें स्थित मुनि वगैरहकी सख्या तथा कर्म क्षयकर भगवानका मोक्ष जाना।	४१०–४१३	१९६–२३७
१००	भगवानके पूर्वभवोंका सक्षिप्त वर्णन।	४१३–४१६	२३८–२६७
१०१	कवि परिचय। उसमें चौरासी जातियोंका वर्णन, ग्रन्थ रचना, पुराण संख्या और कविकी लघुता आदिका वर्णन।	४१७–४२६	२६८–३४०

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

कविरत्न श्री नवलशाहजी विरचित—

श्री वर्द्धमान पुराण ।

[भाषा छन्दोबद्ध]

प्रथम अधिकार ।

मंगलाचरण ।

दोहा—ॐकार उच्चार करि, ध्यावत मुनिगण सोइ ।
तामें गर्भित पञ्च गुरु, तिन पद वन्दौं दोइ ॥ १ ॥
गुण अनंत सागर विमल, विश्वनाथ भगवान ।
धर्म चक्रमय वीर जिन, वन्दौं शिरधर पानि ॥ २ ॥
सिद्धारथ कुल-रवि-कमल, त्रिशला उर अवतार ।
वन्दौं सन्मति चरणजुग, शुभ मतिके दातार ॥ ३ ॥

छप्पय—गर्भा पूरव अवतार मास, षट तैं नव लौं वर,
वरषे रत्न अमोल, सुभग छविवन्त पिता घर;
देखसु अतिशय रूप, हेमगिरि कर्यौ न्हहँन सुर,
तृपति भयौ नहि सोइ, किए तब सहर्स अक्ष उर ।
वर्द्धमान श्रिय वर्द्ध अति, मान कीर्ति जगमें सही ।
मान वर्द्ध हिरदै नहीं, सुवर्द्धमान वासव कही ॥ ४ ॥

१—हाथ, २—मेरुपवत, ३—अभिषेक, ४—हजार, ५—आंख ।

वालपनैं जग सार, रमा[1] तिन तजी तृणावत,
धरी तपस्या जोर, घोर वन अक्षेकाम[2] हत;
भोजनदान महान, चन्दना सती जु दीनौ,
पंचाश्चर्य[3] प्रवीण, देखि देवनि पुर कीनौ;
देखि परीषह रौद्र अति, भयदायक जानो महा।
श्रीमहावीरनामा कह्यौ, इहि अनन्त सुरगण लहा॥ ५॥
काम वीर्यको हन्यौ, शुक्लध्यानी[4]-असिके जिनि,
घाति कर्मरिपु छेद, चाप[5]-केवल करिकैं तिनि;
नर सुर पूजित भये, धर्म दोविध परकास्यौ,
सुरग मुकतिको दाइ, सकल भव्यनि प्रतिभास्यौ;
इन आदि जगत विख्यात गुण, संपूरण जिनवीर वर।
हर्षवन्त हो स्तुति करौं, तिनगुण प्रापति जोर कर॥६॥
दोहा—भरम हरण आनंद करण, मुकति रमणि भरतार।
मोह तिमिर नाशन अर्क[6], वन्दौं निज हितकार॥ ७॥

अथ चौवीस जिनको नमस्कार।

चौपाई।

वृषभ वृषभ चक्री कृत सार, वृषभ तीर्थ वर्तावन हार।
वृषदायक वृष आतम जान, वन्दौं वृषभनाथ भगवान॥ ८॥
मोह वाम आरति इन्द्रीय, दुमह परिषहादिक जीतीय।

१—लक्ष्मी, २—इद्रियोंके विषय, ३—पांच आश्चर्य करनेवाले कार्य—देव-दुन्दुभिका बजना, रत्नवर्षा, मन्द सुगन्ध वायुका चलना, जयघोष, अहोदान अहोदान आदि शब्दोंका उच्चारण।४—शुक्लध्यानरूपी तलवार। ५—केवलज्ञान-रूपी धनुष। ६—अर्क, सूर्य।

एकाकी अरु मिलत जु सर्व, अजितनाथ वन्दौं तजि गर्व ॥ ९ ॥
संभव भव हैं तार महान, तीन लोक भवि जीवन जान।
संपूरण सुखके करतार, वन्दौं निरावाध सुविचार ॥१०॥
सचिदानंद भगवान सजोग, आनंद करता हरता सोग।
आतम थिति अभिनन्दन देव, आनंद हेत करौं नित सेव ॥११॥
सुमति जिनेश सुमति दातार, भवि जीवन संबोधन सार।
स्वच्छ सुमतिकी सिद्धि विशाल, वन्दौं तास हरण भव जाल। १२॥
वन्दौं पद्मप्रभु भगवान, पद्मा[1] पद्म[2] अलंकृत जान।
सकल जीवको हैं दातार, पद्मा-पद्मकांत[3] शुभसार ॥१३॥
नमौं सुपार्श्वनाथ जिनराय, सुधिय नरनकौं पारस[4] राय।
सुख अनन्त अरु गुण जु अनन्त, अष्टकर्मको कीनो अन्त ॥१४॥
जगत जीव आनंद करतार, धर्मामृत करि पूरित सार।
मिथ्यातम हर चन्द्र समान, वन्दौं चन्द्रप्रभ सुखदान ॥१५॥
सुविधि सुभ्रम-भ्रम[5] हरता वानि, भव्यनि विधि उपदेशक जान।
सुरग मुकति सुख प्रापति काज, भ्रमनाशक[6] प्रनमौं जिनराज ॥१६॥
शीतल भव्य जीवको सार, पाप ताप नाशक भवतार।
वरषै दिव्य सुधा-ध्वनि[7] जास, नमौं पाप छेदन शुभ वास ॥१७॥
प्रणमौं श्रेय श्रेयदातार, जे प्रभु थुति धारे संसार।
निश्श्रेय अरु मोकर श्रेय, श्रेय[8] लीन सुखदायक गेय ॥१८॥

१–कमलचिह्नसे शोभित। २–सब जीवोंको लक्ष्मीके देनेवाले। ३–कमलके समान सुंदर। ४–पारस पत्थरके समान इच्छित सुवर्णादिको देनेवाले। ५–६–जिनकी वाणी संशयसे उत्पन्न हुए प्रकम्पनको नष्ट करनेवाली है। ७–अमृतमयी दिव्यध्वनि। ८–संसारके समस्त जीवोंका कल्याण।

पूजित तीन जगत कर देव, करहौं हरषवंत हुय सेव।
निन्दक कोई दोष न भाव, वासुपूज्यके आश्रय जाव ॥१९॥
अनादि कर्म दीनै तिन जार, वचनामृत करि जोग निहार।
पाप सुमल हर मेघ समान, विमलनाथ विमलातम जान ॥२०॥
गुण अनन्त परिपूरण ज्ञान, सुरपति सेवैं हिरदैं आन।
गुण अनन्त प्रापतिके काज, वन्दौं श्री अनन्त जिनराज ॥२१॥
भाष्यौ धर्म दुविध सुखदान, स्वर्ग मुक्तिको कारण जान।
सुद्धियु धर्मचक्रमय सार, वन्दौं धर्म धर्म करतार ॥२२॥
दह्यो कर्म शत्रुनिको जोर, कषायादिक उपद्रव घोर।
समतागिराधार[1] कर जीव, शान्ति शान्ति कर नमौं सुकीव ॥२३॥
दिव्यध्वनि सबसौं जगपीव, कुन्थ्वादिक निर्विरोध्यौ जीव।
आप न भूल विरोधै सोइ, वन्दौं कुन्थु कृपा करि होइ ॥२४॥
वचन शस्त्र कर घाते सार, दुर्धर[2] कर्म-शत्रु भयकार।
इन्द्रिय विषय हरण जिनराज, वन्दौं अरै[3] अरिहनिक[4] काज ॥२५॥
कर्ममल्ल जीते वड वीर, सकल जीव शरणागत धीर।
छेद्यौ मोहशत्रु, दुख वम्यौ, मल्लि शक्तिके कारण नम्यौं ॥२६॥
मुनिवर आदि सकल जन जेह, व्रतकों देहि निरन्तर तेह।
हाथ जोर वन्दौं शिरनाय, व्रतकारण मुनिसुव्रत[5] पाय ॥२७॥
नमि जिन नाशक आरत ध्यान, सकल इन्द्र वन्दित भगवान।
हत्यौ कर्म अरिकौ सन्तान, तागुण कारण जोरें पान ॥२८॥

१—समतामयी वाणीके आधार—उपदेशक। २—कठिन। ३—अठारहवं तीर्थंकर। ४—कर्मशत्रुओंको नष्ट करनेवाले। ५—हिन्दीमे सयुक्त अक्षरके पहलेका स्वर विकल्पसे गुरु माना जाता है—ऐसी रीति प्रचलित है।

मोह काम इन्द्रिय दुख जान, इनकी करी निरन्तर हान।
बालपनै दीक्षा उर धरी, नेमि अरथ बंदौं शिववरी ॥२९॥
जाके महामन्त्र परभाव, लह्यौ नाग नागिन शुभ चाव।
धरणेन्द्ररु पद्मावति भई, पार्श्वनाथ निशदिन श्रुति ठई ॥३०॥
कर्म हतन कौ वीर महान, सनमति धर्मुपदेशक बान।
उपसर्ग-अग्नि संताप निवार, महावीर प्रणमौं हितकार ॥३१॥

अथ विद्यमान बीस तीर्थंकरोंको नमस्कार।

दोहा—राजत परम विदेहमें, बीस जिनेश्वर भास।
सीमन्धर प्रभु आदि दे, विद्यमान सुख रास ॥ ३२ ॥
देव संघ अर्चित सदा, धर्म लक्ष्मी नाथ।
विघन सकल मेरे हरौ, बन्दौं शिर धर हाथ ॥ ३३ ॥

अतीत-अनागत बीस तीर्थंकरोंको नमस्कार।

दोहा—अतीत अनागत तीर्थंकर, द्वीप अढ़ाई मांहि।
तिन पद पङ्कज प्रनमियों, भवदुखहर सुख दांहि ॥ ३४ ॥

सिद्ध परमेष्ठीको नमस्कार।

लोक शिखर आरूढ़ हैं, कर्म काय करि हीन।
वसु गुण मय जातों सही, ज्ञान अनन्त सु लीन ॥ ३५ ॥
मूर्ति रहित आनन्दमय, निवसैं ध्रुव शिव संत।
गुण अनन्तके कारणें, प्रणमौं सिद्ध अनन्त ॥ ३६ ॥

गणधरको नमस्कार।

वृषभसेनको आदि दे, चतुर ज्ञान धरतार।
सप्त ऋद्धि भूषित नमौं, कवि ईश्वर गणधार ॥३७॥

१—उपसर्ग रूप अग्निके संतापको दूर करनेवाले। २—आठ गुण—समकित दर्शन ज्ञान, अगुरुलघु अवगाहना। सूक्ष्म वीरजवान, निराबाध गुण सिद्धके॥

केवलीत्रयको नमस्कार।

मोक्ष गये श्रीवीर जिन, उपजै केवलि तीन।
गौतम तथा सुधर्म मुनि, जम्बूस्वामि प्रवीन ॥३८॥
मध्य सुबासठ वरसकै, धर्मवर्ति मुनिराज।
शरण गहौं पदकमल तिनि, उनहूकै गुणकाज ॥३९॥

पञ्च श्रुतकेवलीको नमस्कार।

श्री विष्णु नन्दमित्र पुनि, अपराजित मिलि सांच।
गोवर्द्धन भद्रबाहु पुनि, ये श्रुतकेवलि पांच ॥ ४० ॥
पूर्व अङ्गके वेदता, उपजै त्रिजग सुचन्द।
अन्तर इक शत वरषके, नमौं चरण भर विन्द ॥ ४१ ॥

अङ्गपूर्वके पाठी आचार्योंको नमस्कार।

चौपाई।

विशाख प्रोष्ठिल क्षत्रिय जान, नाग सिद्धार्थ जयसेन प्रमान।
विजय बुद्धिमत गङ्ग सुधर्म, जान्यौ अङ्ग पूर्व दश मर्म ॥४२॥
तेरासी+सौ वर्षके मांहि, उपजे तामै विकलप नांहि।
धर्म प्रकाशक दर्शन ज्ञान, चरण-कमल प्रणमौं जुगपान ॥४३॥
नक्षत्र नाम जयपाल प्रशंस, पाण्डुक ध्रुवसेन रु तह कंस।
एकादशह अङ्ग वेत्तार, धर्म प्रवर्तक मुनिवर सार ॥४४॥
दो शत वीस वरसमें भए, तिनिके चरण-कमल हम नए।
सुभद्र जशोभद्र जयबाहु, लोहाचार्य अङ्गधर ताह ॥४५॥
विनय आदिधर श्रीदत्त जान, अरहदत्त शिवदत्त बखान।
अङ्ग पूर्वके धारक सोइ, बन्दौं तास कमल पद दोइ ॥४६॥
दोहा—इकशत अठदश वरषके, उपजे अन्तरमांहि।
रहित परिग्रह दुविधकर, राग द्वेष उर नांहि ॥ ४७ ॥

काल दोष तैं हीन श्रुत, इनमें रह्यो न कोइ।
भुजबलि पुष्पसुदन्त वर, उपजे मुनिवर दोइ॥ ४८॥
श्रुतज्ञानके नाशतैं, मति बल पुस्तक कीन।
साध तनी पूजा निमित, सुस्तुतिमें सो लीन॥ ४९॥
ज्येष्ठ[1] धवल पञ्चमि दिना, थाप्यौ शास्त्र सरूप।
धर्म वृद्धि करता नमौं, श्रुति आपति जु अनूप॥ ५०॥
और भये मुनिवर बहुत, कुन्दकुन्द गुरु आदि।
कवि ईश्वर भूतल विषैं, परिग्रह कीनौं बादि॥ ५१॥

उपाध्याय परमेष्ठीको नमस्कार।

तीन काल जुत जोगमें, महा तपोधन जान।
उपाध्याय परमेष्ठिको, नमौं जोर जुग पान॥ ५२॥

आचार्य परमेष्ठीको नमस्कार।

भूषित पंञ्चाचार[2] करि, पाठक जिनवर लीन।
वन्दों जिनके गुण अरथ, श्रुति करकै सुख लीन॥ ५३॥

साधु परमेष्ठीको नमस्कार।

तीन काल जुत जोगमें, महा तपोधन जान।
साधव ते जग पूज्य हैं, सुस्तुति करौं वखान॥ ५४॥

शारदा नमस्कार।

चौपाई।

भारति जगत मान्य है कही, जिनमुख अम्बुज उद्भव सही।
कविता रचनाको परवीन, शुद्धवृत्ति मतिदाइक लीन॥५५॥

१—ज्येष्ठ सुदी पञ्चमी—"श्रुतपञ्चमी"। २—दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तप आचार, वीर्याचार।

वन्दौं विश्व अरथ दरशनी, थुति करकै शारद शिर मनी।
होउ परमबुधिकी करतार, दरशन ज्ञान सिद्ध मुझ सार ॥५६॥
दोहा—देवशास्त्र गुरु पूर्व विधि, बन्दौं गुण अभिराम।
सिद्धि सुदृष्ट-अनिष्ट हर, मङ्गल सुखके धाम ॥५७॥
वक्ता श्रोता आदि दै, लक्षण कहौ प्रवीन।
प्रतिष्ठादि अरु ग्रन्थमें, होइ शुद्ध मति लीन ॥५८॥

वक्ताके गुण।

चौपाई।

सर्वसङ्ग निर्मुक्त प्रवीन, पूजामें सो निशदिन लीन।
अनेकान्त मत पण्डित होइ, सकल शास्त्रको वेदक सोइ ॥५९॥
विन कारण जग बन्ध न लहै, भव्य जीव हित ऐसी कहै।
तप भूषण मय दरशन ज्ञान, समता गुणसागर शुभ ध्यान ॥६०॥
निरलोभी अरु निरहंकार, पुन धर्मी शुभ वचन विचार।
जिन शासन माहात्म्य प्रवीन, परकाशक मुनिवर व्रत लीन ॥६१॥
महाधी य प्रश्नोत्तर शास, शास्त्र आदि रचने छमितास।
कीर्ति प्रसिद्धिमान जग होइ, सत्य वचन अङ्कित बुधसोइ ॥६२॥
दोहा—इनै आदि गुण सार जै, भूषित ऋषिवर जेय।
ते वक्ता सब शास्त्रकै, गुण उत्तम बुध गेय ॥६३॥

वक्ताका लक्षण।

चौपाई।

सत्य वचनमें दक्ष महान, धर्मवन्त व्रतवन्त बखान।

१—अत्यन्त बुद्धिमान्, २—हित अहितका विचार करनेवाला, ३—समर्थ, ४—समर्थ।

अरु चारित्र धरै पर मान, नाहीं शिथिल आतमा मान ॥ ६४ ॥
धर्म वेदता परम प्रवीन, क्रिया-चरणमें सो बहुलीन ।
सुथिर आतमा परम सुजान, धरमवन्त जे पुरुष महान ॥६५॥
ज्ञानहीन जे धर्म रहीन, तिनकौ बोधै परम प्रवीन ।
ऐसे मुनि जिनवचन गंहीर, नमौं शुद्ध आतमा सुधीर ॥६६॥
दोहा—शास्त्र तने करतारके, लक्षण इहि विधि जान ।
वरधौं गुणज्ञाता अवर, धरमवन्त शुभ ज्ञान ॥६७॥

श्रोताके गुण ।

चौपाई ।

अर्हद्भक्ति सदा आचरै, निरग्रन्थी गुरु सेवा करै ।
चतुर प्रवीन कसौटी जेम, सार असार विचारत एम ॥६८॥
सूरि उक्ति अति श्रद्धा करै, सत्य वचन मन समकित धरै ।
यह विधि गुण अनन्त जुत होई, राग द्वेष व्यापै नहि कोई ॥६९॥
अब श्रोता चौदह परकार, कहौं सबै शुभ अशुभ विचार ।
प्रथम हँसवत हैं बड़भाग, पय पीवै अवगुण-जल त्याग ॥७०॥
काहू सूप समान स्वभाव, अवगुण फटकै गुण रहि जाव ।
शुक समान जे श्रोता कहै, पढ़त पढ़ावत सो सुध लहै ॥७१॥
शुभ श्रोता ये तीनों भेय, अब एकादश अशुभ सुनेय ।
माटीवत जो श्रोता जोइ, सुनतहि कोमल, सदा कठोर ॥७२॥
चलनी सम श्रोता है जेय, सार वस्तुको त्याग करेय ।
महिषा वत पुन श्रोता कोइ, निर्मल नीर मचावत सोई ॥७३॥

१—गम्भीर। २—सार और असारका विचार करनेके लिये कसौटी-पत्थरके समान, ३—आचार्योंके वचन।

श्रोता कोई विलाव सुभाय, घृत पय दधिभाजन ढड़काय।
फिर पीछे भुवि चाटत फिरै, त्यौं गुण ग्रन्थ हृदय ना धरै ॥७४॥
मशक समान जु श्रोता होइ, भली बुरीकौ भेद न कोइ।
श्रोता मूढ़ जलूँका[1] जास, पय तज गहै रक्त औ मास ॥७५॥
उलूकसम जे श्रोता कहै, दिवस अन्ध रजनी दृग लहै।
ग्रन्थ सुनत सोवै अधिकाहि, सहज नींद ना दीसै ताहि ॥७६॥
फूटे घटवत श्रोता एक, रहै न तामें नीर विवेक।
पशु समान जे श्रोता होइ, मूरख महा ताहि अवलोइ ॥७७॥
बगुल ध्यानकी पटतर तेह, बुरी बात जिय धारै जेह।
श्रोता जे पाषाण समान, जड़ता धरैं भिदै नहिं ज्ञान ॥७८॥
ए श्रोता दश चार सु कहै, निज निज भाव फलाफल लहै।
सकल शास्त्रको वेदक होइ, शुभ आशय जानौं भवि लोइ ॥७९॥

सवैया तेईसा।

ज्यों कलधौत मगाय धनी, ग्रह तौल सुनारके हाथकै दीनों।
देखत ही गढ़वायौ तिन्हे, नहिं चित्त चलै इमि चौकस कीनों ॥
मौन लियै तह दुष्ट दिखै, अरु कायसौं नैकु उसास न लीनो।
त्यों यह ग्रन्थ सुनै सुख पोख, लहै सुर मोख गिरा भ्रम भीनों ॥८०॥

श्रोताका लक्षण—सम्यक्त्व निरूपण ॥

चौपाई।

जिन सम्यक्त्व कह्यो परवीन, जीव तत्त्व आदिक गुणलीन।
तत्त्व अरथ है मुख्य विराग, भवमें भोगधाम बड़भाग ॥८१॥
दान देइ नित पूजा करें, शील विरत[2] आदिक हिय धरै।

१—जौंक, २—व्रत।

ता फल बन्ध मोक्ष सुर होई, उद्यम करो भक्तिजिन सोई ॥८२॥
दया धर्म जीवन पै करै, सर्व संग त्यागी गुण धरै।
इहि विधि सैं वरतै शुभ ध्यान, धर्मध्यान हिरदैं धरि ज्ञान ॥८३॥
त्रेशठ पुरुष महन्त प्रवीन, महा रिद्धिधारी सुखलीन।
तिनिकौ कहै पुराण महान, भवि अन्तर संपति गुण खान ॥८४॥
और पुरुष शुभ या भव जोग, कहै धर्मकी कथा मनोग।
सार वस्तु शुभ दायक होई, सत्यवन्त जानौ भवि सोई ॥८५॥
जिनवरसूत्र सु श्रोता कोय, पूरब अपर विरोधी होय।
शृंगारादि करण भव सुक्ख, पापकारिणी दाइक दुक्ख ॥८६॥
दोहा—इत्यादिक श्रोता तनै, लच्छन कहे प्रतेकै[१]।
सम्यक् बुधि निश्चय कह्यो, कह्यौं चरित गुन नेक ॥८७॥
अरिल—वर्धमान जिन चरित जु श्रेणिक बूझियौ।
श्री मुख वाणी भई अनक्षर गूझियौ॥
तब गौतम गनराय, नृपति प्रतिभामियौ।
सकल सभा हरषंत, जगत परिकासियौ ॥ ८८ ॥
सकलकीर्ति मुनिराज, संसकृत रचत वै।
ताकौ लै अनुसार, कह्यौं भाषा अवै॥
सिंगई देवाराइ, खटोला पुर ठए।
तिन सुत प्रथमहि 'नवल' पंच गुरु पद नए ॥ ८९ ॥

कवि लघुता।

सवैया—जैसें नर पंगु कोई मेरु शिखा चढ़िवेकौं,
बाॅवन[२] ही कहै दधि[३]को तो भुज तरिहौं।

१-प्रत्यक। २-वामन-ठिनंगा, ३-उदधि-समुद्र।

बाल जलमध्य शशिबिम्ब देखि गह्यो चाहै,
मूरख तौ कहै अंग पूर्व पार धरिहौं ॥
क्रोधवंत केहरिकौं देखत गयंद भजै,
तासौं मृगि वीरजविहीन कहै लरिहौं ।
तैसें यह ग्रन्थकौं आरंभ कियो अल्पबुद्धि,
गुनी कोई हसैं मोंहि ऐसो नहि डरिहौं ॥ ९० ॥

दोहा—जिनवाणी—सागर अगम, पार न कोइ लहेइ ।
मति-भाजन[1] जेकौ जितौ, तेतौ भर भर लेइ ॥ ९१ ॥
मधुरवचन कोकिल कहे, आमकली चखि आप ।
जैसें, ग्रन्थ कह्यौ किमपि, जिनवानी परताप[2] ॥ ९२ ॥

गीतिका छन्द

इमि भांति इष्ट सुदेवता, सब जोरि कर तिनि पद नम्यौं ।
निज परमगुण जुत वक्तृ[3] आदिक, तासु भनि दोष न वम्यौं ॥
जिनराज मुख सम्यक् कथा, शुभ धर्म खानि सुजानियौ ।
चरम जिनपति चरित निरमल, करम शान्त वखानियौ ॥९३॥
वीरतें वर वीर गुननिधि, वीर विधि[4] हति हौं सही ।
वीर प्रभु जगधीर जिनवर, सासते[5] पदको लही ॥
वीर गुन अति बुद्धि सुन्दर, यहै जस अब लीजिये ।
निज भक्ति हिय धर करहु वीनति, वीर गुन मुहि दीजिये ॥९४॥

इति श्री कविरत्न नवलशाह विरचित-भाषा छन्दोबद्ध वर्धमान पुराणमें
इष्टदेवता नमस्कार तथा वक्ता श्रोता आदिके लक्षणोंको
वर्णन करनेवाला प्रथम अधिकार पूर्ण हुआ ।

१—बुद्धिरूपी वर्तन, २—प्रताप-प्रभाव। ३-वक्ता श्रोता आदि, ४—कर्म-रूप शत्रु, ५—शाश्वत—स्थायी—नित्य ।

द्वितीय अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा—वीर अंघ्रि[1]-अघ नीर[2] सम, कर्ममल्ल हैन[3] वीर।
उपसरगादि[4] परीषहा, जीतै नमौं सुधीर॥ १॥

कथा वर्णन।

चौपाई।

जम्बूवृक्ष अलंकृत जान, राजै जम्बूद्वीप महान।
सागर द्वीप असंख्य मझार, दीसै व्योम नखत उनहार॥ २॥
जोजन महालाख इक जान, मध्य सुदरदन मेरु प्रधान।
तहां ल्याइ जिनवरकौ देव, करैं न्हवन बहुविधि सौ सेव॥ ३॥
ताकी पूर्व दिशा राजेह, उत्तम रम्य जु पूर्व विदेह।
शोभा तास वरन को कहै, ठौर ठौर जिन मन्दिर लहै॥ ४॥
यही क्षेत्र भवि तप बल सार, तहां लहैं मुनिवर अवतार।
कर्म क्षय कर ह्वै शिवपती, सार्थ नाम शुभ ऊरधगती॥ ५॥
ता मधि सुन्दर सीता[5] जान, उत्तर तट भविजन पहिचान।
पुष्कलावती देश बखान, सो है लक्ष्मीको सोपान॥ ६॥
तीर्थंकर मन्दिर अति घना, तुङ्गकेतु[6] जिमि दामिन गना।
नगर ग्राम वन आय अनेक, मानों सर्व सुरालय एक॥ ७॥

१—महावीरस्वामीके चरण, २—पापरूप मैनको धोनेके लिये जलके समान, ३—कर्मरूप मल्लोंको नष्ट करनेमे शूरवीर, ४—उपसर्ग तथा परिषह आदिको जीतनेवाले, ५—सीता नामकी महानदी, ६—जहां ऊँची२ पताकाएं बिजलीसमूहके समान शोभायमान होती है।

गणेशादि विहरैं जु महन्त, तुरिय संघ भूषित अरहन्त ।
वरतावें जहँ धर्म प्रभाव, पाषंडी लिङ्गी नहिं नाव ॥ ८ ॥
दया धर्म अरहँत मुख होइ, श्रावक जती दुविध अवलोइ ।
पढ़ैं अङ्ग पूरव गुण ज्ञान, रहित कुज्ञान कुशास्त्र अयान ॥ ९ ॥
प्रजा वर्णत्रय मण्डित सार, ब्राह्मणवर्ण न होइ लगार ।
मुख सुधर्ममें सब परवीन, बहुत शास्त्रभ्यासी गुण लीन ॥१०॥
उपजें तहँ तीर्थंकर राय, चक्री अर्धचक्री बलभाय ।
गिनती नहिं तिनकी सुखदाय, धनुष पांचसै ऊँची काय ॥११॥
आयु कोटि पूरवकी लहै, काल चतुर्थ सदा तहँ रहैं ।
महापुरुष परसादे सोइ, सुरग मोक्षफल प्रापति होइ ॥१२॥
ताके मध्य नाभिवत कही, नगरी पुण्डरीकिणी सही ।
द्वादश जोजन लम्बी जान, नव जोजन चौड़ी पहिचान ॥१३॥
ताको कोट जु गिरदाकार, चौपथ सहित नगर विस्तार ।
दरवाजे इक सहस बखान, लघु खिड़की शत पंच प्रमान ॥१४॥
पथ पथ बीथी एक हजार, तिन सौ तीन तीन निरधार ।
बारह सहस जानियौ सोइ, इन्द्रपुरी सम शोभित जोइ ॥१५॥
अति उतङ्ग जिन मन्दिर पांत, सोहै तास ध्वजा फहरात ।
धरमी जन निवसैं तिहि थान, धन कन पूरण पुण्य प्रधान ॥१६॥
नगरी बाहर वन शोभन्त, अति मनोज्ञ मधु नाम महन्त ।
शीतल छाय फले फल जहां, दुविध ध्यान मुनि भूषित तहां ॥१७॥

१—गणधर आदि २—चार संघ, ३—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ४-नारायण, ५—चौरासीलाख वर्षका एक पूर्वांग होता है और पूर्वांगका पूर्वांगमें गुणा करने-पर जो लब्ध आये उसे पूर्व कहते हैं। इसका वर्णन मूल ग्रन्थमें आगे आवेगा।

जहां बसैं भीलनको साथ, पुरूरवा है तिनको नाथ।
ताकी प्रिया कालिका नाम, शील शिरोमणि निवसै धाम ॥१८॥
एक दिना काननमें जाय, मृग मार्यौ निर्दय दुखदाय।
तिहि अवसर ता वनहि मंझार, आए जिन विहरत भवि तार ॥१९॥
सारथवाह सङ्ग अभिराम, सागरसेन मुनीश्वर नाम।
ईर्यापथ सोधत परवीन, दरशन ज्ञान चरण मन लीन ॥२०॥
देखि मजमी भील वेरियौ, लूटनको तब उद्यम कियौ।
वनदेवन संबोधे तबै, अति निषिध्य कारज है सबै ॥२१॥
तुम करतव्य जोग नहि नाथ, अघकारण दुर्गतिको साथ।
देव वचन सुन उपशम सही, काललब्धितैं मृदुता लही ॥२२॥
पुरूरवा तब भील सु नाम, देखि मुनी तहं कियो प्रणाम।
धर्मवृद्धि दीनी मुनि वानि, कृपावन्त है भवि पहिचानि ॥२३॥
अहो भद्र! मो वच सुन सार, धर्म जान त्रिभुवन भवतार।
धर्मप्रभाव लक्ष्मि होइ, इन्द्र चक्र तीर्थ कर सोइ ॥२४॥
भोगपभोग वस्तु शुभ जान, मनोभाव सुख संपत दान।
ऊँच गोत्र बहु पुत्र सहीत, धर्मप्रभाव शत्रुकर प्रीत ॥२५॥
पंच उदम्बर तीन मकार, इनतैं रहित होइ भवपार।
सम्यक् सहित अणुव्रत पांच. गुणव्रत तीन कहे जिन सांच ॥२६॥

१—पापका कारण, २—भोगोपभोग—जो वस्तु एकवार भोगनेमें आवे उसे भोग और जो अनेकवार भोगनेमें आवे उसे उपभोग कहते हैं। ३—वड, पीपल, ऊमर, पाकर, ऊमर और अजीर, ४—पञ्च पापोंका एक-देश त्याग करना—अहिंसाणुव्रत, सत्याणुव्रत, अचौर्याणुव्रत, ब्रह्मचर्याणुव्रत, परिग्रहपरमाणाणुव्रत, ५—दिग्व्रत, देशव्रत, अनर्थदण्डव्रत।

चउ शिक्षाव्रत भाव समेत, साधै गृहपति स्वर्ग सहेत।
द्वादश व्रत ये श्रावक जान, जतिवर धर्म दुंती पहिचान ॥२७।
यह प्रकार मुनिवच सुन तबै, छोडो बध बंधादिक सबै।
नैमिकै मुनि चरणाम्बुज दोय, श्रावक धर्म धरें दृढ़ होय ॥२८॥
सम्यग्दृष्टि गह्यौ सुखकार, भील अधिक शुभ चित्त विचार।
बारह व्रत सुन भेदाभेद, श्रद्धावान भयो तजि खेद ॥२९॥
दोहा—संसारी दुःख तपत अति, यौ जिय आदि अनन्त।
पूर्ण सरोवर जैन मत, तामें हुवौ प्रशन्त ॥ ३० ॥
शास्त्राभ्यासी शीलमय, कुलगरिष्ठ गुण खान।
जिनमतके परभाव तैं, निर्धन ह्वै धनवान ॥ ३१ ॥
परमानंद लहै सदा, उपजे हित सन्तोष।
अति दुर्लभ जिनधर्म यह, पायौ सुर शिव पोषं ॥ ३२ ॥
पंथ मांहि मुनि परसकै, नमस्कार कर तेह।
पुण्यवंत वह भील तब, गयौ हरषि निज गेह ॥ ३३ ॥
मुनि भाषित व्रत पाल ही, रहै सुक्ख सौं एव।
मरण अन्त सु समाधि लहि, प्रापत भयौ सुदेव ॥ ३४ ॥

चौपाई।

प्रथम स्वर्ग सौधर्म महान्, ऋद्धिवन्त वहु सुक्ख प्रधान।
भिल्ल देव तहं धर्म प्रभाव, उपजौ सागर एक जु आवं ॥३५॥
संपुट शिला गर्भ सो लयौ, अन्त मुहूरत जोवन भयौ।

१—सामायिक, प्रोषधोपवास, भोगोपभोगपरिमाण, अतिथि-सविभाग, २—द्वितीय—दूसरा, ३—नमस्कार करके। ४—उच्च कुलवाला। ५—कल्याण अथवा मोक्षका पोषण करनेवाला। ६—आयु। ७—उपपाद शय्या स्वप्न जैसा।

[वि]मान आदि लक्ष्मी वहु देख, अचरज कर सपनैं सो लेख ॥३६॥
ततक्षण अवधि ज्ञान पहिचान, संपूरण पूरव भव जान।
व्रत आदिक फल जान्यों सबै, दृढ़ मन धर्म धर्‍यौ सुर तबै ॥३७॥
पीछे सब परिवार समेत, गये जिनालय वन्दन हेत।
अष्ट द्रव्य जल आदिक लेइ, जिनवर आगे अरघ धरेइ ॥३८॥
धर्म उपावन कारण जोइ, आवै निजवाहन[१] चढ़ि सोइ।
मेरु आदि नन्दीश्वर द्वीप, गीत नृत्य वादित्र समीप ॥३९॥
जिनवर केवलि ज्ञान महान, गणेशादि माहात्म्य सुजान।
आवै तहाँ भक्ति मन धरै, शिर नवाइ कर वन्दन करै ॥४०॥
सुनै धर्म तहाँ दुविध प्रवीन, तत्व अर्थ गर्भित गुणलीन।
जहाँ उपार्जि वहु पुण्य सुमेव, जाय आपने मन्दिर देव ॥४१॥
इहि विधि विविध पुण्यको करै, शुभ चेष्टा हिरदै सुख धरै।
देविन संग क्रीड़ा विस्तरै, गीत सुनै नर्तन मन हरै ॥४२॥
शृंगारादि सरूप विशाल, सुन्दर दिव्य जोषिता[२] जाल।
तिनकी शोभा अगम अपार, कहतन को बुध पावै पार ॥४३॥
दोहा—पूर्व उपार्जित पुण्य सब, भुगते भोग अमङ्ग।
सात हाथ ऊँचौ सुवपु[३], सात धातु नहि अङ्ग ॥४४॥
तीन ज्ञान वसु ऋद्धि[४] कर, भूषित दिव्य सुदेह।
सुख सागरकी केलिमें, तिष्ठै सुर गुण गेह ॥४५॥

१—सवारी, २—योषिताजाल—स्त्रियोका समूह, ३—सुन्दर शरीर, ४—अणिमा महिमा आदि आठ ऋद्धियां।

चौपाई।

भरतक्षेत्र वह आरज खण्ड, तामधि कौशल देश अखण्ड।
उपजै भव्य आर्जे[1] परिणाम, मोख लहैं कोइ ग्रैवक[2] धाम ॥४६॥
कोई स्वर्ग वसैं तजि पाप, भोगभूमि शुभ दान प्रताप।
कोई पूर्व विदेहै जाइ, पावै नृप पद सो पुन आइ ॥४७॥
कोई मुनिपद केवलि कोइ, धर्म आदि उपदेशक सोइ।
विहरैं जगत पूज्य सविचार, चार संघ भूषित अविकार ॥४८॥
पुर पत्तन अरु ग्राम अपार, शोभित तुङ्ग जिनालय सार।
कानन[3] सफल तहाँ मुनि रहैं, ध्यानारूढ़ आतमा गहैं ॥४९॥

दोहा—इत्यादिक शोभा सहित, देशमध्य राजंत।
पुरी अयोध्या रम्य अति, नीतिवंत तन संत ॥ ५० ॥

चौपाई।

आदिनाथ जिन उपजै तहां, देवन रची पुरी शुभ जहां।
नव द्वादश योजन विस्तार, वरनत कौन लहे बुध पार ॥५१॥
तुङ्ग कोट गोपुर कर सार, दीर्घ खाँतिका[4] गिरदाकार[5]।
मन्दिर पांति सघन शोभंत, सुर आदिक तहँ प्रीति करंत ॥५२॥
हेमतनै चैत्यालय सही, रतन मई प्रतिमा तहँ लही।
दानीजन मार्दव[6] परवीन, धरमशील शुभ आशय लीन ॥५३॥
आर्जवादि गुण मण्डित सोइ, रूप कला छवि भूषित जोइ।
धरमवंत उत्तम आचार, सुखी पुरुष जिन भक्ती सार ॥५४॥

१—आर्जव परिणामी सरल परिणामी, २—ग्रैवेयिक—सोलह स्वर्गके ऊपर रहनेवाले ९ विमान, ३—वन, ४—विशाल परिखा—'खाई', ५—गोल आकार, ६—विनयमे निपुण।

पापरहित अरु महापुनीत, अति धनवान परस्पर प्रीत।
बसैं तुङ्ग मन्दिरमें सोइ, मानों सुर विमान यहु होइ ॥५५॥
तिनकैं तिय गुण कांति अपार, सुरदेवी सम शोभा सार।
इच्छैं अमर लेन अवतार, शिव प्रापति कारण सुविचार ॥५६॥
भूप तहां लक्ष्मीको धाम, भरत चक्रपति गुण अभिराम।
आदि श्रेष्ठ धरता जग ज्येष्ठ, भरतक्षेत्र अधिपति परमेष्ठ ॥५७॥
अकँपन नाम आदि भूपाल, नमि सुमुख्य खगपति सुकुमाल।
आवैं ता प्रताप सौं देव, नमैं चरण-अम्बुजकर सेव ॥५८॥
छहौं खण्ड स्वामी गुणलीन, चरम[1] अंग जिन धर्म प्रवीन।
नौ निधि चौदह रत्न महान, बनिता आदि शील सुखखान ॥५९
तीन ज्ञान शुभ कला विवेक, विद्यादिक गुण सहित अनेक।
रूप आदि बल संपति घनी, वरण सकै को बुध तिहि तनी ॥६०॥
पुण्यवती देवी तसु रानि, पुन्या दासी सुखकी खानि।
पुण्य सहित अर हिये विचार, पति आज्ञा पतिव्रत आचार ॥६१॥
पुरूरवा सुर तहँ तैं चयौ, पुत्र आय ताकैं उर भयौ।
नाम मरीच कुँवर तस जोइ, रूप आदि गुण मण्डित सोइ ॥६२॥
क्रमसौं वृद्धि करै दिनरात, भूषण भूषित निर्मल गात।
कला अनेक शास्त्र पढ़ तदा, आप जोग पाई संपदा ॥६३॥
पिता सहित सुख क्रीड़ा करै, पूर्व उपार्जित सुख व्यौपरै।
विविध भोग पृथिवीमें सार, भुगतहि ते मारीचकुमार ॥६४॥
एक दिना श्री आदि जिनेश, देवीनृत्य मरण लख भेष।

१—चरम शरीरी—उसी भवसे मोक्ष जानेवाला।

भोग अङ्ग राज्यादिक सबै, तज संवेग¹ उपाज्यौं तबै ॥६५॥
इन्द्र आदि सब राजनि लए, चढ़ि शिविका² सो वनमें गये।
तजि कै दुविधं³ परिग्रह भार, ग्रहत भये संयम सुख धार ॥६६॥
तब कक्षादि भूप परवीन, स्वामि भक्तिमें तत्पर लीन।
चार सहस जानौ सब लोइ, निश्चै प्रभुके सेवक सोइ ॥६७॥
तिनके सँग मारीचकुमार, संयम द्रव्य धरौ अविचार।
नगन भेप धारौ हितकार, स्वामी वचन हि हिये विचार ॥६८॥
छोड्यौ देह ममत्व निदान, अचल भये प्रभु मेरु समान।
हन्यौ कर्म अरिकौ संतान, आरति रौद्र निकर्न्दन⁴ जान ॥६९॥
छह महिना पर्यंत सुलीन, धरौ जोग उत्कृष्ट प्रवीन।
लम्बी भुजा-दण्ड कर सोय, कायोत्सर्ग ध्यान दृढ़ होय ॥७०॥
तब सब राय कर्मके जोर, पीड़े क्षुधा प्यास सौं घोर।
जन्म अन्त लौं को तप भजौ, ह्वै असमर्थ सुपीछौ तजौ ॥७१॥
कहैं कि प्रभु तो जग भरतार, वज्रकाय थिर चित अविकार।
जान्यौ जाय न केतै काल, थिर रहि है इहि विधि भूपाल ॥७२॥
हम तौ इन समान इहि थान, रहैं होइ प्राननकी हान।
यातैं कहा कीजिये अबै, मरण बचै सुख प्रापत सबै ॥७३॥
इहि प्रकार लिङ्गिनं⁵ कहि बैन, नमैं नाथ चरणाम्बुज एन।
भरतरायके भयसौं तेह, जाय न सकै आपने गेह ॥७४॥
ता वनमें पापी अज्ञान, भक्षैं फल अखाद्य⁶ दुख दान।
अनँगाल्यौ⁷ जल पीवै दीन, हियै विवेक न हैं गुणहीन ॥७५॥

१—संसारसे भय, २—पालकी, ३—अन्तरंग और बहिरंग दोनो प्रकारका, ४—नष्ट करनेवाला ५-द्रव्यलिंगी, ६—अभक्ष्य, ७—विना छाना हुआ।

तिनके सँग मारीचकुमार, पीड़े अधिक परीषह भार।
तिन समान किरिया आदरै, अघ विपाकसौं सो व्योपरै ॥७६॥
दोहा—निन्द्य करम तिनको करत, आलोक्यौ वन देव।
कहै अरे शठ! तुम सुनो, यो वच शुभकर भेव ॥ ७७ ॥

चौपाई।

तपसा भेष मूढ़! तुम धरै, अशुभ निन्द्य कर्मनको करे।
हिंसा है अघकी करतार, नरकतनो भाजन अविचार ॥७८॥
गृही लिङ्गमें पाप जु होय, अरँह लिङ्गमें छूटै सोय।
होय पाप इह लिङ्ग मझार, वज्रलेप सम सो दुखकार ॥७९॥
जिनवर लिङ्ग जगत परधान, सो तुमने छोड़ो अज्ञान।
मिथ्यामत गहियो दुखकाय, यातैं नरक कूपमें जाय ॥८०॥
देव वचन सुन अति भयभीत, बुध पूजित मत तज्यौ पुनीत।
जटा आदि शिर धारै सबै, विविध वेष कीनै शठ तबै ॥८१॥
तिनके सङ्ग मरीचिकुमार, कठिन मिथ्यात्व उदै अविचार।
परिव्राजक दीक्षा उर धरी, जिनवर वेष सबै परिहरी ॥८२॥
बहुत कुशास्त्र रचन परवीन, दीरघ संसारी दुख लीन।
झूठ बहुत मिथ्यामत बात, सत्यवन्त नहिं हिये सुहात ॥८३॥
अब त्रिजगतपति आदि जिनेश, एकाकी वन ज्यों मिरगेश।
विहरै वर्ष जु एक हजार, मोन सहित पूरववत सार ॥८४॥
घातिकर्म—रिपु छेद्यो घोर, शुकल-कृपाण ध्यानके जोर।

१—पापके उदयसे, २—अरहत लिंग—निग्रन्थ—नग्न मुनिवेष, ३—विद्वानोंके द्वारा पूजित, ४—अनेक प्रकारके वेष, ५—मृगेश—सिंहके समान, ६—शुक्लध्यानरूपी तलवार।

केवल-ज्ञान लक्ष्मी भई, समोशरण सूचक सुर ठई ॥८५॥
रतन सुवर्णभूमि तहँ लसै, मानी जनों[1] मान जहं नसै ।
इन्द्रादिक सुरपूजन काज, आये निज निज वाहन साज ॥८६॥
भरतराय आदिक सब भूप, आये सुन प्रभु केवल रूप ।
कच्छ आदि लिङ्गिन सुन सबै, मोक्षवन्ध जिनवरको तबै ॥८७॥
आये प्रभुके बन्दन हेत, सङ्ग मरीचि कुंवर समचेत ।
तब श्री जिन मुखवाणी भई, वृषभसेन गणधर अरथई[2] ॥८८॥
तत्त्व पदारथ आदिक कहै, सकल सभा हितसौ सरदहै ।
भरतराय उठि नायो सीस, कृपावन्त कहिये जगदीश ॥८९॥
मो कुलमें उत्तम जिय कोय, हौनहार तीर्थंकर जोय ।
तब गणपति बोल्यौ इमि बैन, भो नरेश! सुनिये मन चैनैं[3] ॥९०॥
अन्तिम तीर्थंकर जगतार, हूहैंगे मारीच कुमार ।
हरपत भयौ तबै मनमाहि, जिनवर कही सु विकलप नाहि ॥९१॥
जिनपतिके वच सुन मारीच, दाइक मोक्ष हरन पद नीच ।
तबऊ न तज्यौ कुमत मिथ्यात, भव-कारण मानैं सुख गात ॥९२॥
वेप त्रिदण्डी कुबुध अताप, काय कलेश जु दायक पाप ।
हाथ कमण्डलु अङ्कित सोइ, मूरख हिये विचार न कोइ ॥९३॥
प्रात शीत जल न्हवन करेय, कन्दमूल आदिक भक्षेय ।
बाहिजकी उपाधिको त्याग, करै आतमामें सब राग ॥९४॥
कपिल आदि ता शिष्य अलीन, कलपित सत अंतर परवीन ।
इन्द्रजाल सम निन्द्य अपार, जथा अर्थ[4] प्रतिलोपन हार ॥९५॥

१—अहंकारी जीवोंका, २—अर्थरूपमें परिणत किया, ३—चित्तको प्रसन्न करके, ४—पदार्थके वास्तविक-सच्चे स्वरूपको लोपनेवाला ।

यह प्रकार भूल्यौ बहु सोय, मिथ्या मारगमें सुध खोय ।
आयु अन्त वश पायो मीचं, भरतराय सुत जो मारीच ॥९६॥
तप अज्ञान भयो फल एव, ब्रह्म स्वर्ग उपज्यौ सो देव ।
दश सागर ता आयु प्रमान, ऋद्धि अनेक संपत सुख खान ॥९७॥

कुतप तनौं देखो परभाव, पायो सुरमन्दिर शुभ ठाव ।
सुतप करैं जे नर सविचार, तिनके फलको नाही पार ॥९८॥
याही भरत क्षेत्रमें जान, साकेता नगरी पहिचान ।
ब्राह्मण कपिल वसै ता ठाम, प्रिया तातकी काली नाम ॥९९॥
ब्रह्म स्वर्ग तैं सो सुर चयौ, जटिल नाम ताके सुत भयौ ।
दुर्मत लीन भयौ द्रुत सोइ, वेद शास्त्रको वेदक² होइ ॥१००॥

पूरव संसकारके जोग, धारौ परिव्राजक तपशोग ।
मूढ जनन कर वन्दित भयौ, कुमति कुमार्ग प्रकाशक ठयौ ॥१०१॥
पूरव वत चिरकाल अमेय, आयु क्षीण सो मृत्यु करेय ।
कायकलेश तनौ फल लयौ, प्रथम सुधर्म³ स्वर्ग सुर भयौ ॥१०२॥
सागर दोय आयु परवान, अष्ट ऋद्धि सुख संपति जान ।
देखो भवि! निष्फल नहि जाहि, कुबुध कुतपसा जगके माहि ॥१०३
वही अयोध्या नग्र विशाल, सोहै मन्दिर पांति विशाल ।
भारद्वाज विप्र तिहि थान, पुष्पदन्त तस तिया वखान ॥१०४॥
सो सुर चयो तहां ते आय, पुष्पमित्र सुत तिनकै थाय ।
भ्यासी भयौ कुशास्त्र अपार, दुर्मत दुराचार अविचार ॥१०५॥
मिथ्यापाक बहुरि सो जान, मिथ्या मत मोहित अज्ञान ।

१-मृत्यु, २-जाननेवाला, ३-सौधर्म नामका पहला स्वर्ग ।

कीन्यौ पूरववत तिन वेष, और नरन दीनौ उपदेश ॥१०६॥
पैंचवीस[1] दुठ तत्त्व अभ्यास, दुरबुद्धी मानों पुनि जास ।
मन्द कषाय बांध सुर आव, छोड़ देह पायो शुभ ठाव ॥१०७॥
सौधर्म प्रथम स्वर्गमें गयौ, सागर एक आयु सुख लयौ ।
कुतप जोग बहु लक्ष्मी पाइ, देखो तप निष्फल नहि जाय ॥१०८॥
एही आरज खण्ड मंझार, स्वस्तिक पुर सोहै शुभ सार ।
अग्निभूति ब्राह्मण तहं वसै, नारि गौतमी ता घर लसै ॥१०९॥
स्वर्ग आयु चय कै सो देव, कर्म विपाकतनौ फल एव ।
अग्निसिंधु सुत तिनकै सार, मत एकांत शास्त्र वेत्तार[2] ॥११०॥
पूरववत सब विधि आदरी, परिव्राजक दीक्षा उर धरी ।
कुतप योग सब काल गमाय, आयुहीन तिन छोड़ी काय ॥१११॥
तप अज्ञान कलेश प्रभाव, भयो देव पायो शुभ ठाव ।
सनत्कुमार स्वर्गमें सोय, वारिधि सप्त[3] आयु तहं जोय ॥११२॥
यहै क्षेत्र शुभ भरत महान, मंदरपुर ता मध्य प्रधान ।
विप्र वसै तहं गौतम नाम, ताके प्रिया कौशिकी वाम ॥११३॥
देव भयौ तिनकै सुत भयौ, अग्निमित्र नामा तस दयौ ।

१—'प्रकृतेर्महांस्ततोऽहंकारस्तस्माद्गणश्च षोडशकः । तस्मादपि षोडशकात्पञ्चभ्यः पञ्चभूतानि ॥ पुरुष, प्रकृति—प्रधान (अचेतन पदार्थ), महत् बुद्धि, अहंकार—अभिमान, ग्यारह इंद्रियां—पांच कर्मइन्द्रियां (वचन, हाथ पाव और दो गुह्यस्थान), पाच ज्ञानेंद्रिय (स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण) तथा मन पंच तन्मात्राएं—स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण शब्द, और पंचभूत—पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश तथा—पुरुष-जीवतत्व (चेतन पदार्थ) ये सांख्य मतमें २५ तत्व माने गये है, २—जाननेवाला, ३—सात सागर ।

मिथ्यादृष्टी उपजो जास, कुमति तनो कीनौ परकाश ॥११४॥
पुनि पूरव भव सम अभ्यास, पुरातनी दीक्षा उर वास ।
बहु कलेश धारो तिन काय, आयु क्षीण तहं मरण कराय ॥११५॥
तप अज्ञानतनै परभाव, स्वर्ग महेन्द्र देवपद पाव ।
सागर सप्त[1] आयु परवान, श्री दिव्यादिक मण्डित जान ॥११६॥
वहैं पूर्ववत गुण अभिराम, सोहै पूरवसन्दर नाम ।
सालंकाइक विप्र वसन्त, नाम मन्दिरा तिय शोभन्त ॥११७॥
स्वर्ग महेन्द्र देव सो चयौ, भरद्वाज नाम सुत भयो ।
अति कुशास्त्रमें तत्पर लीन, मिथ्यामत वेदक परवीन ॥११८॥
अन्त अज्ञान जोग आदरौ, वेष त्रिदण्डीको वह धरौ ।
तप कर देव आयुको बांधि, मरण समय कर हिये समाधि ॥११९॥
स्वर्ग महेन्द्र भयौ सो देव, करैं तास देवी सब सेव ।
सप्त जलधि तहँ आयु प्रमान, तप कलेश पायो शुभथान ॥१२०॥
दोहा—तहां तै चय दुर्मार्ग धर, प्रगट्यौ भूतल मांहि ।
महा पापके पाकतैं, निन्द्य अधोगति जाहि ॥१२१॥

चौपाई ।

इतर निगोद भ्रम्यो सो जाइ, सागर एक प्रयंत[2] रहाइ ।
असुरकुमार परौ बहु वैर, नरकन मांहि लखावे वैर ॥१२२॥
साढहि सहस आकतरु होइ, पायो दुख बहु गने न कोइ ।
असी सहस भव सीपै धार, भयौ नीम तरु बीस हजार ॥१२३॥
केलिवृक्ष उपजो बहुवार, नवै सहस भव धरौ असार ।

१—सात सागर, २—पर्यन्त—तक ।

सहस तीन चन्दन तरु होय, पञ्च कोडि भव कनैयड़[1] सोय ॥१२४॥
गणिका[2] भवधर साठ हजार, पांच कोड तन पसियाँ[3]धार ।
बीस कोड़ गज उपज्यौ भार, साठ कोड़ खर[4] भौ दुंख धार ॥१२५॥
तीस कोड़ भव श्वा[5]नहिं भाख, भयौ नपुंसक साठ जु लाख ।
बीस कोड़ नारी तन साख, रजँक भयौ नर नवैजु लाख ॥१२६॥
आठ कोड़ धर तुरी[8] प्रजाइ, बीस कोड़ मंजार[9] सुभाइ ।
नार गर्भसौ गिरयौ सोइ, साठ लक्ष तन तै अब लोइ ॥१२७॥
साठ लाख भव नृपपद पाय, नहि पन छोड्यौ कर्म उपाय ।
कबहूं दान सुपात्रै दियौ, ता फल भोगभूमि सुख लियौ ॥१२८॥
असी लक्ष पुन सुर पद लेह, असी लक्ष भव धारी तेह ।
पुन पुन भ्रम संसार मंझार, वहु परजाय दुःखकौ धार ॥१२९॥
कर्म-संखलौं[10] बन्ध्यौ फिरै, फिर फिर भवसागरमें परै ।
सर्व दुःख नाना परकार, मिथ्यामति-तरु फल्यौ अपार ॥१३०॥
अरिल्ल[11]—अगनि मांहि परजरै, पियै हालाहल कोई ।
समुद मांहि जो परै, किमपि वर है भवि सोई ॥
खाय सिंघ अहि खाय, चोर भयको करै ।
प्राण हतन जो होय, न मिथ्या आदरै ॥ १३१ ॥
सोरठा—सरसों सम है पाप-मिथ्या, मेरु समान दुख ।
प्राण अन्त बुध आप, ऐसी जान न कीजिये ॥ १३२ ॥

१—कुबेर, २—वेश्या, ३—शिकारी, ४—गधा, ५—भव-पर्याय, ६—कुत्ता, ७—धोबी, ८—घोडी, ९—बिलाव, १०—कर्मरूपी श्रंखला सांकल। ११—प्रारम्भके दो चरण 'रोला' और अन्तिम दो चरण 'अरिल्ल' छन्दके है, परन्तु हिन्दीमे इस रीतिके उपजाति 'छन्दो' का प्रचार नही है।

गीतिका छन्द।

इमि कुपथंपाक पाक अनेक भव धर, वेप तिरयञ्च हि तनो।
पुनि भ्रम्यौ बहु परजाय अन्तर, दुःख जलनिधि सम भनो॥
यह जानिके मिथ्यात मारग, तजहु संपूरण सही।
सम्यक्त्वको नित आदरो भवि! जो त्रिजग सुख वांछही॥१३३॥
हैं नन्त सुख दाता सुजिनवर, दुखहरण वर वीर हैं।
जग अन्त भवको नाश कीनौ, बुद्धि-धन मन धीर हैं॥
बहु घातिया हति मुक्ति प्रिय पति, वीर भवित्त प्रनामियौ।
सोइ वीर करता होहु मुझको, 'नवलशाह' बखानियौ॥१३४॥

इति श्री कविरत्न नवलशाह विरचित भाषा छन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमे
पुरुरवादि अनेक भवोका वर्णन कानेवाला
द्वितीय अधिकार पूर्ण हुआ।

१—कुमार्ग—खोटे कर्मके उदयसे।

तृतीय अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा।

तीन लोक नहि बन सकै, गुण अनन्त जिनराज।
सुर हिरदैसें अआचरै, नमौं तास गुण काज ॥ १ ॥

चौपाई।

मगधदेश देशन परधान, राजग्रह तहँ नगर बखान।
साडिल नाम विप्र तहां वसै, पारासर नारी ता लसै ॥ २ ॥
भटके भ्रमत बहुत दुख पाय, स्थावराख्य सुत उपज्यौ आय।
पूरववत मिथ्या संस्कार. परिव्राजक दीक्षा उर धार ॥ ३ ॥
कायकलेशतने परभाय, मरण अन्त सुर उपज्यौ आय।
कल्प महेन्द्र अंम्बुनिधि[1] सात, पाई आयु सुक्ख विख्यात ॥ ४ ॥
एही मगधदेशमें लसै, राजग्रही शुभ नगरी वसै।
विश्वभूति महिपतिको नाम, जैनी प्रिया तासके धाम ॥ ५ ॥
सो वह देव स्वर्गतें आय, विश्वनन्दि सुत तिनकै थाय।
अति प्रसिद्ध पौरुष परवीन[2], पुण्य सुलक्षन गुणमें लीन ॥ ६ ॥
विश्वभूति भूपति अति नेह, अनुज[3] विशाखभूति गुण गेह।
लक्ष्मणाख्य नारीको नाम, लक्षण भूषित सुन्दर बाम ॥ ७ ॥
तिनकै पुत्र कुबुद्धी भयौ, नाम विशाखानंदि तिहि दयौ।
ते सब पूरव पुण्य सँजोग, करैं सुक्ख मनवांछित भोग ॥ ८ ॥
मेघ पटलको देख विनाश, विश्वभूति नृप भयौ उदास।

१–सागर–सात सागर, २–प्रवीण–चतुर, ३–छोटा भाई।

यह विध जोबन आयु शरीर, विनश जाय ज्यों बादर नीर॥ ९॥
जौ लौं जौबन बल यों आव, है शरीरमें इनको चाव।
तो लौं अनघ तपस्या करौं, मोख तनी सामग्री धरौं॥१०॥
इत्यादिक चिंते हिय धार, तब संवेग दुगुण विस्तार।
सब भव भोग लक्ष्मी तजी, दीक्षा नृपने हिरदैं भजी॥११॥
राज्य भार तब अनुजहि दियौ, पद युवराज पुत्र थापियौ।
श्रीधर मुनिवर प्रणमे जाय, दुविध परिग्रह दियो छुड़ाइ॥१२॥
मन वच काया संजम धार, सो देवनको दुर्लभ सार।
राय तीनसौ संग सुजान, छोड़ो राग दोष दुख खान॥१३॥
हन्यौ मोह इंद्रिय अति घोर, ध्यान खडग संजयके जोर।
उग्र उग्र तप कीनों सार, घातै कर्म घातिया चार॥ १४॥
अब यह कथा रही इह ठौर, भाषौं भई जथारथ और।
विश्वनंदि नृप बाग विशाल, सोहै सुन्दर परम विशाल॥१५॥
हेम कोट लस गिरदाकार, चारों दिस दरवाजे चार।
बनैं कंगूरे तुंग सु ठार, चित्र विचित्र चितेउर धार॥१६॥
तामें सघनें वृक्ष अपार, फल अर फूल सहित सुखकार।
खारक दाख जायफर चार, नारंगी पुंगी कचनार॥१७॥
लोंग लायची इमली आम, फले नारियल शोभा धाम।
नींबू सदफर वेल खजूर, महुआ दाडिम कैंथ बमूर॥१८॥
नीम करोंदा तेंदू जूत, वर पीपर ऊमर जु अतूत।
जामुन वेर गटाइनि तवा, बीजौं तिस सगोना धवा॥१९॥

१–कठिन कठिन।

इहि अवसर ता वनहि मंझार, गयो विशाखानंदि गंवार ॥३०॥
मोहित भयो तहां सो जाय, कर्यौ उपद्रव अति दुखदाय ।
यह विरतंत देख वनपाल, जानो सफल पापको जाल ।३१॥
देखो मोह विगत संसार, अशुभ अर्थकर्ता अविचार ।
विश्वनन्दि राजा वर वीर, हिरदेमें हैं साहस धीर ॥३२॥
हम देखत रिपु ऊपर वाहि, याके पिता पठायो ताहि ।
इन कौटिलता कर वन लियौ, राजसनेह नाश सो कियौ ॥३३॥
मोह जगतमें निन्द्य अपार, करो तास इन अघ करतार ।
मोह नरक दुःख व्योपरै, यह भव परभव दुरगति धरै ॥३४॥
तिहि अवसर अरिजीत महान, आयो विश्वनन्दि गुणभान ।
सुनकै सटक्यौ सब व्यौहार, गयो रोष धर वनहि मंझार ॥३५॥
ताके भय सौं नन्दि विशाख, अति आतुर डरपौ सुख आख ।
वृक्ष कपित्थ मूल सो गयो, मध्य भाग ताकै छिप रह्यो ॥३६॥
विश्वनन्दि अद्भुत बल होइ, लियौ उखाड़ वृक्ष तिन सोइ ।
शत्रु देख कै अति भय दियौ, हनवै को तिन उद्यम कियौ ॥३७॥
तहँ तैं कढ़ि भाग्यौ पुनि सोइ, शिला स्तम्भ तर छिप्यौ सोइ ।
पीछौ गह धायौ सुकुमार, कहँ जैहे अन्यायि गमार ॥३८॥
मुष्टिप्रहार बली जब कर्यौ, शिलास्तम्भ ता छिन गिर पर्यो ।
ताके भये तुरत शत खण्ड, सबल पुरुषको दीने दण्ड ॥३९॥
तहँ तै भग्यौ विशाखानन्द, देख न रक्ष कषाय निमन्द ।
करुणा कर छोड़्यो तब सोइ, मनमें सुमरि पञ्चपद लोइ ॥४०॥

१—सब व्यवहार—'कामकाज' छोडकर ।

देखो भोग धिगत संसार, कातर जीव कदर्थ अपार।
दण्ड दियो मै बांधव काज, बंधादिक कीनो अघ साज ॥४१॥
विविध भोग भुगतें जब जीव, दुःख प्राप्त हित होइ सदीव।
तहू न तृप्ति लही जो सोइ, कष्ट साध्य अब तिनको होइ ॥४२॥
नारी भोग मथन उत्पत्त, मान जाय अरु होय विपत्त।
संपूरण सुख मुक्ति प्रधान, ताकौ इछै परम सुजान ॥४३॥
यह चिंतत उपजो वैराग, सुतको दीनो राज्य सुहाग।
छोड़ी लक्षमी अर्थ भँडार, गुरुके निकट गये सविचार ॥४४॥
मुनिके चरण कमलको नये, दुविध परिग्रह छोड़त भये।
दीक्षा लही महाव्रत धरो, विश्वनन्दि मुनि तप आदरो ॥४५॥

दोहा—रही कथा इस ठौर यह, नन्द गयौ शठ गेह।
सकल वृतान्त पिता सुनो, तब उर चिन्त करेह ॥४६॥

चौपाई।

बड़े पुरुष अपकीरति करैं, ऊंचे कुलको नीचौ धरें।
जे उपकारी नर परवीन, ते जगपूज्य पुरुष गुण लीन ॥४७॥
विशाखभूति यह चिंतत भयौ, पश्चात्ताप निरुत्तर लयो।
बहु प्रकार निन्द्यो संसार, तब संवेग ऊपज्यो सार ॥४८॥
भव तन भोग लक्षमी आदि, दुविध परिग्रह कीनो बादि।
मुनिके निकट गयो तिही घरी, मन वच काय सु दीक्षा धरी ॥४९॥
पापरहित तप कीनो घोर, काल चिरंतन कर्मनि जोर।
अपनी शक्ति परीषह सही, धर संन्यास मरण तब लही ॥५०॥
ताके फल उपज्यो सो देव, महाशुक्र वसु ऋद्धि समेव।

देविन सहित जु क्रीड़ा करै, धर्मवन्त सुख सौं व्योपरै ॥५१॥
विश्वनंदि तपकर चिरकाल, विहरै देश ग्राम वन जाल।
पाख मासमें लैहि अहार, भई क्षीण मुनि देह अपार ॥५२॥
आए बनतें चर्या हेत, ईर्यापथ शोधत पग देत।
शांतचित्त थिर चित अविकार, पहुंचे मुनि मथुरापुर सार ॥५३॥
तिहि अवसर आयौ ता गाम, विशाखनंदि भूपत्ति दुखधाम।
पथ समीप वेश्या गृह एक, तहं ठाडौ शठ रहित विवेक ॥५४॥
ता पथ आयौ श्री मुनिराय, मद मत्सर दोनों छुडकाय।
गो प्रसूत मारौ तह भृंग; दुःखल मुनिके लाग्यौ अंग ॥५५॥
मुनि महान अति धीरज धरौ, सही परीषह ध्यान न डरौ।
दुर्व्यसनी वह नन्द विशाख, देख जती ऊपर रिस भाख ॥५६॥
क्षीण पराक्रम मुनी शरीर, सहियो तिनको फेर अधीर।
बोलौ दुर्वच दायक पाप, दुख करता अर पातक पाप ॥५७॥
शिला स्तम्भ इन कीनौ भङ्ग, इतनौ हतो पराक्रम अङ्ग।
पूरव दर्प कहां सो गयौ, जानी जाय न कैसो भयो ॥५८॥
सो हम देखत दुर्बल भये, शक्ति रहित हिरदे अब ठये।
इहि विधि बहु दुरवच सुन सोइ, कोप्यौ मुनि बहु आतुर होइ ॥५९॥
रक्त वर्ण तब कीनैं अक्ष, दयावंत हिरदैं परतच्छ।
अरे दुष्ट! मो तप माहत्त[1], हास्य करी तुमने आसत्त ॥६०॥
पाहे तूं कीनौं है जास, कटुक मूल तें कीनौं नास।
यही तपस्याके परभाव, सब देखत छेदौं तुझ काय ॥६१॥

१—माहात्म्य।

यही विधि मुनि बांधि निदान, फिर निज भावनको उर आन।
निदान बन्ध बुध निन्दत मांग, यातैं सतपुरुषन नहि जोग॥६२॥
धर संन्यास करी मन धीर, तपसों छांटे प्राण शरीर।
महा शुक्र कल्प[1] सुर ठयों, तपके फलसों प्रापत भयो॥६३॥
जहां विशाखभूति मुनि देव, दोई भये एक थानेव।
षोडश सागर आयु प्रमान, मानैं देव बहुत जिहि आन॥६४॥
दिव्य देह तसु दीप्ति अपार, सप्त धातु वर्जित अविकार।
[वि]मान बैठकर बन्दन करै, मेरु आदि नन्दीश्वर परै॥६५॥
श्री जिनेश पूजें मन लाइ, पञ्चकल्याणक रहि अति साइ।
गिरि नद नदी सरोवर मांहि, क्रीड़ा करै चित्त हरसांहि॥६६॥

दोहा—सहजाम्बर भूषण सहित, ऋद्धि विक्रियावन्त।
पूर्व उपार्जित पुण्यफल, शान्ति कान्ति शोभन्त॥६७॥
विविध भोग ते भोगवे, देविन सहित सुजान।
सुखसागरके मध्य सुर, क्रीड़ा करत महान॥६८॥

चौपाई।

जम्बूद्वीप भरत या खण्ड, देश सुरम्य बसे विन दण्ड।
पोदनपुर नगरी शुभ बसै, तहँको भूप प्रजापति लसै॥६९॥
रानी जयावती गुणरूप, विशाखभूति सुर चयो अनूप।
तिनके पुत्र ऊपज्यो आय, विजयकुमार नाम सो पाय॥७०॥
मृगावती दूजी तिय आन, विश्वनन्दि तिनके उर आन।
उपजे पुत्र त्रिपृष्टकुमार, महाबली अरिदल क्षय कार॥७१॥

१—कल्प-स्वर्ग।

चन्द्रकान्ति तन विजयकुमार, बली त्रिपृष्ट नील वपु धार।
दोऊ न्यायमार्ग पर वीन, अधिक प्रताप कला सो लीन ॥७२॥
चरणकमल सेवैं बहुभूप, भूचर खेचर असुर अनूप।
महा विभव संपति सुख यान, दिव्याभरण लहै गुणभान ॥७३॥
क्रमसों जोवन प्रापत भये, लक्ष्मीगृह क्रीडा अति ठये।
पूरव पुण्यतनों फल सोय, भोग करैं मनवांछित लोय ॥७४॥
दान शील गुण सोहैं दोय, चन्द्र सूर्यकी पटतर होय।
बल नारायण जानो तास, तीन खण्ड अधिपति परकास ॥७५॥
विजयारधकी उत्तर सैन[1], अलकापुरी नगर जन चैन।
मयूरग्रीव तहँ राजा जान, रानी नीलयशा गुणखान ॥७६॥
विशाखनन्दि भ्रमि बहु परजाय, पुण्य फलै सुर दूजौ पाय।
तिनके सुत उपजौ चय देव, अश्वग्रीव गुणमण्डित एव ॥७७॥
प्रतिकेशव-अधचक्री सोय, तीन खण्ड भूपति पति होय।
जगप्रसिद्ध लक्ष्मी है धाम, सोरा सहस सकल तस वाम ॥७८॥
ताही उत्तर श्रेणि प्रधान, रथनूपुर नगरी शुभ थान।
अति मनोज्ञ उपमा नहि तास, नमिवंशी भूपति परकास ॥७९॥
ज्वलनजटी है ताको नाम, चरमशरीरी मुक्ति हि धाम।
पुण्यवंत छविवंत अपार, विद्यावंत अनेक प्रकार ॥८०॥
वाही उत्तर श्रेणि मझार, तिलकापुर नगरी शुभ सार।
चन्द्रकीर्ति खगपतिको नाम, प्रिया सुभद्रा तिसके धाम ॥८१॥
तिनके वायुसवेगा सुता, सो है रूप कला संयुता।

१—उत्तरश्रेणि।

क्रमसों जीवन उपजो जबै, ज्वलनजटीको परणी तबै ।८२॥
अर्ककीर्ति सुत तिनके भयो, अर्के समान प्रतापी जयो ।
दुहिता स्वयंप्रभा गुणलीन, रूपवन्त शुभ चित्र प्रवीन ॥८३॥
एक दिना खगपति दरबार, आई ले गन्धोदक सार ।
जोवनवन्त पिता देखियो, मन चिन्ता वरकी पेखियो ॥८४॥
नैमित्तिक पूछो तिन जाय, विनय सहित शिर चरण लगाय ।
पुत्री भर्ता इ है कोय, कहिये मेरो संशय खोय ॥८५॥
नृप वच सुन तिन उत्तर दियो, राजा समाधान कर हियो ।
केशव प्रथम त्रिपृष्टकुमार, तेरी सुता लहै भरतार ॥८६॥
विजयारधकी श्रेणी दोई. तुमको दैहै चक्री सोइ ।
नम हैं सब खगपति तुम पाय, नहीं अन्यथा यामें आय ॥८७॥
इहि प्रकार मुनिके वच सुनै, निहचो कर नृप मनमें गुनै ।
मुनि अमितेन्द्रतनै पद जान, राजा नम आयो निज थान ॥८८॥
अश्वग्रीवको डर मन भयो, यह करण्ड वनमें नृप गयो ।
तहां जायकें लिखि शुभ लेख, दोऊ पक्ष सुनिर्मल देख ।८९॥
दियो दूतको हर्ष बढ़ाय, कुल वृत्तान्त कह्यो समझाय ।
चलो दूत नहि लाई वार, पोदनपुर पहुंचो ततकारै ॥९०॥
परैजापति भूपति दरबार, सोहै मनो अमर गण भार ।
पुत्र सहित बैठ्यो नर ईश, नृप अनेक नावैं तिहि शीस ॥९१॥
दूत आइ तहँ कियो जुहार, पत्र दियो भूपति करै सार ।

१-सूर्यके समान, २-तत्काल-उसी समय, ३-प्रजापति नामके राजा, ४-हाथ ।

पोदनाधिपति पत्र जब लयौ, माथौ नाय सुवांचत भयौ ॥९२॥
हितको कारज देखो सवै, उमग्यौ हृदय रायको तवै।
आदर बहुत दूतका कियौ, आसन सुभग[१] बैठका दियौ ॥९३॥
सबको पत्र सुनायो राय, लिख्यौ यथाविधि हर्ष बढ़ाय।
विजयारधकी उत्तर सैन, रथनूपुर नगरी शुभ चैन ॥९४॥
नमिके वंश किरण परकाश, ज्वलनजटि राजा गुण राश।
विनयवन्त तस पुण्य प्रभाय, विद्याधर बहु सेवैं पाय ॥९५॥
तुम पोदनपुर उदित सुभान, बाहुबली वंशी सुखदान।
परजापति राजा अविकार, सुत त्रिपृष्ठ अरिदल-क्षयकार[२] ॥९६॥
स्वयंप्रभा तिनि जोग कुँवारि, दई पिता अति प्रीति सँवारि।
यह प्रकार लेख तब सुन्यौ, सबने मनो मानकर गुन्यौ ॥९७॥
दोऊ पक्ष विशुद्ध महान, पूछत जोग कार्य नहि आन[३]।
हैं बड़भाग त्रिपृष्ठकुमार, स्वयंप्रभा मिलियौ गुणभार ॥९८॥
शिर नवाइ तब बोलौ दूत, मो वच सुन भो नृप गुण जूत।
पूर्ण वृतान्त कह्यौ समझाय, अश्वग्रीवको भय दुखदाय ॥९९॥
सुनकै भूप महा परताप, एकमतै ह्वै दीनो ज्वाप[४]।
अश्वग्रीवको भय मत करो, अपने चितकी चिन्ता हरो ॥१००॥
वाकी आयु घटी जो होय, हमसों रार[५] करै बहु सोय।
या कह दूत विदा नृप कियौ, दान मान बहु ताकौ दियौ ॥१०१॥
चाल्यो तुरत न लाईवार, पहुँच्यो जाय राय दरबार।
कारज सिद्ध सकल तिनि कह्यो, तब राजा मन आनँद लह्यो ॥१०२॥

१—सुन्दर, २—शत्रुओंके दलका क्षय करनेवाला, ३—अन्य दूसरा। ४—जवाब—उत्तर, ५—लडाई।

अर्ककीर्ति पठ्यो निज पूत, स्वयंप्रभा ले दल संजूत।
हर्षवांन चाल्यो भूपाल, पोदनपुर पहुँच्यो तत्काल ॥१०३॥
विधि विवाहकी कीनी जाय, प्रीति सहित दीनी खग[1] राय।
स्वयंप्रभा पटरानी भई, रूपकला गुण प्रभुता ठई ॥१०४॥
सिंहवाहिनी विद्या सही, गरुड़वाहिनी दूजी लही।
देखो पुण्यतनों परभाय, विद्याधर घर ही दे जाय ॥१०५॥
अब विवाहकी वार्ता सबै, अश्वग्रीव नृप सुनियो सबै।
कोप्यौ अति आतुर ज्यों तोय, अग्नि ज्वाल तब उठ्यो सोय ॥१०६॥
बहु प्रकार बहु सेना सङ्ग, गज घोड़े रथ आदि षडङ्ग।
रक्त रतन आलंकृत सोइ, आयो पोदनपुर अवलोइ ॥१०७॥
तिन आगमन सुनो नरनाथ, चलौ त्रिपृष्ट भ्रात ले साथ।
हाथी आदिक और तुरंग, सेना साथ चलै चतुरंग ॥१०८॥
गये संग्रामभूमिमें दोय, भावि अर्धचक्री है सोय।
ज्वलनजटी आयो तिहि ठाय, सेना सज अरिगण दुखदाय ॥१०९॥
आय राय बहु इनकौ मिलै, अश्वग्रीवके सन्मुख चलै।
कटक दिखाव भयौ दुहु ओर, लरन लगे जोधा बहु घोर ॥११०॥

दोहा—लरै सुभट दुहु ओरके, करैं परस्पर घाव।
ज्यो पतङ्ग दीपक परै, देइ नेक नहिं चाव ॥ १११ ॥

करखा छन्द।

जुरी दोउ सेना करैं युद्ध ऐना, लरै सुभटसों सुभट रणमें प्रचौरं।
लरैं व्याल सो व्याल रथवान रथसो, तहां कुंतसों कुंत किरपान झारें॥

१—विद्याधरोंके राजा।

जुरै जोर जोधा मुरै नैक नांहीं, टरै आपने रायकी पेज सारैं।
करै मार घमसान हलकंप होतो, फिरै दोयमैं एक नहीं कोई हारै ॥११२

अरिल्ल—छूटंत रारैं दुहु ओर गगन छायो सही।
मानों बरषत मेघ अवैनि ऊपर यहीं ॥
रुधिर धार तहँ देखि सुकायर भज्जहीं।
सुभट शूर वर वीर सु सन्मुख गज्जहीं ॥ ११३ ॥
लगत घाव गिर परत फेर उठके लरैं।
स्वामि काज निज धर्म विचार हिये धरैं ॥
विना शुण्ड गज कोइक कटि कटिकैं गिरैं।
पैदल और तुरङ्ग सवै बेधरैं फिरैं ॥ ११४ ॥
ज्यौं वरषाऋतु पाय नीर सरिता बढ़ैं।
त्यौं रण सिंधु समान रकत लहरैं चढ़ैं।
कायर वहि वहि जांय सूर पहिरत फिरैं,
टूट टूट रथ कवच आय धरनी गिरैं ॥ ११५ ॥

चौपाई।

होइ युद्ध इहि विधि अधिकार, लरैं सुभटसों सुभट अपार।
प्रतिहरि केशवै सन्मुख लरैं, विद्या वेद परस्पर करैं ॥११६
प्रतिहरि हरि प्रति बोल्यौ एम, सुनरै बालक मो वच जेम।
स्वयंप्रभा अब हमको देऊ, निश्चल अपनौ राज करेऊ । ११७॥
नातर अब छेदौं तुझ काय, बीध्यो है जम कातर आय।

१—बाण, २—पृथिवी, ३—बेधड—शिररहित शरीर, ४—तैरते हुए, ५—पृथिवी, ६—प्रतिनारायण, ७—नारायण ८—रे कायर! तू आकर यमसे उलझा है अर्थात् मैं यमके समान भयकर हू।

कोपत मोहि सुरासुर डरै, भूपतिको सन्मुख मुहि लरै ॥११८॥
तब केशव हँसि ऐसी कही, अनुचित बात कही तुम यही।
नाम सम्हारन अपनी करै, राजनकी क्या समसर करै ॥११९॥
विन लगाम तूं चाहत ग्रीव, यातैं बात कहत तज सीव।
अश्वग्रीव यह सुनि परँजयौं, मानों अग्नि महाघृत पर्यौं ॥१२०॥
तबहि चक्र कर लियो उठाय, सहस आर शोभा अधिकाय।
दुरवच कहि घाल्यों श्रिम आय, चल्यौ मंदगति अरुण सुभाय ॥१२१
तीन प्रदक्षिण तीनी ताय, फिर दक्षिण भुज बैठ्यो आय।
पुण्य पाप केशवको जान, तीन खण्ड लक्ष्मी वश मान ॥१२२॥
तब तिपृष्ठ बोल्यो नरराव, मो पद नम तूं निजपुर जाव।
सुख विलास बहु आनँद करो, हमरी आज्ञा निशदिन धरो ॥१२३॥
अश्वग्रीव सुन कोपहि चढ्यौ, मानों सिन्धु लहरसौं बढ्यो।
रे भूचर तूं दीन अपार, गरजत कहा चूक मद धार ॥१२४॥
तोसे सोरह सहस नरेश, मोपद नमै धरैं उपदेश।
स्वयंप्रभा अब अर्पो मोहि, नातर हनौं निरन्तर तोहि ॥१२५॥
तब त्रिपृष्ट कोप्यौ मन घोर, चक्र फिरायौ अंगुलि जोर।
सत चूकैं करवाई ताहि, घालत रिपु शिर छेदो जाहि ॥१२६॥
अश्वग्रीव तब मृत्तक भयौ, रौद्रध्यानसौं नरक हि गयौ।
बहु आरम्भ परिग्रह जोग, पूरव किये अशुभ तिन भोग ॥१२७॥
दोहा—महा पापके उदयसों, गयो सप्तमें भूर।
संपूरन दुख तहँ महै, रहें सुक्ख सब दूर ॥ १२८ ॥

१—समसर=बराबरी, २—क्रोधित हुआ।

चौपाई।

अब त्रिपृष्ट जगमें विख्यात, निर्जित जस पायौ अवदात।
साधै-चक्र रत्नकर जान, तीन खण्ड नरपति अस्थान ॥१२९॥
खगपति भूपति व्यन्तर देव, प्रणमें चरण कमल कर सेव।
सार वस्तु सब अरपैं आय, कन्यारत्न आदि सुखदाय ॥१३०॥
विजयारधकी श्रेणी दोय, दीनी ज्वलनजटीको सोय।
बहुत विभूति भई हरिगेह, दलखॅड विधिवत मण्डित नेह ॥१३१॥
दश दिश जीत भये श्रीमान, पुण्यवंत बहु जग परधान।
अपने घर बहु लीला करै, त्रिया सहित सुखसौ व्यौपरै ॥१३२॥
पूर्व विपाक तनौं फल जान, सप्त रत्न आलंकृत मान।
भूचर खेचर व्यंतर देव, सोरह सहस करैं नृप सेव ॥१३३॥
सोरह सहस भूपकी सुता, परणीं रूप कला संयुता।
विविध भोग भुगतै सुकुमाल, सुखसों जात न जानौं काल ॥१३४॥
मरण प्रयंत रम्यो जगमांहि, धर्मदान विधि जान्यों नांहि।
ज्यों दिन अन्ध उलूका होइ, भानु उदोत न जानै सोइ ॥१३५॥
बहु आरम्भ परिग्रह घोर, श्वभ्रवास पायो ता जोर।
विषयनमें आसक्त अपार, बांधी दुर लेश्या दुखकार ॥१३६॥

दोहा—छोड़े प्राण शरीरतें, रौद्र ध्यान सों घोर।
पूरव पाप विपाक कर, गयो सप्तमें घोर ॥ १३७ ॥
कथा तहांके कष्टकी, को कर सके बखान।
भुगतै सो जानै सही, कै जानैं भगवान ॥ १३८ ॥

१—भरतक्षेत्रके ६ खण्ड होते है उनमेसे आधे खण्ड अर्थात् १ आर्य और २ म्लेच्छखण्ड, २—नरकवास।

सामान्य नरक वर्णन ।

दोहा—घंटाकार घिनी जहाँ, अन्ध अधोमुख होइ ।
सम्पूरण तन ऊपजै, अन्तर घटिका दोइ ॥ १३९ ॥
तल शिर ऊपर पांव है, परैं भूमिमें आय ।
वीछू एक हजारतैं, अधिक वेदना पाय ॥ १४० ॥
उछलत जोजन पांचसै, नरक सातमें मांहि ।
विषम वज्र कण्टकमयी, परैं भूमि फिर आंहि ॥ १४१ ॥
देख तासको नारकी, मारै निरदय होय ।
पूर्ण असाताके उदय, चिन्तैं मनमें सोय ॥ १४२ ॥
कोन भयानक भूमि यह, सब दुख थानक निंद ।
रौद्रवरण ये कौन हैं, वेदना दाइक विन्द ॥ १४३ ॥
को मैं कहँ आयो इतै, एकाकी सुख नाहि ।
कोन कर्म यह ऊपज्यौ, भूमि भयानक मांहि ॥ १४४ ॥
इत्यादिक चिन्ता करत, अवधि विभङ्गा पाय ।
श्वभ्र कूप जानौ पर्यौं, निज प॰को दुखदाय ॥ १४५ ॥
पूरव रस लोलुप हतौ, भापै वचन लवार ।
लगै नरनको कटुक सम, ज्यों असि अति दुखकार ॥ १४६ ॥
पर त्रिय आदिक वस्तु जे, सेई हठकर जोय ।
परधनमैं सब हर लियौ, पापबन्ध जिय होय ॥ १४७ ॥
मै अखाद्य खाई सबै, पीई जिती अपीय ।
अरु असेय सेई हतीं, सो अब यह दुख लीय ॥ १४८ ॥
सोरठा—पूरब कीनों पाप, सो निहचै बैरी भयौं ।
घातक जानों आप, और बहुत कहिये कहा ॥ १४९ ॥

सुरग मुकत दातार, परम धरम जानों नही ।
पाल्यो व्रत न लगार, सो निहचै अब भोगउ ॥ १५० ॥
किंचित तप नहि कीन, दान सुपात्रै ना दियौ ।
जिन पूजा कर हीन, अशुभ कर्म पोतैं परै ॥ १५१ ॥

दोहा—संपूरण ते पाप सब, भुगतं सब इहि थान ।
तीव्र वेदना चित सबै, पूर्व पाक सो जान ॥ १५२ ॥
कहँ जाऊं कासौं कहूं, शरण न दीसै कोइ ।
काकौ पूछौं बात इह, को रक्षक मुझ होइ ॥ १५३ ॥

चौपाई ।

इत्यादिक चिन्ता ऊपजी, पश्चात्ताप करै मन घनी ।
तावत दग्धमान तब भयो, अति दुखसौं पीड़ित उर ठयौ ॥१५४॥
तावत ततछिन आये तहां, पापवन्त नारक जिय तहां ।
मुद्गर आदि करैं बहु मार, नूतन नारकि नैन निहार ॥१५५॥
क्रोधवन्त कलही सब जान, नेत्र फुलिङ्ग महा दुःख खान ।
घालें कुन्त कृपाण कमान, देख खिरै पारे परवांन ॥१५६॥
काटैं कर अरु छेदैं पाय, भेदैं चरम तीव्र दुखदाय ।
अन्त्र मालिका तोरैं कोइ, देह विदारैं इहि विधि सोय ॥१५७॥
पेलैं फिर कौलूमें घाल, ताते तैल तपावें हाल ।
पकर पांय पटकैं भू मांहि, कण्टक लेश होइ अधिकाए ॥१५८॥
सूलीपर धर देंहि उठाय, घसिटैं कंटक तरु सों जाय ।
तब पुकार कीनी बहु जोर, घावनसों पीड्यो तन घोर ॥१५९॥
सर्व अङ्ग दग्धौ ता तनौ, अगनि समान ज्वलित अति घनो ।
बैतरणी जल पैठौ जाय, शान्त देह तह तहँ दुख अधिकाय ॥१६०॥

तास वारि वारूं दुर्गन्ध, भग्यौ वहां तैं हिरदैं अन्ध।
असिकपत्र वन पहुंचौं ताम, शोकवन्त लीनौ विश्राम ॥१६१॥
वायु जोर तीक्ष्ण असिपत्र, छोड़ै तरुभय करता सत्र।
छिन्न भिन्न खण्डित तन पाइ, रकत चुचात भग्यौ अकुलाइ ॥१६२॥
पर्वत अन्तर गयौ तुरन्त, लै विश्राम हिये भयवन्त।
धरैं नारकी तहां विक्रिया, वाघ सिंह आदिक दुर धिया ॥१६३॥
केई गिरि[1] तैं देह गिराय, केई भूमि मध्य सों आय।
खण्ड खण्ड ततछिन तन होय, कायर चित्त शरण नहि कोय ॥१६४॥
केई जकर जंजीरन डार, सुध करायकै कैयक मार।
लोह तनी ताती पूतली, लाय लगावैं तनसों खली ॥१६५॥
परभव कीनी प्रीति अपार, पर कामिनसों हठ हिय धार।
कोई खैंचि खम्भसों बांध, बहु प्रकार आयुधको साध ॥१६६॥
लोचन दोषी ताकौ जान, लोचन लेइ निकार अजान।
मदिरापानी पूरब पियो, ताते ताम्र औंट मुख दियो ॥१६७॥
परभव पल भक्षणके पाप, तोड़ तोड़ तन खाते आप।
केई पूरव याद दिवाय[2], केइ धाय संग्राम कराय ॥१६८॥
इहि विध नरक चैन पल नाहि, तपैं दुख दावानल मांहि।
मार मार निश दिन सौ करै, क्षेत्र महा दुरगन्धा धरै ॥१६९॥
सर्व समुद्र जलको जो पाय, पीवत नाहीं प्यास बुझाय।
लहै न पानी बून्द समान, दहै निरन्तर तन दुख खान ॥१७०॥
सकल अन्न जो पावै सोय, तौभी भूख न उपशम होय।

१—गिरिसे-पर्वतपरसे, २—याद दिलाकर, ३—हथियार।

तिल समान आहार ना लहै, बहु प्रकारके दुखको सहै ॥१७१॥
वात पित्त कफ आदिक रोग, आयु अन्त हिरदैमें शोग ।
कटु तूंमीसों कटुरस फांस, त्यों मृत जोग शरीर कुवास ॥१७२॥
लोह पिण्ड जोजन इकलाख, डारत होय क्षिनकमें खाख ।
जैसो है अति उष्ण सुभाय, तैसो शीत कहौ जिनराय ॥१७३॥

दोहा—पङ्कप्रभा पर्यन्त लौं, कही उष्णता सोय ।
धूमप्रभामें जानिये, शीत उष्ण ए दोय ॥ १७४ ॥
छठी सातमी भूमिमें, केवल शीत सुभाय ।
ताकी उपमा कौन है, महा विपति अधिकाय ॥ १७५ ॥
महा दुःख इत्यादि सब, मन वच काय प्रचण्ड ।
क्षेत्रतनौं परभाव यह, देइ परस्पर दण्ड ॥ १७६ ॥
रौद्रध्यान लेश्या किसन, आयु समुद तेतीस ।
धनुष पांचसै तुङ्ग तनु, वरन्यौ श्री जिन ईश ॥ १७७ ॥

चौपाई ।

अब बलभद्र मोहवश जास, हरि वपु लिये फिरौ छह मास ।
देव आन सम्बोधै जबै, निहचीकरण आइयौ तबै ॥१७८॥
ता वियोग सो विजयकुमार, पुण्यवन्त बुधवन्त अपार ।
राज्यभार निज सुतको दियौ, गुरु पै आपु महाव्रत लियौ ॥१७९॥
दुविध प्रकार कियो तप घोर, शुकलध्यानरूपी असि जोर ।
घातिकर्म रिपु छेदौ ताम, भये अनन्त चतुष्टय नाम ॥१८०॥

देव संघ अर्चित सो भये, पीछै पंचम गतिको गये।
निरूपम निराबाध अविकार, तीन लोक वंदन जगतार ॥१८१॥

गीतिका छन्द।

यह भांति सुचरण जोग करके, भोग भुगतै अतिघनै।
फिर जगत अर्चित भए निहचै, मुक्तिपद पायौ तिनै॥
कुचरण विपाक जु आदर्यौ, हरि सप्तमैं थानक पर्यौ।
सो जान भवि सम्यक्त्व दृढ, मन सार सुचरण आचर्यौ ॥१८२॥
दुःखनाशक मुक्ति दाइक, कर्म अरि विध्वंसकं।
अन्त तैं जु अतीत गुणनिधि, भवहरण पददंसकं॥
सुर मुक्ति सुखकर शरण सबको, जगतपति अर्चित हियै।
निज धर्म करता तीर्थ अतिमन, 'नवलशाह' प्रणामियो ॥१८३॥

इति श्री कविरत्न नवलशाह विरचित भाषा छन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमे
द्विजादि छह भवोका वर्णन कानेवाला
तृतीय अधिकार पूर्ण हुआ।

१—दिखलानेवाला।

चतुर्थ अधिकार ।

दोहा—मुकति वधूपति वीर जिन, त्रिजग स्वामी सोय ।
गुण अनन्त सो हैं विमल, नमौं कमल-पद दोय ॥ १ ॥

चौपाई ।

दुखसौं नारक बहु दिन गये, आयु अन्तकर तहँतें चये ।
सिंह नाम गिरि वनमें आय, धरी तहां सिंह पर्याय ॥ २ ॥
हिंसा आदि कर्म जे क्रूर, कीने बहुत धर्मधर दूर ।
तास उदयसौं तहँ तें चयो, रत्नप्रभा पृथिवी फिर गयो ॥ ३ ॥
महादुःख पायो तिहि ठौर, पीडे बहुत जाय कह दौर ।
दुष्ट कर्मको भोगति भये, कछ कालमें तहांसे चये ॥ ४ ॥
भरतक्षेत्र पूरब दिश जान, सिद्धकूट हिय वन गिरि जान ।
मृगपति भयो तहां तैं आय, तीक्ष्ण दन्त दुष्ट दुखदाय ॥ ५ ॥
एक दिना मृग भक्षत ताहि, देखो कृपावन्त मुनि नाहि ।
चारण ऋद्धि तृप्त सुखधाम, गुणाक्षीण गुणसागर नाम ॥ ६ ॥
जिनवर भक्ति जानकर सही, उतर गगनसे आये सही ।
शिला पीठपर बैठे सोय, कृपावन्त चारण मुनि दोय ॥ ७ ॥
मृगाधीश धायो मुनि पास, वचनामृत सम्बोध्यो तास ।
भो भो भव्य पशुनके राज, मो वच सुनो आतमा काज ॥ ८ ॥
भिल्लपती पूरब भव जान, भयो धर्म लेशकै तुम ज्ञान ।
फिर सौधर्म स्वर्ग तुम गये, शुभके उदय तहां तैं चये ॥ ९ ॥

१—गुणोसे सहित, २—लेशमात्र—छोड़ा ।

भरत चक्रपति सुत सो जान, नाम मरीचिकुमार महान।
वृषभनाथ स्वामीके साथ, दीक्षा ग्रहण कियौ सुख सौर्थ ॥१०॥

पद्धरि छन्द।

द्वावीस परीषह भय अपार, तज जिन मारग संसार सार।
गहियो पाखण्डी वेष क्रूर, दुर्गतिको करता अधम पूर ॥११॥
शुभ मारग दूषणको प्रवीन, दुरमारग वध विन मलीन।
तब आदिनाथ सुनके मरीच, धारी कुदृष्ट ता बुद्धि नीच ॥१२॥
तन्मिथ्या उदधि विपाक पाय, जन्मादि मरण पीडौ जु आय।
भवसागर भ्रमियो बहु काल, सहियौ कुकर्मसों दुःख जाल ॥१३॥
तहँ इष्ट वस्तुसौं अति वियोग, संजोग दुष्ट आतम विरोग।
संपूर्ण असाता पराधीन, लहि घोर चिरन्तन निन्द दीन ॥१४॥
कहुं पुण्य उदयको हेत पाय, राजग्रह विश्व सुनन्द राय।
तहँ संयम जोर निदान बांध, भूपति त्रिपृष्ठ त्रय खण्ड साध ॥१५॥
तहँ विविध भोग भुगते अपार, सुत नारी हय गय रथ भँडार।
कछु दया धरम व्रत गह्यौ नाहि, अति रुद्रध्यानसौं मरण पाहि ॥१६॥

दोहा—महा पापके पाक तैं, विषम अन्ध बुध हीन।
गयौ सप्तमी अवनिसों, दुःख तहां वहुलीन ॥ १७ ॥
तहं ले वैतरणी नदी, करत प्रवेश पुकार।
तुम पूरब भवदुख सहै, पापतनें अधिकार ॥ १८ ॥
असीपत्र तरुके तरै, बैठत छोड़ै प्राण।
तप्त लोहकी पूतरी, भैंटावें तब आन ॥ १९ ॥

१—समुद्र, २—सातवीं पृथ्वी—सातवा नरकमे।

पर वनिताके दोषतैं, बांधे बन्धन जोर।
करण ओष्ठ अर नासिका, छेदी बहु विधि घोर॥ २० ॥
कीनी हिंसा जीवकी, तातैं खण्डी देह।
शूलीपर पुनि रोपियो, दीन आतमा गेह॥ २१ ॥
इत्यादिक तहं विविध दुख, भई कंदर्पन घोर।
अशरण नित पीडै बहुत, कहो कहां लौं सोइ॥ २२ ॥
नरक आयु क्षयकर तुही, खोटे कर्म उपाय।
पराधीन मृगपति भयौ, पापवन्त दुखदाय॥ २३ ॥
शीत उष्ण वर्षादि ऋतु, क्षुधा प्यासके जोर।
क्रूर कर्म कीनै अशुभ, बांधि बंध हिय घोर॥ २४ ॥
प्राणी हिंसाके उदय, दुख विपाक अंकूर।
प्रथमी[1] पृथिवी तुम गये, रहैं सुक्ख सब दूर॥ २५ ॥
तहं तैं चय तुम ऊपजै, धरी सिंह परजाय।
क्रूर पराक्रम करत हैं, पूर्व दुःख विसराम॥ २६ ॥

चौपाई।

इहि प्रकार मिथ्या चिरकाल, भटकै बहु विध भव विध जाल।
हालाहल पीवत सुध जाय, सम्यक् बुद्धि हियै विसराय॥ २७ ॥
अहो वत्स! दुर्गतिको वास, छोड़ो कार्ज पराक्रम जास।
अनशन गहो विविध परकार, व्रत पूरवके अर्थ विचार॥ २८ ॥
भरतक्षेत्र यह आरज ठाम, हूहौं दशमें भव सुख धाम।
अन्तिम तीर्थंकर गुण धीर, वर्द्धमान स्वामी वर वीर॥ २९ ॥

१—प्रथमा—पृथ्वीपर पहला नैरक, रत्नप्रभा।

जंबूद्वीप सु पूर्व विदेह, सीमंधर जिनपति गुण गेह।
श्रीमुख दिव्य कथा मै सुनी, भावी तुम आगे सब भनी ॥ ३० ॥
मुनिके वच सुन इह परकार, जातिस्मरण ऊपजो सार।
जानौ भवसागर दुख घोर, सर्व अंग कंप्यौ भय जोर ॥ ३१ ॥
दुठ परिणाम दूर सब रहै, शान्त चित्त सों मुनिपद गहै।
अश्रुपात बहु कीनौ तहां, पश्चात्ताप आदि हरि जहां ॥ ३२ ॥
फिर मुनि सौं मृगपति इम कही, सम्यक्वृद्धि भाषिये सही।
शांत तरंग आतमाराम, कहत भये मुनि कृपा निदान ॥ ३३ ॥

दोहा—धर्म कल्पतरु मूल है, वर्जित शंका दोष।
मुक्ति प्रथम सोपान सौ, बुध नर सम्यक पोष ॥ ३४ ॥
कल्याणक करता जगत, भव भव सुक्ख अपार।
अर्हद् आदिक पंचपद, होत धर्म सौं सार ॥ ३५ ॥

चौपाई।

दरशन सम तैं धर्मजु और, भयौ न हू है जगके ठौर।
वर्तमान नाहीं है अबै, कल्याणकको साधक सबै ॥ ३६ ॥
मिथ्या सम नहिं पाप अपार, भयो न भावी दुख दातार।
तीन लोकमें अनरथ बन्ध, दुरमारग धारी नर अन्ध ॥ ३७ ॥
सप्त तत्त्वकी श्रद्धा करै, निःसन्देह जिनागम धरै।
दरशन ज्ञान चरण अभ्यास, गहो सुवृष करता संन्यास ॥ ३८ ॥
तजियो जीव घात दुख राश, जातें होइ स्वर्ग सुख वास।
यह सब व्रत आस्रव उत्कृष्ट, दोष रहित हित कर्ता इष्ट ॥ ३९ ॥

१—आगे होनेवाली।

जो संसारभ्रमण भय खाय, रुचि सौं सम्यक् मार्ग धराय।
दुरमारग छोड़ौ दुखदाय, इहिभव परभव दुख अधिकाय ॥४०॥

दोहा—इहि विधि मुनि मुख चन्द्रमा, उद्भव वचन विख्यात।
धर्म सुधारसके पियत, वम्यौ कुविष मिथ्यात ॥ ४१ ॥
वार वार परदक्षिणा, दीनी हरि मुनि पास।
शिर नवाय वन्दन कियो, श्रद्धा हिय धर जास ॥ ४२॥

चाल—छन्द।

तत्त्वारथ श्रद्धा कीनी, श्री जिनवाणी लव लीनी।
सम्यक्त्व धरौ जिन अङ्ग, व्रत पालै रहित जु सङ्ग ॥ ४३ ॥
संन्यास सहित तन खीनौ, आहार न पानी कीनौ।
सब संचित विवर्जित सोई, हिय शान्त सुसंजम होई ॥ ४४ ॥
क्षुध आदि परीषह धारी, नित सहत सुधीरज धारी।
सब जीवदयाको पालै, तनुं नेक न इत उत घालै ॥ ४५ ॥
हरि चिन्तै धर्म सुध्याना, घातै दुठ कर्म कुज्ञाना।
धारयौ तन निश्चल अङ्ग, थिर चित कर पाप निभङ्ग ॥ ४६ ॥
जाचत नहि जीव सहाई, व्रत प्रचुर किये हरिराई।
संन्यास सहित तज प्राना, हिय शुद्ध समाधि निदाना ॥ ४७ ॥

दोहा—व्रत फल स्वर्ग सुधर्ममें, सिंह जीव तहँ जाय।
सिंहकेतु नामा अमर, महा ऋद्धि अधिकाय ॥ ४८ ॥

चौपाई।

शिल उपपाद जन्मसों भयौ, अन्त मुहूरत जोवन लयौ।
संपूरण तन पायो तबै, अचरजवान हुओ हिय जबै ॥४९॥

१—प्रगट हुए, २—सचित्त-हरे, ३—शरीर, ४—सिंह।

ततक्षण अवधिज्ञानको भनौ, जानो व्रत फल पूरब तनौ।
धर्मध्यान माहात्म्य अपार, सम्यक्मति दृढ़ गहियो सार ॥५०॥
अमृत वापिका न्हवन कराय, देविन सहित जिनालय जाय।
रत्नमयी तहँ प्रतिमा देख, हिय उमगायो हरष विशेख ॥५१॥
अष्ट द्रव्यसे पूजा करी, भक्ति विनय पूर्वक विस्तरी।
फिर नन्दीश्वरादि जिन गेह, कीनी पूजा हिय धर नेह ॥५२॥
गणधर आदि मुनीश्वर पाय, प्रणमैं सुरपति चित्त लगाय।
तत्त्व अरथ आदिक तहँ सुनै, धर्म शर्म[1] करता हिय गुनै ॥५३॥

दोहा—फिर निज अस्थाने गयौ, पुण्यजनित श्रिय पाय।
देविन सहित विमानमें, तिष्ठै सुख समुदाय ॥५४॥

चौपाई।

इत्यादिक बहु पुण्य समेत, धारै सो चेष्टा शुभ हेत।
सप्त हाथ तन उचित मनोग, नेत्र विवर्जित निद्रा रोग ॥५५॥
मण्डित मति श्रुत अवधि त्रिज्ञान, विक्रिया ऋद्धि अधिक बलवान।
बीतै बरस सहस्र जब दोय, लैहि अहार सुधामय[2] सोय ॥५६॥
पक्ष दोयमें रति तन होइ, मानसीक सब भुगते सोइ।
देखै रूप विलास अपार, नृत्यत दिव्य योषिता सार ॥५७॥
पर्वतादि उद्यान मझार, देविन सहित रमैं कर प्यार।
द्वीप समुद्र असंख्य विचार, विहरै सहित विभूति अपार ॥५८॥
सागर दोय आयु परमान, सप्त धातु मल रहित महान।
अमृत समुद सम सुक्ख अनेक, सरब दुःख तें रहित सु एक ॥५९॥

१—सुखके करनेवाले, २—अमृतमयी।

दोहा—विविध भोग तिन भोगवे, पूरब चरण प्रताप।
काल जात जान्यो नहीं, सुखसों देव जु आप ॥ ६० ॥

चौपाई।

आग धातकी द्वीप महान, पूर्व विदेह सु उत्तम थान।
विजयारध पर्वत तहँ दीस, है उन्नत जोजन पच्चीस ॥ ६१ ॥
सोहै कूट जिनालय जहां, वन श्रेणी पुर आदिक तहां।
ताकी उत्तर श्रेणि मझार, मंगलावति है देश विचार ॥ ६२ ॥
नगर कनकपुर सोहै जहां, सुवरणमय जिनमंदिर तहां।
कनक पूर्व राजा तहँ जान, प्रिया कनकमाला तस मान ॥ ६३ ॥

सोरठा—चयौ तहां तैं सोइ, सिंह केतु नामा अमर।
कनकोज्वल सुत होइ, कनककांति तन जासको ॥ ६४ ॥

चौपाई।

जन्म उछाह पिताने कियौ, बंदीजनै दान बहु दियौ।
जिन आगार कराये सार, कल्याणक वरधावन हार ॥ ६५ ॥
कीनी पूजा महाभिषेक, पंचकल्याणक आदि अनेक।
गीत करत और नचैं अपार, नर समूह कोलाहल धार ॥ ६६ ॥
बाल चंद्र सम वृद्धि कराय, पय पानी सौं सुख अधिकाय।
आप-जोग अति क्रीड़ा करै, दिन दिन रूप-कला गुण धरै ॥ ६७ ॥

अडिल—क्रम सों जोवन पाय, शास्त्रभ्यासी ठयौ।
विधि विवाहकी जास, पिता करतो भयौ ॥
कनकवती तिय नाम, धर्मसौं सो मिली।
कछु दिननमें कुंवर, एक कीनी भली ॥ ६८ ॥

महा मेरु जिन तनैं, वंदवै को गयो।
भार्या सहित कुमार, बिम्ब पूजत भयो॥
भूषित ऋद्धि अनेक, गुप्ति त्रयके धनी।
अवधिज्ञानि मुनिराय, देखि जग शिर मनी॥ ६९॥

छन्द—चाल।

प्रणमै शिर चरण लगाई, सुख प्रापत कारण राई।
प्रभु अनघ[1] धर्म है जोई, शिव करता भाषो सोई॥ ७०॥
सुनके तिन वचन सुयोगी, भाषै सुनिये नृप भोगी।
भव समुद गिरै नर कोई, उखरै धर सम्यक् सोई॥ ७१॥
शिव मन्दिर पीछे जाई, त्रैलोक्य राज्यको पाई।
विधि सम्यक् तत्व बखानौ, शङ्कादि रहित परवानौ॥ ७२॥

चौपाई।

यह भव होय धर्मसो सार, कल्याणक नरको सविचार।
सकल मनोरथ पूरण जान, दुख विनशैं जग कीर्ति महान॥७३॥
परभव इन्द्र विभूति अपार, कै सरवारथ सिद्धि विचार।
तीर्थंकर बल चक्री होइ, धर्म प्रताप जानियै सोइ॥ ७४॥
दोहा—धर्म विना नहि और जग, सुख करता तज पाप।
लक्षण दया विख्यात तसै[2], उक्त केवली तास॥ ७५॥

चौपाई।

प्रथम अहिंसा सत्यास्तेय, ब्रह्मचर्य संगादि रहेय।
ईर्या भाष एषणा दान, निक्षेपण व्युत्सर्ग बखान॥ ७६॥

१–निर्दोष, २–उसका।

मनोगुप्ति वच गुप्ति विचार, काय गुप्ति मिल तीन प्रकार।
यह चारित्र त्रयोदश जान, साधैं राग रहित गुणवान ॥ ७७॥
तथा मूलगुण सब जानिये, दशलक्षण क्षमादि बखानिये।
परम धरम करता सुख सार, मोह अक्ष सबको अपहार ॥ ७८॥
बुद्धिवन्त भो राजकुमार! धर्म जती गोचर हितधार।
काम आदि जे अरि दुखदाइ, तप असि सौं तिन घात कराइ॥७९॥
धर्म चित्तमें धरो महान, होय धर्म तैं सुर शिव थान।
धर्म जगतमें सब सुखदाय, नहीं धर्म तैं और सहाय ॥ ८० ॥
नहीं साध्य अब इहितैं और, तिहि तैं मोह-सुभट हन ठौर।
धर्म जतन सौं पालो सार, मुक्तितनों साधक सुखकार ॥ ८१ ॥
इहि प्रकार मुनि वचन सुनेह, कनकोज्वल नृप चिन्तौ येह।
भव तन भोग विरक्त अपार, द्वादशभावन हिरदैं धार ॥ ८२॥
जोलौं कर्मवेदना लियैं, भ्रमैं जगतमें सुध नहि हियैं।
कबहूंक नार गर्भ गिर परै, जन्म होइ विकलप सो मरै ॥ ८३ ॥
सुर अहमिन्द्र आदि हरिराय, सबै कालके वश्य पराय।
जन कोई जीवन मद करै, मूढ़ मन्द बुधको अनुसरै ॥ ८४॥
धर्मकार्यको बरथै सार, मद हिय धरै न एक लगार।
अरु जे शठ मद धारैं अङ्ग, ते जैहैं यम पथ सर्वङ्ग ॥ ८५॥
अतिहि विनश्वर कारज याहि, सर्व अवस्था निशदिन माहि।
तातैं काल लङ्घ नहि करै, मरण समय ना शङ्का धरै ॥ ८६॥
यौं चिन्त्यौ हिरदै परवीन, कीनौ दुविध परिग्रह हीन।
यथा पिशाची तन तैं जाय, आराधना मन्त्र परभाय ॥ ८७॥

मन वच काया दीक्षा धरी, तास ग्रहन जग इच्छा करी।
सकल असार वस्तुको त्याग, स्वर्ग मुक्तिदायक वैराग॥८८॥
आर्तरौद्र दुरलेश्या जान, तातैं सब अघ करता मान।
धर्म शुकल शुभ लेश्या तीन, भजैं सदा मुनिवर परवीन॥८९॥
विकथा आदि वचन नहिं कहैं, धर्मकथा निश दिन हिय गहैं।
श्रुत सिद्धांत पढ़ैं आचरैं, धर्मतनो उपदेश जु करैं॥९०॥
गुफा मसान शैल उद्यान, निर्जन भवन वसैं गुण खान।
ध्यान सिद्धि उपसर्ग प्रवीन, रहैं विराग थान चित लीन॥९१॥
अटवी आदि ग्राम बहु देश, विहरैं सदा लोभ नहि लेश।
द्वादश विध तप तपैं महान, कर्म दुष्ट अरि-हतन कृपान॥९२॥
सर्व मूल उत्तर गुण लीन, चित अडोल मुनि जगत प्रवीन।
जिनवर कथित जती आचार, पालैं निश दिन बहुत प्रकार॥९३॥
मरण प्रजंत अनघ तप करौ, अरु सन्यास हियै आदरौ।
विकथा चार प्रकार निवार, देह आदि ममता सब टार॥९४॥
क्षुधा तृषादि परीषह सबै, जीती धीरज धर मुनि तबै।
आप वीर्यको परगट कीन, मुक्ति रमा साधक परवीन॥९५॥
चार प्रकार आराधन धार, जतन पूर्व साधै मन धार।
धर्मध्यान सौं छोड़ै प्रान, मन विकल्प वर्जित गुणभान॥९६॥
तप व्रत फल सुर लान्तव थान, भयौ महर्द्धिक देव महान।
अन्तमुहूरत अवधि प्रकाश, जान्यो पूरव भव सुख वास॥९७॥
दृढ़ मन सम्यक् धार्यो जबै, धर्मसिद्धिके कारण सबै।
तीन लोक जिन थानक जहां, पूजन हेत जाइ सुर तहां॥९८॥

तीर्थंकर मुनि केवल सवै, जाइ तहां अर्चा कर नवै[1]।
इहि प्रकार बहु पुण्य उपाय, अति विभूति भुगतै गृह जाय ॥९९॥
तेरह समुद[2] आयु परमान, पञ्च हस्त उन्नत वपु जान।
वर्ष त्रयोदश सहस मझार, लेइ सुधा निर्मल आहार ॥१००॥
तेरह पक्ष वीत जब जांय, तब उसासै[3] तनसों मुकलाइ।
तीजी भूमि नरककी जान, ऋद्धि विक्रियाको परमान ॥१०१॥
सप्त धातु मल स्वेद रहीत, निर्मल दिव्य शरीर पुनीत।
सम्यक्‌दृष्टी हिये शुभ ध्यान, जिन पूजामें रक्त महान ॥१०२॥
नृत्य गीत वादित्र अपार, मधुर शब्द सुखके करतार।
भुगते बहुत भोग परधान, निशदिन देवी सहित सुजान ॥१०३॥
शुभ भावन युत मिथ्या हरै, विविध रत्नमण्डित सुख धरै।
हर्षवन्त सुर सेवैं पाय, अमृत सागर न्हवन कराय ॥१०४॥

दोहा—याही आरज खण्डमें, कौशल देश विख्यात।
अति मनोग्य अवध्यापुरी, बसैं भविक[4] अवदातं[5] ॥१०५॥
वज्रसेन नृप तस पती, पुण्यवंत गम्भीर।
शीलवती तिय तास घर, शीलशालिनी[6] धीर ॥१०६॥
देव सुरग सों सो चयो, सुत उपजो हरिषेण।
लक्षण भूषित पूर्णवपु, दिव्यकान्ति जुत जेन ॥१०७॥

चौपाई।

तात मात जुत कुटुंब समेत, पुत्र महोत्सव कीनौ हेत।
लहै पुण्यफल सुक्ख अनेक, कला बुद्धि गुण सहित विवेक ॥१०८॥

१—नमस्कार करना, २—तेरह सागर प्रमाण, ३—उच्छ्वास, ४—भव्य, ५—निर्मल-निर्दोष, ६—शील-पातिव्रत्य धर्मसे शोभायमान।

जिन सिद्धान्त हियै नित धार, सकल पदारथ वेदक सार।
सवहि संपदा पूरण पाइ, विविध भोग भुगतै मन लाइ ॥१०९॥
रूप कला तन तेज अपार, गुण गरिष्ठ नाना परकार।
वरधै पक्ष मास अरु वास, देव समान लहै जस तास ॥११०॥
क्रमसौं जोवन प्रापत भयो, वहुत राज तनुजा परिणयो।
लक्ष्मी सहित पिता पद पाय, भुगते सुख नाना अधिकाय ॥१११॥
सम्यक्दरशन शङ्का जाहि, व्रत निरमल पाले गृह माहि।
धर्म गृहस्थ सिद्ध अनुसार, रहित प्रमाद तजे अविचार ॥११२॥
आठैं चौदश प्रोपध करै, सव सावद्य जोग परिहरै।
उठै प्रात सामायिक देइ, आदि धर्मवर्धक सुख लेइ ॥११३॥
पीछे तन मंजन कर सार, पहरै धवल वस्त्र सुविचार।
भाव सहित सो पूजा करै, मन, वच, तन वसु मङ्गल धरै ॥११४॥
प्रासुक योग्यकालमें सार, देइ सुपात्र मधुर आहार।
आप जोग अपराहण काल, साधै सामायिक विधि हाल ॥११५॥
पीछैं जिनकेवलिकौ वृन्द, संघ सहित वंदै जगचन्द्र।
शुभ कर्मनके प्रापति काज, धर्मतीर्थ वर्धक सुख साज ॥११६॥
तहां सुधर्म सुन्यौ भवतार, मिश्रित तत्व आदि आचार।
राग रहित तिष्ठै इमि भूप, वहुत भोग भुगतै सुख कूप ॥११७॥
वात्सल्य धरमी जन करै, धर्म वढ़ै मिथ्या परिहरै।
दान मान वहु मुनिको देइ, प्रीति सहित गुण रंजित गेय ॥११८॥
जिनमन्दिर वनवावै पांति, प्रतिष्ठादि पूजा वहुभांति।
जिन शासन माहात्म्य अपार, कीनौ वुध सुख वर्धनहार ॥११९॥

पुण्यवन्त भो भव्य महान, कीजौ इहि विध शक्ति प्रमान।
जाके कछु शक्ति है नाहि, सो अनुमोद धरो मनमाहि ॥१२०॥
इहि प्रकार बहुविध आचार, धर्म जिनेश्वर भाषत सार।
मन वच काय आप संचरै, भव्यनको उपदेश जु करै ॥१२१॥
तीन काल पालै निजराज, न्याय धनी वरधै सुख साज।
पालै प्रजा पुत्र सम जान, पुण्य उदधि उर हिय धर ज्ञान ॥१२२॥
एक दिना कछु कारण पाइ, चिंतावंत भयौ नर राइ।
उदासीन भव भोग विरक्त, है विवेक धर उज्वल चित्त ॥१२३॥
श्रुतसागर योगीश्वर नाम, श्रुत ज्ञानाभ्यासी गुण धाम।
तीन प्रदक्षिण दे शिर नाय, प्रणमैं जाय मुनीश्वर पाय ॥१२४॥
जो प्रभु कृपावन्त हिय होय, कहिये मेरो संशय खोय।
लक्षण कहा आतमा तनौ, किहि प्रकार जड़ चेतन भनौ ॥१२५॥
किहि विध बंध कुटुंब सुभाय, कारण कहा दुःख अधिकाय।
कैसे सुक्ख शाश्वतौ जान, जातैं विनसै आशा थान ॥१२६॥
कैसे हित अर अनहित होय, कैसे कृत्य अकृत्य विलोय।
तब बोले मुनि वचन विचार, सुन भो भव्य! धर्म चित धार ॥१२७॥
दरशन ज्ञान व्रतादि अनेक, गुण जुत रूप महात्म विवेक।
लक्षण चेतन है जु पवित्त, गंध जोग सो देह अनित्त ॥१२८॥
जैसे पक्षीगण बहु मिलैं, तुंग तरूवर पै निश हिलैं।
तैसे कुल कुटुम्ब परवीन, आप आप भावन गति लीन ॥१२९॥
मोह महामद वश जग जीव, तासौं दुःख लहैं अघ कीव।
सुक्ख शाश्वतौ है निर्वान, रहित परिग्रह आशा हान ॥१३०॥

तप रत्नत्रय सम नहीं और, हित करता जनको सब ठौर।
इन्द्रिय विषय अशुभ यह थान, तासम अहित और नहि जान॥१३१॥

यह भव पर भव सुख अधिकाय, कृत्य वस्तुको यही स्वभाव।
दुःख अधिक जब नरको होइ, सो अकृत्य कारण अवलोई॥१३२॥

यह प्रकार मुनि वच सुन सार, धरि संवेग धर्म अरिहार।
देह आदि जग भोग अनेक, छोड्यौ ज्यों जीरण तृण एक॥१३३॥

तज्यौ कुटुम्ब राज्य अरमान, जान्यौ भार यथा पाषाण।
अंगीकार कियो तप साज. निर्जरा[1] ग्रही सुगम मुनिराज॥१३४॥

बाहिज अन्तर परिग्रह तज्यौ, मन वच काया आतम भज्यौ।
मुक्तिपुरीकी इच्छा करी, जैनी दीक्षा नृप आदरी॥१३५॥

कर्म कुलाचल घातै सबै, तप वज्रायुध कर मुनि तबै।
दुष्ट अक्ष अर मनको रोध, ध्यान करै शुभ सम्यक् शोध॥१३६॥

कन्दर अद्रि अरण्य अनेक, गुफा मशान बसैं मुनि एक।
सिंह समान सदा विहरंत, धर्म ध्यान धर हिरदै संत॥१३७॥

अटवी ग्राम खेटपुर जिते, विहरै ईर्यापथ शोधते।
अस्त होइ रवि अन्ध प्रवेश, दया अर्थ तिष्ठैं तहां लेश॥१३८॥

प्रावृट् काल रूखके मूल, जहां रहै व्यापै बहु शूल।
लपकै दामिन झंझावाउ[2], वरसै मनों वज्रकौ घाउ॥१३९॥

हेमकाल मुनि तिष्ठें जहां, तुंग नदी तट हिमकुल तहां।
ध्यान अनाहत धारैं धीर, बाधा शीत सहैं वर वीर॥१४०॥

१—निर्जरा, २—वायु।

ग्रीषम सूर्य किरणको तेज, पर्वत पीठ शिला शिर सेज।
करैं ध्यान उत्सर्ग महान, बाधैं उष्ण अग्नि परवान ॥१४१॥
इत्यादिक अन्तर तप घोर, देह कलेश कायकौ जोर।
वाहिज आभ्यंतर परवीन, ध्यानाध्ययनमध्य सो लीन ॥१४२॥
सबै मूल उत्तरगुण जान, पालैं प्रीति सहित अधिकान।
अन्तसमय अनशन आदरौ, क्रमतें खानपान परिहरौ ॥१४३॥
सम्यकदरशन ज्ञान चरित्र, तपसा दाइक मोक्ष पवित्र।
यहै चार आराधन राधि, मन वच काय सु करकै साधि ॥१४४॥
तप सु ध्यान सौं छोडै प्रान, धरि समाधि हिरदे शुभ ज्ञान।
महाशुक्र सुरगै[1] सो गयो, तप फल देव महर्द्धिक भयो ॥१४५॥
संपुट शिलागर्भ तहं ठयो, अन्तमुहूरत यौवन लयो।
अम्बर भूषित सहज सुभाय, सात धातु मल रहित सुकाय ॥१४६॥
अति गरिष्ठ निज लक्ष्मी देख, ता छिन अवधिज्ञान सों लेख।
जानौ पूरवसो विरतंत, परभवतनो धर्म फल संत ॥१४७॥
तातैं धर्मसिद्धिके काज, गये जहां जिनमंदिर राज।
प्रणमैं फिर कीनी शंकरी, कल्याणक करता गुण भरी ॥१४८॥
अष्ट द्रव्य जल आदिक लेह, जिनवर आगे अर्घ धरेह।
भक्ति करी युत देवन जिती, उपमा वरण सकै को किती ॥१४९॥
पीछै मनुज लोकमें आय, जिनमंदिर पूजै सब जाय।
वन्दै मुनी सुनी श्रुत वानि, वर्धक पुण्य पापकी हानि ॥१५०॥

१—महाशुक्र नामक दशवें स्वर्गमे।

बहु विध सुनै धर्म उपदेश, चारित व्रत जहं होय न लेश।
षोडश जलधि आयु परवान, शुभ लेश्या वर चित्त महान। १५१॥

दोहा—तुर्य[1] अवनि पर्यन्त लौं, वस्तु चराचर जान।
तित ही लौं है विक्रिया, ऋद्धितनौं परभाव ॥ १५२ ॥
वरस सहस षोडश गये, लेहि सुवर आहार।
आठ मास जब बीतहीं, गन्ध उसास विचार ॥ १५३ ॥
पूरव तप फल जानिये, दिव्य देह रति देव।
बहु विभूक्ति संयुक्त सुख, करहि अप्सरा सेव ॥ १५४ ॥

गीतिका—छन्द।

इति भांति सुकृत विपाक फल कर राज्यलक्ष्मी लहि अती।
सुक्ख निरुपम सार सुन्दर, भोग भुगतै नरपती ॥
तप चरणनौं फिर पाय सुरपद, ऋद्धि वसुमण्डित सही।
इमि धारि शिवपद चाह तिनकै, परम धरम सु ध्यावही ॥१५५॥
धर्म बहुविध कहिव पूरव, धर्म तिन पूरव भजौ।
धर्म निर्मल चरण व्रत है, धर्म नमि पापहि तजौ ॥
धर्म तैं नहि अपर कोई, धर्म शरण सहाय है।
धर्म भव भव करहि रक्षा, धर्म सब सुखदाय है ॥१५६॥

इति श्री कविरत्न नवलशाह विरचित भाषा छन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमें
सिंहादि आठ भवोंका वर्णन करनेवाला
चतुर्थ अधिकार पूर्ण हुआ।

१—चौथी पृथ्वी पर्यन्त।

पञ्चम अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा—वीर धीर गण सुभट निज, हन्यौ कर्म संतान।
रौद्र परीषह जीत यौ, वन्दौं दायक ज्ञान ॥ १ ॥

चौपाई।

सदा मग्न सुख सागर मांहि, तिष्ठै देव लेश दुख नाहि।
उपमा रहित मनुज यह लोक, धर्मध्यान पालै तज शोक ॥ २ ॥
दूजौ द्वीप धातकी खण्ड, पूरब दिशा दिपै परचण्ड।
पूर्व विदेह सु उत्तम थान, देश पुष्कलावती बखान ॥ ३ ॥
पूरब व्रत वर्णन सब जान, पुण्डरीक नगरी सु महान।
सदा शाश्वती अति विस्तार, बरणत कौन लहै बुध पार ॥ ४ ॥

दोहा—काल चतुर्थ सदा तहां, द्विज कुल होय न रंच।
आयु कोटि पूरबतनी, देह धनुष शत पंच ॥ ५ ॥

चौपाई।

पति सुमित्र भूपति नर ईश, नावैं बहुत राय ता शीस।
नाम सुव्रता रानी तास, शीलवंत व्रत अंकित तास ॥ ६ ॥
एक दिना निश पच्छिम याम, पंच स्वप्न देखै अभिराम।
चंद्र दिवाकर मेरु उतंग, सजल सरोवर सिंधु तरंग ॥ ७ ॥
उठी प्रात आई प्रिय पास, गत स्वप्न फल पूछे जास।
सब नरेन्द्र बोले विहसंत, तुम सुत ह्वै है जगत महंत ॥ ८ ॥
चंद्र स्वप्न फल निर्मल गात, सूरज तेजवंत अरिघात।

मेरु समान गरिष्ठ जु होय, सजल सरोवर बहुगुण सोय ॥ ९ ॥
सागर सम गंभीर अपार, बहुत राय आज्ञा शिर धार ।
सुनै स्वप्न फल हिय विहसंत, जिनमंदिर फिर गई तुरंत ॥ १० ॥
महाशुक्र सों चयकर सोय, गर्भवास लीनौं तहं जोय ।
नमौ मास जब पूरण भयौ, शुभ दिन लग्न जन्म तब लयौ ॥ ११ ॥
नाम दियौ प्रियमित्रकुमार, सब जनको प्रिय करता सार ।
मात-पिता अति आनंद कियौ, वंदी जनैं दान बहु दियौ । १२ ॥
बजै मृदङ्ग ताल कंसाल, पटह आदि वादित्र रसाल ।
बनवाये जिनसदन अनेक, कीनी पूजा महाभिषेक ॥१३॥
कल्याणक कर्ता सुखदाय, बहुबिध कियौ महोत्सव राय ।
द्वितिय चन्द्रसम वृद्धि कराय, जन आनन्दकरण सुखदाय ॥१४॥
पय जल अन्न वस्तु परतेक, भुगतै अतिशय रूप अनेक ।
क्रमसों कुँवर सयानो भयौ, जसकीरति जग बाढ़त गयो ॥१५॥
दिपै काम तन भूषत इसी, दिक्कुमारकी उपमा जिसी ।
तब सो तात अध्यापक राज, दीनी कुँवर पढ़ावन काज ॥१६॥
पढ़ी सार वानी जिनतनी, विद्या धर्म अर्थ सृ[१]जनी ।
विद्या सबै पढ़े सुकुमार, जो संसार चतुर्दश सार ॥१७॥
यौवन समय पिता पद पाय, महामण्डलेश्वर नृपराय ।
लक्ष्मी बहुत तासके गेह, सुख समूह भुगते धर नेह ॥१८॥
पूरब पुण्य प्रगट अब थाय, बहु विभूति गृह उपजी आय ।
चक्र आदि सब रत्न महान, नौनिधि सुखदायक परवान ॥१९॥

१—उत्पन्न करनेवाली ।

भूचर खेचर व्यंतर देव, छहौं खण्ड साधै स्वयमेव।
कन्या रत्न वस्तु जो सार, तिन दीनौ पदसों शिरधार॥ २०॥
अमर राज वत क्रीड़ा करै, सुरपुर सम पुर शोभा धरै।
खग भुमि लक्षरायकी सुता, परणी परम पुण्य संयुता॥ २१॥
सहस छ्यानवै रूप अपार, नाटकनी बत्तीस हजार।
परम विभूति अधिक निरभंग, सेना है बलवंत अभंग॥ २२॥
आठ जातिके भूपति सबै, तिनको भेद सुनो कछु अबै।
कोट गांवको भूपति होय, मुकुटबंध कहियत है सोय॥ २३॥
नवैं पांचसौ राजा जास, अध राजा तासों परगास।
सहस राय नावें ता शीश, महाराज कहिये अवनीश॥ २४॥
दोय सहस नृप प्रणमैं पाय, कहिये अर्ध मंडली राय।
चार सहस जा सेवा करैं, सोई मंडलीक पद धरैं॥ २५॥
आठ सहस नृप सेवैं जास, महामण्डली कहिये तास।
सोलह सहस नवैं नृप शीस, अधचक्री नायक नर ईश॥ २६॥
भूचर खेचर राजा सार, मुकुटबन्ध बत्तीस हजार।
चक्रपतीकी आज्ञा धरैं, नमैं पाय सब सेवा करैं॥ २७॥
म्लेच्छखण्ड वसुधाधिप जान, सहस अठारह हैं परवान।
सेवैं[1] चरण-कमल धरि नेह, चक्री तनौ पुण्य फल तेह॥ २७॥
गणबद्धाधिप देव महान, सोलह सहस नमैं तज मान।
नर विद्याधर अमर अनेक, चक्रीपद पूजैं मन एक॥ २८॥
हस्ती तुङ्ग मनोहर भाख, हैं प्रमाण चौरासी लाख।

१—चरणोंमे नमस्कार करके।

तितनै ही रथ लीजै जोड़, चपल तुरङ्ग अठारह कोड़ ॥ २९ ॥
आतुर गामी पयदल जान, चौरासी सुकोड़ परवान।
प्रणमें नित चक्रीश्वर पाय, यह वर्णन जानौं समुदाय ॥ ३० ॥
दोहा—संपूरन सुख भोगवै, चक्री नित प्रियमित्त।
तस विभूति बल वरनऊं, यथाशक्ति मो चित्त ॥ ३१ ॥

चौदह रत्नोका वर्णन।

चक्र चर्म मणि काकिणी, दण्ड छत्र असि नाम।
ये अजीव सातो रतन, चक्रवर्तिके धाम ॥ ३२ ॥
सेनापति वनिता नृपति, गृहपति नाग तुरङ्ग।
प्रोहित मिल सातौं रतन, ये सजीव सरवंग ॥ ३३ ॥
चक्र दण्ड असि छत्र ये, आयुधशाला होत।
चर्म काकिणी मणि रतन, श्रीगृह लहैं उदोत ॥ ३४ ॥
बनिता गज हय तीन ये, रूपाचल पर जान।
सेनापति गृहपति स्थपति, प्रोहित निजपुर थान। ३५॥

छप्पय।

प्रथम सुदर्शन चक्र खण्ड छह साधन समरथ,
चरम दूसरो जान वज्रमय नीर भेद पथ।
मणि काकिणि ये रतन चन्द्र सूरज सम दोई,
लिखकै गुफा मझार जाय साधन नृप सोई ॥
खुले दण्ड सों द्वार गिरि, छत्र ज्योति अधिकाइ हित।
चन्द्रहास असि देख तन, वैरीगण भजि जाय नित ॥ ३६॥
सेनापति अति शूर करत दिग्विजय निरन्तर,
वनिता चेतन रत्न महा बल धारत अन्तर।

स्थपति भद्रमुख नाम कलाकोविद अधिकाई,
हुक्म पाय गृहपती तुरत गृह देत बनाई ॥
गज रणमें जयको करै, हम चढ़ि गुफा निहारिये ।
प्रोहित वर विद्याधनी, यह गुण रतन विचारिये ॥३७॥

दोहा—अब प्रतेक नौ निधि तनैं, कहौं नाम गुण रूप ।
जैनी विन जानै नहीं, इनको सहज स्वरूप ॥३८॥

नवनिधि वर्णन ।

प्रथम काल निधि जानिये, महाकाल पुनि दोय ।
नैसर्पिक पाण्डुक पद्म, मानव पिङ्गल सोय ॥३९॥
आठम शङ्ख निधान निधि, सर्व रतन नम येह ।
कहीं जिनागमके विषैं, वरणों गुण कछु तेह ॥४०॥

पद्धडि छन्द ।

अब प्रथम कालनिधि गुण अपार, पुस्तक अनेक दातार सार ।
मुनि महाकाल दूजो मनोग, असि मषि साधन सामग्रि जोग ॥४१
तीजी नैसर्पिक निधि महान, नानाविध भाजन रत्नखान ।
चौथी निधि पांडुक नाम सोय, रस धान्य समर्पै सकल तोय ॥४२
निधि पद्म पांचवीं सुक्खखान, मनवांछित देय जु वसन दान ।
मानव निधि छठवीं परम हेत, सो आयुध जाति अनेक देत ॥४३
सप्तम निधि पिंगल शुभ अनूप, सब भूषण दायक सहज रूप ।
निधि शङ्ख आठवीं बहु पुनीत, वादित्र सकलदायक सुनीत ॥४४
निधि सर्व रतन नवमी वखान, सो सर्व रतन तापर निदान ।
तिन एक एक प्रति सहस एक, रखवारे जहँ प्रापत अनेक ॥४५॥

दोहा—ये नौ निधि चक्रेशकी, शकटाकृति[1] संठान।
आठ चक्र संयुक्त शुभ, चौखूंटी सब जान ॥ ४६ ॥
जोजन आठ उतंग अति, नव जोजन विस्तार।
बारह मिति दीरघ सकल, बसैं गगन निरधार ॥४७॥

नगरादि वर्णन।

पद्धटि छन्द।

सासुतैं सहस बत्तीस देश, धन कन कञ्चन पूरण विशेष।
बाड़ै चहुंओर जु विपुल बाड़ि, ते कोड़ छ्यानवे गांव माड़ि ॥४८
है कोट सु गिरदा द्वार चार, छव्वीस सहस पुर इमि विचार।
जिन लगे पांचसै गांव भूर, ते चार हजार अटम्ब पूर ॥४९॥
गिरि नदी पेठ सोलह हजार, वे खेट कहै जिनमत मंझार।
केवल गिर बेड़े चहूंओर, कर्वट हजार चौबीस जोर ॥५०॥
पट्टन हजार अडताल जान, उपजें जहँ बहुविध रत्न खान।
इक लख द्रोणामुख सहस घाट, ते बसत समुदतट दुःख काट ॥५१
गिरि ऊपर सम वाहन बखान, चौदह हजार मन हरण थान।
अठवीस हजार दुरंग मांहि, रिपुको प्रवेश तहँ रंच नाहि ॥५२॥
उपसमुद मध्य जानो महान, तहँ अन्तद्वीप छप्पन प्रमान।
रतनाकरपुर छव्विस हजार, बहुसारवस्तुको सो भंडार ॥५३॥
शुभ रतन कुछत सूसात लेख(?) जहँ रतनधरा चहुंओर देख।
ये पुर राजैं सब आप जोग, जिनधरमी जन तहँ करैं भोग ॥५४॥

१—गाडीके आकार।

शरीर वर्णन।

दोहा—प्रथम चतुरसंस्थान सम, वज्रवृषभनाराच।
हेम वरण व्यञ्जन सहित, तन निरोग मधु वाच ॥ ५५ ॥

अन्य विभूति वर्णन।

एक कोट हल क्षीरके, खेती करहि किसान।
कामधेनु गोकुल विविध, तीन कोट परवान ॥ ५६ ॥
कोट थाल कञ्चन तनै, चक्री नृपके गेह।
छहों खण्ड भूपति सकल, तिनतैं अतिबल देह ॥ ५७ ॥

बल वर्णन।

चौपाई।

अब सुन मनको भेदाभेद, जातैं नासै मनको खेद।
बारह मनुष गहै बल जितौ, एक वृषभमें वरते तितौ ॥ ५८ ॥
जो बल बारह वृषभ मझार, तितनौ एक तुरङ्ग मझार।
जो तुरंग बारह बल लिये, सो बल एक महिषके हिये ॥५९॥
महिष पांचसै जो बल धरैं, सो गजराज सहज ता करै।
जो बल सौ गयंद सरवंग, सोई एक सिंहके अंग ॥ ६० ॥
सिंह पांचसै जो बलवान, सो बलभद्र एकमें जान।
दो बलभद्र धरैं बल जोय, सो नारायणके तन होय ॥ ६१ ॥
नौं नारायण बल धारंत, सो चक्री तन होय तुरंत।
चक्री कोट होय बल जितौ, सोई एक देव परिमितौ ॥ ६२ ॥
जो बल कोट देवके अंग, तितनौ एक इन्द्र सरवंग।
तीर्थंकर अद्भुत बल कही, तन परमाणू उतने वही ॥ ६३ ॥

दोहा—सहस छ्यानवै विक्रिया, धारत चक्री अङ्ग।
मति श्रुत अवधिजु ज्ञान त्रय, पूरव धर्म अभङ्ग ॥ ६४ ॥

मुख्य सम्पदा वर्णन।

छन्द चाल।

अब मुख्य संपदा जोई, आगै सुनियो भवि सोई।
सिंह वाहन सेज मनोगा, आरूढ चक्रपति जोगा ॥ ६५ ॥
अति आसन तुंग बखानो, मणि जाल जटित परवानो।
सुर ढोरत चमर अनूपा, गङ्गा जल लहर सरूपा ॥ ६६ ॥
विद्युत मणि कुण्डल सोहै, द्युति देखत सुरनर मोहै।
वर कवच अभेद महाना, जामै न भिदै रिपु बाना ॥ ६७ ॥
विषमोचक पादुक दोई, पद पद विषमुंचत सोई।
अजितंजय रथ सुखदाई, जलपै सो थलवत जाई ॥ ६८ ॥
पुनि वज्रकाण्ड धर चापा, सु चढ़ावत नरपति आपा।
अमोघ बाण हाथमें लेई, रणमें जयको सो देई ॥ ६९ ॥
तुंडा अति विकट महाना, पुन खण्डन शक्ती जाना।
सिंहाटक बरछी सोहै, ताको नर देखत डोहै ॥ ७० ॥
छुरी लोहबाहनी जानौ, दामिनै गण चमकत मानौ।
ये वस्तु सबै भूथाना, चक्री तज होत न आना ॥ ७१ ॥
दल मै ले सब गिरदाई, भू बारह योजन थाई।
बारह विध आनंद भेरी, बारह जोजन ध्वनि घेरी ॥ ७२ ॥
है वज्रघोष जिस नामा, बारह पट नृपके धामा।

१—विजलियोंका समूह।

गंभीरावर्त गरीसा, शङ्ख शोभन रूप चौबीसा ॥ ७३ ॥
रमणीक ध्वजा बहु दीसा, मिति कोट जु अड़तालीसा ।
इत्यादिक वस्तु अपारा, सब वरणत लहै न पारा ॥ ७४ ॥

पञ्चेन्द्रिय विषय वर्णन ।

चौपाई ।

रवि विमान है जैसो अंखै, सो चक्री निज द्रगसों लखै ।
राई ठनक सबद दल होइ, ततछिन सुनै शबद कर सोइ ॥ ७५ ॥
दल सुगन्ध दुर्गन्धा जितौ, नाक विषय सौ जानौ तितौ ।
षट्रस भोजन इकठे करै, रसना स्वाद जुदे जुद धरै ॥ ७६ ॥
सहस छयानवै नारीगेह, तितनी धरै विक्रिया देह ।
मूल शरीर पट्ट तिय संग, नित प्रति भोग विषय यह अंग ॥ ७७ ॥

दोहा — यह विधि चक्री भोगवै, अखै सम्पदा जेह ।
सेनापति आज्ञा वहै, नवविधि दल रचि देह ॥ ७८ ॥

दल (सेना) भेद वर्णन ।

चौपाई ।

नौ विधि दल भाष्यौ जिनदेव, ताको भेद सुनौ स्वयमेव ।
प्रथम पती सेना सुख नीक, पंचम वाहन चमू जु ठीक ॥ ७९ ॥
वरूथिनी दंडी क्षौहिणी, जाको भेद सुनो अवगुणी ।
इक इक गजरथ वाजी तीन, पाइक पंथ पती गुण लीन ॥ ८० ॥
गजरथ तीन तीन नव वाज, पन्द्रह पाइक सेना साज ।
नौ गजरथ रथ हय सतवीस, सुखके पाइक पैंतालीस ॥ ८१ ॥

१—अक्षय ।

सप्त वीस रथ गज-पहिचान, इक्यासीय तुरंगम जान।
पाइक सब इकसै पैंतीस, दल अनीक है कह्यौ जिनीश॥ ८२॥

गज इक्यासी रथ पुन तितै, हय दोसै तेतालिस मितै।
प्यादे कहै चारसै पांच, भेद वाहिनीको यह सांच॥ ८३॥

दोसै तेतालीस गयंद, तितनै ही रथ कहै जिनंद।
उनतिस अधिक सातसै बाज, बारहसै पन्द्रह पद साज॥ ८४॥

चमू तनी है संख्या इती, वरूथिनी अब भाख्यौ तिती।
सातसै बावन तिस गज कहे, पुन तितने ही रथ सर दहे॥ ८५॥

द्वै सहस्र इकसौ हय जान, तापर अधिक सतासी मान।
पाइक तीन सहस सै षष्ट, अरु पैंताल वरूथी सृष्ट॥ ८६॥

द्वै सहस्र इकसौ गजराज, तापर अधिक सतासी साज।
रथ संख्या इतनी मानिये, षट् सहस्र यह वर जानिये॥ ८७॥

और पांचसै इकसठ होय, आगे सुन अब पायक सोय।
दश सहस्र नौ सै पैंतीस, दण्ड भेद भाषौ जिन ईस॥ ८८॥

गज एक सहस सहस शत आठ, तापै अधिक जो सत्तर ठाठ।
तितनै ही रथ लीजौ जान, पैसठ सहस वाजि पहिचान॥ ८९॥

छहसै दश ता ऊपर गनै, पैदल एक लाख तहँ भनै।
नव सहस्र शत साढ़े तीन, क्षौहिनि संख्या यह परवीन॥ ९०॥

महल वर्णन।

दोहा- मन्दिर चौरासी खनै, उपमा है असमान।
परम भूति चक्रेशकी, जिनमत लीजौ जान॥ ९१॥

धर्म प्रवृत्ति वर्णन।

चौपाई।

होय धर्म सों सिद्धि अनेक, अर्थ काम सब सुख प्रत्येक।
जब कुधर्मको त्याग जु करै, मोखतनी सामग्री धरै ॥९२॥
यह जानै नित सुबुध मनोग, मन, वच, काय कर्म-संजोग।
सुकृत आदि अनेक प्रकार, धरैं धर्म उत्तम सुखकार ॥९३॥
सम्यग्दर्शन शुद्ध स्वरूप, निशंकादि गुणरूप अनूप।
निर अतिचार अणुव्रत मीत, पालैं सागारी धरि प्रीत ॥९४॥
चार पर्व प्रोषधको धरै, निशदिन सदा पाप परिहरै।
निरारम्भ हिरदै शुभ ध्यान, अशुभ ध्यानकी कीनी हान ॥९५॥
हेम रतनमय जिनगृह सार, करवाये बहु तुङ्ग विचार।
अर प्रतिमा कीनी जिन तनी, भक्ति प्रतिष्ठा आदिक घनी ॥९६॥
अष्टद्रव्य जल आदिक जान, बहु सामग्री सहित महान।
श्री तीर्थंकर पूजा करै, तिन गुण कारण कर सिर धरै ॥९७॥
मुनिको प्रासुक देइ अहार, विधिपूर्वक अति शुद्ध विचार।
भक्ति सहित वंदे नरईश, कीरति पुण्य बढ़ै जग शीस ॥९८॥
जहँ निर्वाणभूमि जिनतनी, तथा बिम्ब अरु मुनि शिर मैनी।
जाय तहां मुनि वन्दन हेत, धर्म धनी वर भक्ति समेत ॥९९॥
सुनै केवली वचन पुनीत, तत्त्व अर्थ गर्भित गुणरीत।
श्रावक जती धर्म सुखदाय, भेदाभेद कह्यौ समझाय ॥१००॥
सामाइक विध पालै सोय, निशदिन छैहों काल जुत होय।

१—श्रेष्ठ, २-यहांपर रात्रिके भी प्रारम्भ मध्यम और अन्तिम कालकी अपेक्षा ३ भेद लेकर सामायिकके ६ काल बतलाये हैं, परन्तु अन्यत्र दिनके तीन कालोंकी अपेक्षा सामायिकके तीन ही काल बताये गये हैं।

निज निन्दा परिगर्हा करै, मन विवेक बहु धीरज धरै ॥१०१॥
इन्हें आदि जे शुभ आचार, करैं धर्म धर हिये विचार।
देहि[1] औरको शुभ उपदेश, भविजन प्रीति सुजगत महेश॥१०२॥
दोहा—ज्यों वारिज जलमें बसै, करै न उससे प्रीत।
त्यों चक्री संपति घनी, चलै धर्मकी नीत॥१०३॥

जोगीरासा।

एक समै चक्री नर-नायक, सब परिवार समेत।
सीमंधर मुनि समोशरण, थित गये वन्दना हेत॥
तीन प्रदक्षिण दे शिर नायौ, पूजा विधि वसु कीनी।
भक्ति सहित गणराज प्रणामें, नरकोठा थिति लिनी॥१०४॥
ताहित जिन दिव्यध्वनि सुंदर, गणधर प्रति परकाशी।
द्वादश विध अनुप्रेक्षा चितन, धर्म-दुविध तहां भासी॥

बारह अनुप्रेक्षाओंका वर्णन।

आयुष पूरण वपु भोगादिक, राज्य रमा सुख साध्यौ।
दामिनि सम सो चंचल दीसै, तातैं शिव आराध्यौ॥१०५॥
मरण कलेश दुखादिक भारी, जीव सहै नित सोई।
यातैं धर्म धरो भवि दृढ़ मन, शरण न जगमें कोई॥
दुःख दुरित जुत कर्म फिरावत, जगतैं जान न देवैं।
तातैं यह संसार भ्रमण तज, रत्नत्रय व्रत सेवैं॥१०६॥
अन्य चिन्दानंद अन्य शरीरा, ऐसो जिय जब जानै।
होय तबै तप सिद्धि[2] सगोत्तम, राग -रहित पहिचानै॥

१—देवै, २—सबसे उत्तम।

सप्त धातुमय निंद्य कलेवर, अन्ध अपूर्ण न तारौ।
ऐसो निज तन देखि सुधीजन, क्यों नहिं धर्म विचारै ॥१०७॥

कर्मास्त्रव कर जीव निरन्तर, भवसागरमें भासै।
जान यहै बुध दीक्षा गहु सुध, जामें मुक्ति प्रकासै॥

कर्मास्त्रवको आवत रोको, सोई संवर जानौं।
जानि सुधी ग्रहको तज तपकर, धारै मुक्ति पयानौं ॥१०८॥

दुविध निर्जरा कर्म संपूरन, तप कर ताहि खिरावै।
मुक्ति रमाकी वांछा निशदिन, भविजन काल गमावै॥

दुख सुख पाय जगत्रय भ्रमतै, ओर न कबहूं आवै।
तातें संजम भजहु सुधीजन, सुख आनन्त लहावै ॥१०९॥

इक इन्द्रीतैं दुर्लभ दुर्लभ, पंच इन्द्री गति पाई।
नव भव पाय तपस्या कीजे, जामें मोक्ष लहाई॥

धर्म जिनेश्वरभाषित जगमें, सुख करता जिय होई।
भव दुख हरन करन शिव प्रापति, भविजन पालो सोई॥११०॥

सम्यग्दर्श व्रतादि क्षमादिक, दश विध धर्म बखानै।
ताहि धरै सुर शिव प्रापति लहि, वांछित सुधी सयानै॥

सुखिया जनको सुक्ख बढ़ावत, दुखियाको दुख घातै।
धर्म दुविध जति श्रावक गोचर, होई सकल सिध वातैं॥१११॥

होत धर्म सों पण्डित बहु विध, धर्म सबै सुखकारी।
धर्म जगतमें पूजत उत्तिम, धर्म सुगुरु गन भारी॥

१—अन्त।

इहि विधि जिन मुख, द्वादशप्रेक्षा सुन चक्री बैरागे।
आयु रमा तन भोग जगत्रय, क्षणभंगुर सब लागे ॥११२॥

चक्रवर्तिका वैराग्य वर्णन।

धिक् धिक यह संसार महावन, भटकत ओर न आयो।
ज्यों चौगा[1] नेवटा धर डोलै, हाथ कछू नहि पायो॥
कबही जाय नरक दुख भुंजै, छेदन भेदन होई।
कबहूं पशु परजाय पाय जिय, वध बन्धन बहु जोई ॥११३॥
सुर पदमें पर संपति लखि कै, राग उदै दुख पावै।
मानुष जन्म सुखी नहि कोई, विपत अनेक बढ़ावै॥
मैं चक्री पद भोग घनेरे, भुगते तृपति न होई।
जैसे अगिन प्रज्वले तैलसु, डारत शान्त न होई ॥११४॥
दरशन ज्ञान चरन विन जियको, भवदधि पार न पावै।
तातैं दीक्षा ग्रहण भलो, अब तपकर कर्म खिरावै॥
सकल संपदा जीरन तृणवत, छोडी नृप अनुरागी।
सहस छ्यानवै नारि पियारी, मन वच क्रम कर त्यागी ॥११५॥
सर्वमित्र[2] सुत प्रथम अनुत्तम[3], राजभार तसु दीनौ।
आपुन भूषण वसन उतारै, जिन मुद्रा मन लीनौ॥
एक हजार नृपति सँग चक्री, पंच महाव्रत धारे।
गृह तज वनमें वसहि निरन्तर, तिन पद हम शिर धारैं॥११६॥

दोहा—छहों खण्ड संपति घनी, छोड़त लगी न वार।
धन मुनीश प्रियमित्र चित, सुकृत सुबृद्धि अपार ॥११७॥

१–नट। २–'सर्वमित्र' नामक पुत्रके लिये। ३–श्रेष्ठ।

तपवर्णन।

चौपाई।

दुविध प्रकार करै तप घनौ, धीर वीर चित पर्वत मनौ।
ध्यानी ध्यान मध्य बहु लीन, तज प्रमाद चउदह मल हीन॥११८॥
मूलोत्तर गुण आदिक जोय, सम्यग्दर्शन पालै सोय।
तीन काल जुत जोग मझार, तीन गुप्तिको सदा विचार॥११९॥
बसैं मुनी जहँ निर्जन थान, अटवी गिरि पर गुहा मसान।
बिहरैं ईर्जापथ पग देत, देश ग्राम संबोधन हेत॥१२०।
पाख मास उपवास कराहि, चरजा हित मुनि ग्रामहिं जाहि।
अन्तराय पालैं धर नेह, शुद्धाहार लैइ भवि गेह॥१२१॥
तहाँ धर्म उपदेश जु करैं, परभावना अङ्ग विस्तरैं।
जिन शासन माहात्म्य अपार, नर स्वरूप पूजन जगसार॥१२२॥
इनै आदि जे परम अचार, पालै संजम रहित विकार।
बहुत काल तप कीनौं सार, अन्त समाधि धरी सुखकार॥१२३॥
चार प्रकार तजौ आहार, परमारथ पद प्रापतिकार।
अंगीकार कियौ संन्यास, धरौ जोग प्रतिमा सम जास॥१२४॥
जीत परीषह दो अरु बीस, क्षुधा प्यास आदिक मुनि ईस।
तपकर कीनै कर्मन हीन, आप धर्मको परगट कीन॥१२४॥
आराधन आराधी चार, मुक्तितनी साधक सुखकार।
तजे प्रान तनतैं परवीन, जिनशासन ध्यायक गुण लीन॥१२५॥

१—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप ये ४ आराधनाएं कहलाती हैं।

सहस अठारा वर्ष व्यतीत, लेइ सुधा आहार पुनीत।
पक्ष अठारा पूरण जाय, स्वासा तन तैं तब मुकलाय ॥१३६॥

तुर्यभूमि[1] पर्यन्त विचार, द्रव्य चराचर जानै सार।
ऋद्धि विक्रिया तहँ लौं कही, क्षेत्र प्रभाव जानियै सही ॥१३७॥

देश ग्राम आरण्य पहार, सागर द्वीप असंख्य मझार।
इच्छा पूर्वक विहरै सोई, देविन सौं क्रीड़ा जुत होइ ॥१३८॥

कबहूं वीणादिक धुनि सुनै, कबहूं गीत मनोहर गुनै।
कबहूं दिव्य देविनके संग, देखहि सब आगार अभंग ॥१३९॥

कबहूं धर्मगोठ आदरै, कबहूं केवलि पूजा करै।
कबहूं श्री तीर्थकर तनै, पंचकल्याणक उच्छव ठनै ॥१४०॥

इत्यादिक शुभ कर्म संयोग, करै सुक्ख सागरमें भोग।
काल न जान्यौ जातन देव, धर्मवंत गुण ज्ञान अभेव ॥१४१॥

गीतिका छन्द।

इहि भांति शुभ परिपाक करकै, चक्रिपद पायौ जबै।
सब सार सुन्दर सुक्ख निरुपम, भोग भुगतै बहु तबै ॥
अति विमल चरित सँजोग करके, देव पद तिन पाइयौ।
भज धर्म जिनवर मोक्षदायक, 'नवलशाह' प्रणामियौ ॥१४२॥

इति कविरत्न श्री नवलशाह विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमें
चक्रवर्ति–स्वर्गगमन रूप दो भवोंका वर्णन करनेवाला
पाचवा अधिकार पूर्ण हुआ।

१–चौथे नरक तक।

छठवां अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा—मोह अक्ष-तसकर हन्यौ, भविजन रक्षक देव।
ज्ञान धर्म करता अरथ, करो वीर जिन सेव॥ १॥

चौपाई।

याही जम्बूद्वीप विख्यात, भरतक्षेत्र तामें अवदात।
छत्राकार नग्र तहँ जान, निवसैं धर्मीजन सुख खान॥ २॥
नन्दवर्ध भूपति अवनीश, आनंदवर्धक गुणगण शीस।
रानी वीरमती अतिरूप, पुण्यशालिनी शील अनूप॥ ३॥
चयौ सुरगसै देव पुनीत, तिनकै पुत्र भयौ कर प्रीत।
नन्द नाम अति रूप विशाल, जग आनन्द करण सुकुमाल॥ ४॥
बन्दीजन हिं दियौ बहु दान, पुत्र महोच्छव कियौ महान।
योग्य अन्न पय पोष कराय, बाढे गुण संपूरण काय॥ ५॥
उपाध्यायके पढ्यौ तबै, धरता शास्त्र-शस्त्रको जबै।
कला विवेक रूप अति घनौं, सोहै स्वर्ग देव यह भनौ॥ ६॥
क्रम सौ कुँवर पितापद पाय, राज्यविभूति रमा अधिकाय।
दिव्य-भोग भुगतै संसार, सदा धर्मको करहि विचार॥ ७॥
निशङ्कादिक गुण पालंत, दर्शन शुद्ध धरै मन संत।
द्वादश व्रत श्रावकके जान, करै जतन सो ते परवान॥ ८॥
निरारम्भ उपवास पुनीत, सकल परवमें करै सुरीत।
दान मुनीको हर्ष बढ़ाय, देय यथार्थ सुक्ख अधिकाय॥ ९॥

श्री जिनेशके मन्दिर जांय, महती पूजा तहां कराय ।
यात्रा करै धर्मके काज, बन्दै गणधर मुनि जिनराज ॥ १० ॥
होय धर्म सौ अर्थ अनूप, ताकर बाढ़ै सुक्ख स्वरूप ।
अघ त्यागे पावे निर्वान, सदा सासुतौ अविचल थान ॥ ११ ॥
बहु विध करै धर्म गुणमूर, दिन दिन बढ़ै सुक्ख अंकूर ।
यही जान भवि धर्म हि गहो, इह भव परभवके दुख दहो ॥ १२ ॥
शुभ आचार करन परवीन, जिन भाषित मतमें लवलीन ।
मन संकल्प न वर्तै कोय, सर्व अवस्थामें दृढ़ सोय ॥ १३ ॥
ता फल महाभोग उपभोग, भुगतै राज संपदा जोग ।
निशदिन काल गमावै सार, सुख-सागरकी केलि मझार ॥ १४ ॥
एक दिना परमारथ काज, गये भव्यजन सहित समाज ।
'प्रौष्ठिल' जो हैं गुरु परवीन, बन्दै तिनकै पद गुण लीन ॥ १५ ॥
अष्ट द्रव्य ले पूजा करी, जथाशक्ति मुनि थुति विस्तरी ।
भक्ति सहित शिर नयौ महीप, बैठौ पुन मुनि पाय समीप ॥ १६ ॥
ता हित पर-अरथी[1] मुनिराय, भाषौ जती धर्म समुदाय ।
तत्व पदारथ आदिक सार, तत्व पदारथ शिव अधिकार ॥ १७ ॥
मारूथल सम यह संसार, तामें दुःख अनन्त अपार ।
दोष अन्त तैं रहित सदीव, कैसे कहां वसैं भव जीव ॥ १८ ॥
अरु जो दुख संसार न होय, बहु संपूरण सुख तहँ जोय ।
तौ पुन सुतप गहैं किम काज, जिनवर आदि सबै मुनिराज ॥ १९ ॥
क्षुधा प्यास कामादिक कोप, प्रज्वलित निश दिन जिय चित लोप ।

१—परोपकारी ।

जहां कुटिलता तन धारंत, धीरज धरै तही बुधवंत ॥२०॥
इन्द्रियादि तस्कर सब जोय, धर्म पदारथ चोरत सोय।
बसे तहां एकाकी वीर, चित अडोल तन साहस धीर ॥२१॥
पराधीन चल भोगी जौन, ताको सेवै भव जन कौन?
दुख अनन्त परिपूरण सोय, भवसागरको वर्धक जोय ॥२२॥
इहि प्रकार वच सुन बड़भाग, मनमें बाढ्यौ परम विराग।
तब उठि मुनिको नायो शीस, तज्यो परिग्रह चउ अरु वीस ॥२३॥

दोहा—परम्पराय अनन्त भव, वातौ संजम जोग।
परम शुद्ध चित आदरो, साधक शिवकी ओर ॥२४॥
द्वादशाङ्ग[1] वारिधि अगम, गुरु उपदेश जहाज।
भयौ पार परवीन मुनि, रहित प्रमाद अकाज ॥२५॥

चौपाई।

आप वीर्यको परगट करो, द्वादश विध तप तन आदरो।
पाख मास उपवास हि धार, पंचेन्द्रिय सोखै निरधार ॥२६॥
बसै गुफा गिरि कन्दर थान, एकाकी वन सिंह समान।
सहैं परीषह दो अर बीस, क्षुधा तृषा आदिक दुख दीस ॥२७॥

दोहा—नन्द मुनीश्वर भावजुत, षोडश भावन सार।
भावै निर्मल चित्त है, सकल सिद्धि दातार ॥२८॥

षोडश भावनाओंका वर्णन।

चौपाई।

सम्यग्दर्शन प्रथम विशुद्ध, अष्ट अंङ्ग[2] ताके अवरुद्ध।

१—द्वादशांङ्ग श्रुतज्ञानरूपी समुद्र, २—निःशङ्कित, निःकांक्षित, निर्विचिकित्सा, अमूढदृष्टि, उपगूहन, स्थितिकरण वात्सल्य और प्रभावना—ये आठ अङ्ग हैं।

मल पच्चीस रहित जब होय, प्रथम भावना कहिये सोय ॥२९॥
दर्शन ज्ञान चरण उपदेश, जो मुनि देइ जथारथ लेश।
ताकी विनय करै बहु भांत, द्वितिय भावना सो विरतांत ॥३०॥
सहस अठारह शीलह अंग, अतीचार पालै तज संग।
निर अतिचार कहावै सोइ, तृतिय भावना उत्तम होइ ॥३१॥
पढ़ै अङ्ग पूरव गुण ज्ञान, मत अज्ञान करै निरमान।
काल पठन बिस्तारै सोय, ज्ञान अभीक्ष्ण भावना जोय ॥३२॥
भोग अङ्ग सुत मित्र समेत, धन कन कंचन कुल बल हेत।
जब इनतैं तन होय उदास, भव संवेग तनों परगास ॥३३॥
चार प्रकार संघ समुदाय, दीजे दान चार विध आय।
यथाशक्ति जिनभाव समेत, शक्तितस्त्याग भावना हेत ॥३४॥
हनै कर्मरिपुको संतान, बारह विध तप करै निदान।
जो निज शक्ति आत्मा गहै, शक्तितस्तप सो जाना वहै ॥३५।
श्री मुनिवर गुण ज्ञायक नेह, रोग सोग भय पीड़ित देह।
तास समाधि करै समुदाय, साधु समाधि वही सुखदाय ॥३६॥
वात पित्त कफ शूल अनेक, अति दुर्गन्ध कुष्ट तन टेक।
ता मुनिकी शुश्रूषा करै, वैयावृत तब उत्तम धरै ॥३७॥

१—आठ दोष—शङ्का, कांक्षा, विचिकित्सा, मूढ दृष्टि, अनुपगूहन, अस्थितिकरण, अवात्सल्य, अप्रभावना, तीन मूढता—देव मूढता, पाखण्डि मूढता, लोक मूढता, आठ मद—ज्ञान मद, पूजा मद, कुल मद, जाति मद, बल मद, ऋद्धि मद, तपो मद, शरीर मद, छः अनायतन—कुगुरु, कुदेव, कुधर्म, कुगुरु सेवक, कुदेव सेवक और कुधर्म सेवक ये २५ मल हैं।

श्री अरहंत देव सुखदाय, मन वच काया सेव कराय।
धर्म अर्थ शिव काम सहीत, दाइक अरहद भक्ति पुनीत ॥३८॥
वन्दे आचारज मन हीन, पंचाचार करण परवीन।
गुण छत्तीस तने धरतार, यह आचारज भक्ति विचार ॥३९॥
श्रुतज्ञान उद्योतक मुनी, मत अज्ञान हरन गुन गुनी।
तिनकी भक्ति करे उर जोय, बहुश्रुतभक्ति कहावै सोय ॥४०॥
मोह महातम नाशन भान, श्री जिनवर वानी सुख खान।
ताको बहुविध वर्णन करे, प्रवचनभक्ति तहां विस्तरे ॥४१॥
प्रतिक्रमण शुभ प्रत्याख्यान, अरु व्युत्सर्ग सु समिता वान।
तीन काल साधे स्वाध्याय, यह आवसिका परिहानाय ॥४२॥
जो पुस्तक लिख औरहि देय, प्रश्न ते पण्डित कर लेय।
जिनपूजा मन वच तन करे, मार्ग प्रभावन उत्तम धरे ॥४३॥
सम्यग्दृष्टी जो नर होय, कर सन्मान बुलावै सोय।
धर्मकथा भापै ता पास, वात्सल्य यह अङ्ग प्रकाश ॥४४॥

दोहा—यह विध षोडश भावना, भाइ नन्द मुनीश।
तीर्थंकर पद बंधियो, गुण अनन्त परमेश ॥४५॥
महिमा तीनौं लोकमें, इन्द्र उपेन्द्र अपार।
मुक्ति सरूपी लक्ष्मी, बांधी नर हितकार ॥४६॥

चौपाई।

मरण प्रजंत कियौ तप घोर, पाल्यौ संजम आतम जोर।
अल्प आयु संपूरन करी, वपु आहार क्रिया परिहरी ॥४७॥

१—आवश्यकापरिहाणि।

व्रत साफल्य कियौ भवपार, तीन जगत सुखको करतार।
परम विशुद्ध धरौ संन्यास, दायक मोख हरण दुख आस ॥४८॥
दरशन ज्ञान चरण तप लहै, समताभाव आतमा गहै।
आराधन आराधै चार, वांछे हियैं मोख-वर नार ॥४९॥
मन विकल्प सब कीनें दूर, आतम ध्यान दियौ भरपूर।
सब जीवनसौ क्षमा कराय, तजै समाधि प्राण मुनिराय ॥५०॥
दोहा—यह तप फल सो पाइयौ, सुरग सोरहैं वास।
अच्युत इन्द्र पुनीत पद, देव नमैं पद जास ॥५१॥

चौपाई।

संपुट[1] शिला रतनमय लसै, मानों कमलसु ऊरध वसै।
अन्त मुहूरत जौवन लयौ, संपूरन तन प्रापत भयौ ॥५२॥
आभूषण भूषित सरवंग, सहज रूप सम नाना रंग।
तहँ तै उठ देखो सब भेष, अति रमणीक मनोहर देश ॥५३॥
ऋद्धि सिद्धि देखी सब राय, सुर विमान आदिक समुदाय।
स्वप्न समान लगै यह बात, मन चिन्तै कछु भेद न गात ॥५४॥
को मैं कौन पुण्य है कियौ, कौन देश यह कहां आनियौ।
को प्रवीन ये बोलैं बैन, को सुर सेवैं मन धर चैन ॥५५॥
कौन तनी देवी गुणमाल, रूपलता जुत शील विशाल।
रतनमयी प्रासाद उतंग, कौन तनें यह नाना रंग ॥५६॥
दल सप्ताङ्ग कौनको येह, अति मनोज्ञ सुर रक्ष करेह।
दिपै सभामण्डप मनमोह, परम उतंग सबै यह कोह। ५७॥
रतनजटित बहुवर्ण विमान, तामें कौन बसैं परधान।

१—उपपाद शैया।

को यह नृत्य करैं मन लाय, सकल विभूति कही ना जाय ।।५८।।
मुहिको देखैं देवी देव, मन आनन्द करैं सब सेव ।
कारण कौन न जान्यौ जाय, त्यों त्यो मन चिन्ता अधिकाय ।।५९।।
इहि प्रकार बहु चिन्ता करै, मनमें सुरपति विकलप धरै ।
भेदाभेद न जान्यौ येह, सख्त हिये बाढ़्यौ सदेह ।।६०।।
तावत मन्त्री परम प्रवीन, प्रनमौं चरणकमल मद हीन ।
अवधिज्ञान कर जानौ येह, नाथ हिये बाड्यौ संदेह ।।६१।।
अस्तुति करी नाय निज भाल, भो स्वामी तुम दीनदयाल ।
धन्य आज देखै तुम नैन, जीवन सफल भयौ मुझ एन ।।६२।।
देह पवित्र आज मो भई, आज हु मनकी दुर्गति गई ।
हस्त कमल फिर जोरे देव, शिर नवाय बोलो कर सेव ।।६३।।
अब सुनिये भो कृपानिधान, जामें मन विकलपकी हान ।
स्वर्ग महा अच्युत यह सोय, ऋद्धि सिद्धिको सागर तोय ।।६४।।
सकल स्वर्गके ऊपर वसै, ज्यो माथे चूडामणि लसै ।
चन्द्रकान्त मूगा मणिमई, नाना रतन भूमि वरनई ।।६५।।
रात दिवसको भेद न कदा, रतन ज्योति सों उदित सदा ।
तीन लोकमें दुर्लभ जोइ, एक धर्मसो सुलभ जु होइ ।।६६।।
सुख-सागरमें निबसै सोय, दुःख दारिद्र न व्यापै कोय ।
कामधेनु गौ दूध अपार, कल्पवृक्ष दशविध दातार ।।६७।।
चिन्तामणिसे रत्न अनूप, और वस्तुको कहा स्वरूप ।
स्वर्ग-बाग तरु नाना रूप, चैत्यवृक्ष आदि तरु भूप ।।६८।।

१–दूर हुआ ।

फूलैं फूल तहां अधिकार, दश ही दिश फैली महकार।
यहां न बरतै दुखको हेत, सुख समूह सब ही विधि देत ॥६९॥
दीन दरिद्री रोगी दुखी, निर्गुण निर्ज्ञानी दुर्मुखी।
दुर्भागी दुर्वचनी जिते, सपनै मांहि न दीसैं इते ॥७०॥
कैं जिन पूजा बरतैं अंग, सुनैं केवली वचन उतंग।
देखैं नृत्य महारमणीक, और न मनमें विकलप लीक ॥७१॥
इकसै उनसठ सकल विमान, श्रेणीबद्ध प्रकीर्णक जान।
तिनै असंख्य संख्य विस्तार, सबै सुक्खसागर अविकार ॥७२॥
दश सहस्र सामानिक देव, तुम समान दीसें कर सेव।
उत्तम सुर तेतीस हजार, सुत समान बर्तैं सुक्खकार ॥७३॥
सुर चालीस सहस परवान, ते तुम तन रक्षक गुण खान।
या समान सब देव उतंग, कहै अढ़ाईसै निरभंग ॥७४॥
देव पंचसै परम प्रवीन, तुम आज्ञामें तत्पर लीन।
लोकपाल चारों चतुरंग, पालैं लोक धरा सरवंग ॥७५॥
दश दिकपाल नाथ पग धरैं, दशहि दिशा सब उज्वल करैं।
इनैं आदि सुर सेवैं घने, अब सुभेद सुन देविन तने ॥७६॥
गणदेवी बत्तीस बखान, नाटक सुक्ख करें गुन खान।
अष्ट महादेवी गुणरूप, प्रेम आदेश राग रस कूप ॥७७॥
एक एक प्रति है परवान, कहीं अठाईसै शुभ ठान।
तीन ज्ञान मण्डित मन रंग, ऋद्धि विक्रिया युत सरवंग ॥७८॥
बल्लभिका देवी सुन थान, है त्रेषठ इनको परवान।
तुम चित हरैं करैं पद सेव, महती रूप सम्पदा एव ॥७९॥

कही पिण्डता देवी शाख, हैं सहस्र इकहत्तर भाख।
अरु दस लाख सहस चौवीस, दिव्य जोषिता रूप गरीम ।८०॥
पार्श्व वान हैं त्रिविध हि देव, गीत नृत्य कर तुम पद सेव।
प्रथम पचीस दुनी पंचास, तृतिय परिधि शत ज्ञान प्रकाश ॥८१॥
सबमें यह वर्धना शची, वसुंधरा नामाङ्कित खची।
जिनवर पूजामें लवलीन, क्षायिक समकित बहु भव हीन ॥८२॥
ललित वचन है लीला बन्ध, सुभग सुलच्छन सहज सुगन्ध।
शीलरूप लावण्य हि लीन, हाव भाव रस कला प्रवीन ॥८३॥
सब देविनको आयु प्रमान, पचमन पल्य कही भगवान।
विनशैं होय बहुत समुदाय, ज्यों समुद्र उठि लहर विलाय ॥८४॥
हस्ती घोड़े रथ पद एव, वृष गन्धर्व नर्तकी देव।
सप्त अनीक ठीक यह कही, भो प्रभ भेद सुनौ कछु यही ॥८५॥
एक एकके हिह्ले देव, सातोके सातों सुन लेव।
ऋद्धि विक्रियाको विरतंत, हुकम पाय तज दैहिं तुरन्त ॥८६॥
प्रथम अनी गजराज बखान, सोहै बीस सहस परवान।
यातैं दुगुण दुगुण विस्तार, सेना सकल जानि निरधार ॥८७॥
सब दल लक्ष पचीस सुनेह, अरु चालीस सहस अधिकेह।
सेवा करैं सबै मन लाय, भक्ति सहित प्रणमैं तुम पाय ॥८८॥
निज नगरी है गिरदाकार, जोजन बीस सहस विस्तार।
कोट असी योजन उत्तंग, अट्ठाई अवगाहन रंग ॥८९॥
कनक कंगूरा है प्राकार, खाई अति गम्भीर विचार।
तोरन तुङ्ग रतन छविदाय, सब उपमा नहिं वरणी जाय ॥९०॥

चारों दिश दरवाजे चार, सौ योजन ऊंचे निरधार।
नगरी चौपथ सघनी पांत, तामें वीथी नाना भांत ॥९१॥
तामें प्रभ जिन सदन अभंग, है जोजन दोसै उत्तंग।
जोजन वीस तास विस्तार, अरु आयाम दून सुखकार ॥९२॥
यह विभूति बरणी समुदाय, और विविधको कहै बढ़ाय।
अहो नाथ तुम पुण्य अपार, सो सन्मुख पायो सुविचार ॥९३॥
दोहा—अणिमा महिमा गुण गरिम, लघिमा प्राप्ति सुनेव।
प्राकाम्यत्व जु वृद्धि वश, स्वर्ग ऋद्धि वसु एव ॥९४॥
सुरगराज लक्ष्मी विविध, संपूरण सुखदाय।
अद्भुत पुण्य सुरेश तुम, भुगतौ निज मन लाय ॥९५॥

चौपाई।

इहि प्रकार मन्त्री वच सुनै, तावत अवधिज्ञान मन गुनै।
पूरव भवमें व्रत आदरो, सो फल आप भोग यह करो ॥९६॥
जिनवर कथित धर्म मै कियौ, अष्ट कर्म विध्वंसन कियौ।
मैं पूरव तप कीनौ घोर, ध्यानाध्ययन शयासन ओर ॥९७॥
पंच परमगुरु त्रिभुवन तार, आराधे मन वच तन सार।
रतनत्रय धारो अवरुद्ध, परम भाव सो आतम शुद्ध ॥९८॥
विषय कषाय काम मन ओर, दियो जलाय ध्यानके जोर।
सही परीषह दो अरु वीस, तिनकी विजय करी अवनीश ॥९९॥
दश लक्षणी धर्म सुखदाय, मैं पूरव कीनौ मन लाय।
ता फल स्वर्ग सोलहें ठाम, राज्य विभूति भई निज धाम ॥१००॥

१—अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्व वशित्व चाष्टसिद्धयः॥ —अमरकोश।

धर्म समान सु बांधव जोय, तीन लोकमें और न कोय।
भवसागरमें रक्षक धर्म, करै धर्म सरवारथ शर्म ॥१०१॥
धर्म जीवको सुगति सिधार, धर्म पाप अरि नाशनहार।
स्वर्ग मुक्तिको दायक धर्म, अरु जगको मेटन सब भर्म ॥१०२॥
ऐसी जान धर्म नित करै, मिथ्या मत सब ही परिहरै।
करै जु कोटि और आचार, धर्म समान न पूरै सार ॥१०३॥
दर्शन शुद्ध अर्थ अरु काम, श्री जिनवर वन्दे सुखधाम।
अरु तिनको पूजै गुण रूप, होय धरमकी सिद्धि अनूप ॥१०४॥
यह विचार उठ ठाड़ौ भयौ, देविन सहित वापिका गयौ।
सदा शाश्वती अति गम्भीर, मानों क्षीरोदधिको नीर ॥१०५॥
अमृत जल परिपूरण जोय, घटै बढ़ै कछु नाहीं सोय।
फाटिक मणिमय पैंड़ीं सार, सब बंधाव रतनन निरधार ॥१०६॥
तहँ सुरपति कीनौ असनान, पहरै भूषण वसन महान।
देविन सहित गयौ फिर तहां, आकृत्रिम जिन मन्दिर जहां ॥१०७॥
सौ जोजन दीरघ पहिचान, अरु विस्तार पचास प्रमान।
पचहत्तर जोजनसु उतंग, जोजन आठ द्वार मन रंग ॥१०८॥
तिनमें प्रतिमा सौ अरु आठ, काया धनुष पांचसै ठाठ।
वसु प्रतिहारज मण्डित ईश, वाणी खिरै परम निशदीस ॥१०९॥
नमस्कार कीनौ हरि जाय, तुम भगवंत परम सुखदाय।
तुम विन सदा जीव दुख सहै, तुम विन कौन मोक्षपद गहै ११०॥
तुम विन भटकै भवि संसार, तुम विन और कौन आधार।
भो जिनेश तुम दीनदयाल, तुम विन गहै कुगतिको जाल ॥१११॥

यह विधि थुति कीनी अधिकाय, बैठौ जिनकोठा चित लाय।
बहु प्रकार पूजा विस्तरी, अष्ट द्रव्य लै आगे धरी ॥११२॥
उठकै बहुरि नम्यौं जिन पाय, वार वार भुवि शीस लगाय।
ताथै फिर नर लोक हि आय, बंदै तीर्थंकर मुनिराय ॥११३॥
नमस्कार कर बैठो तहां, मनमें गुनै पंच पद महा।
तत्त्व पदारथ भेद उतंग, सुनै धर्म सूचक सरवंग ॥११४॥
तहँ तैं उठि निज थानक आय, सब विभूति देखी मन लाय।
जहां सभा मंडप निरभंग, दिपै चारहू दिशा उतंग ॥११५॥
सो रतनन कर खचित महान, देखत लाजैं कोटक भान।
आगे मानस्तम्भ विशाल, मानी मान हरैं तत्काल ॥११६॥
दश विध सभा जहां सुखदाय, बैठे सबै देव मन लाय।
ताके मध्य जु गिरधाकार, रत्नमयी सिंहासन सार ॥११७॥
तापै बैठ्यो इन्द्र पुनीत, सकल अप्सरा गावैं गीत।
सुर गन्धर्व नचैं बहु वेष, दुख चिन्ता व्यापै नहि लेश ॥११८॥
सबको देय धर्म उपदेश, होय धर्म सों मोख महेश।
धर्म विना पावै दुख कूप, लहै धर्म सों सुक्ख सरूप ॥११९॥
यह प्रकार सुख भुगतै घनै, सो सब ही विध कहत न बनै।
सो है तन सम चतुर संठान, वपु वैक्रिय सो छिन छिन ठान ॥१२०॥
अस्थि चर्म मल मूत्र न कोय, शुक्र रुधिर अरु स्वेद न होय।
ये ही सप्त धातु नहि अंग, निद्रा रहित नैन निरभंग ॥१२१॥
षट नारककी अवनि प्रचण्ड, वस्तु चराचर देखि अखण्ड।
तितनी धरै विक्रिया सोय, बाइस सागर आयु जो होय ॥१२२॥

वरष सहस बाइस परजंत, मनसाहार लेय गुनवंत।
जब बीतें एकादश मास, तब सुगन्धमय लेय उसास ॥१२३॥
कबहूं सुनै गीत रसवान, कबहूं देखे नृत्य महान।
कबहूं वन क्रीड़ाको जाय, इहि विध भोग करै समुदाय ॥१२४॥
तीर्थंकर कल्याणक पंच, तत्पर तहां जाय मन संच।
शेष केवली मुक्ति महेश, दो कल्याणक करे सुरेश ॥१२५॥
मेरु कुलाचल जिनगृह जहां, भाव सहित हरि बन्दै तहां।
द्वीप समुद्र असंख्य मझार, मन इच्छाधर करै विहार ॥१२६॥
पूजै श्री जिनवरके पाय, बंदै निज कर शीस लगाय।
करै महोत्सव तहँ अधिकाय, बांधै त्रिविध धर्म सुरराय ॥१२७॥
इहि विध भुगतैं परमानन्द, सुख सागरमें सदा सुरन्द।
सकल देव मिलि सेवा करैं, आज्ञा विना न कहुं पग धरैं ॥१२८॥
दोहा—स्वर्ग लोककी संपदा, वरणन है अधिकार।
कही किमपि लघु रूपमें, जानें जाननहार ॥१२९॥

गीतिका।

यह भांति वृष परिपाक करकें, सुरग राज सो पाइयौ।
तहँ भई पूरण विभव सब विधि, दिव्य भोग कराइयौ ॥
यह जान भविजन भजहु धर्म हि, धरम एक सहाय है।
धरम बहु भवहरण जियको, धरम शिव सुखदाय है ॥१३०॥

इति कविरत्न श्री नवलशाहजी विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमें नन्दनृपति-तप और अच्युतेन्द्रकी विभूतिका वर्णन करनेवाला छठवां अधिकार-पूर्ण हुआ।

सप्तम अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा—विघनहरन आनँद करन, सेवैं त्रिजगत पाय।
वन्दौं पारस पद कमल, भवभवमें सुखदाय॥ १॥
कहौं वीर जिनराजको, आगे चरित रसाल।
पंचकल्याणक विविध विधि, मिथ्यातम खय काल॥ २॥

चौपाई।

याही जम्बूद्वीप महान, जोजन लाख तास परवान।
वज्रकोट है गिरदाकार, वसु जोजन अवगाहन धार॥ ३॥
तीन लाख सोलह हज्जार, दोसै सत्ताईस विचार।
इतनै जोजन है परवान, ऊपर कोश तीन पहिचान॥ ४॥
धनुष एकसै अट्ठाईस, साढ़े तेरह अंगुल दीस।
यह परिधीको सब विस्तार, बेढ्यौ जम्बूद्वीप सम्हार॥ ५॥
लवण समुद्र बहै चहुँओर, जोजन लाख दोय सर वोर।
बड़वानल तहँ अधिक प्रचण्ड, बड़े नीर सोखै नखण्ड॥ ६॥
चहुं दिश चार पैठवा जान, विदिशा चारों मध्य प्रमान।
सवा सवासै अन्तर ओर, एक सहस वसु हैं सब जोर॥ ७॥
जलचर जीव अनेक प्रकार, पीवन जोग नहीं जल खार।
द्वीपहि मध्य परम परधान, मेरु सुदर्शन शोभावान॥ ८॥
जोजन लाखजु महा उतंग, स्थूल सहस दस मूल अभंग।
ताकी रचना सुनो अनन्द, एक सहस जोजनको कन्द॥ ९॥
तापर भद्रसाल वनसार, तहँ जिन भवन अकृत्रिम सार।

विदिशा चार चार गजदन्त, नील निषध पर्वत लौं अन्त ॥१०॥
अति उतंग कंचन सम पगे, तिनपे इक इक जिनगृह लगे।
वन सब शोभित नाना भांति, कल्पद्रुमकी सघनी पांति ॥११॥
कुरुद्वय दक्षिण उत्तर दोय, जम्बू शाल्मली अवलोय।
इक इक तरुकी शाखा चार, चारों दिश लीजे अवधार ॥१२॥
पूरव शाखा जिनगृह वसै, सदा सासुते हिममय लसै।
तहँ तैं पँच शत योजन जान, नन्दन वन सो कहो बखान ॥१३॥
चार चैत्यालय वनमें सही, रचना तास पूर्ववत् कही।
तहँ तैं साढ़े बासट सहस, है उतंग जोजन सौमनस ॥१४॥
तहां भवन जिन चार मनोग, पूरववत् सामग्री जोग।
तहं तैं जोजन सहस छतीस, पाण्डकवन गिरीन्द्रके शीस ॥१५॥
पूरव वत चैत्यालय चार, कंचन मय चारौं दिश चार।
ताके मध्य चूलिका दीस, मुकुट सदृश जोजन चालीस ॥१६॥
बारह जोजन मूल विचार, आठ मध्य अर ऊरध चार।
ताके ऊपर जो सुर थान, वालांतर है ऋतुक विमान ॥१७॥
अब दक्षिण उत्तर विस्तार, जम्बूद्वीप हि भाग विचार।
*इकसै नव्वै कीजै नेत्र, एक भागको भरतहि क्षेत्र ॥१८॥

---

*जम्बूद्वीप दच्छिन उत्तर लाख जोजनकौं, भाग एकसौ नव्वे एक भरत भाइए।
दोय हिमवन सैल चारि हेमवत खेत, महा हिमवन आठसो लै हरि गाइए॥
बत्तीस निषध ए तिरेसठ उव त्रेसठ बीचमें विदेह भाग चौसठ बताइए।
भाग पांचसै छबीस कला छह उन्नीसकी, अठत्तर चैत्यालय सदा सीस नवाइए॥
चरचाशतक–७०।

सो कहिये जोजन सौ पांच, ऊपर छब्बिस हिय धर सांच।
कला षष्ट अधिकी है और, कर उनीस इक जोजन ठौर ॥१९॥
लाओ तीन भाग परवान, धनुष अढ़ाईसे कर हान।
हिमवन गिरिके पास जु सोय, पूरब अपरदिशा अवलोय ॥२०॥
धनुपाकार ताहि अवलोय, छहूं खण्ड मण्डित है सोय।
पञ्च म्लेच्छ आर्य इक जान, क्षेत्रहि मधि राजत गिरि मान ॥२१॥
षट जोजन तस कन्द सगीस, ऊंचो है जोजन पच्चीस।
अरु पचास विस्तार जु होय, तापर इक जिनगृह अवलोय ॥२२॥
नव जु कूट है सबरे जोय पूरब कूट हि उतकिट सोय।
अष्ट कूटपर लघु जिन गेह, प्रतिमा एक विराजै तेह ॥२३॥
दश योजन पर श्रेणी दोय, पुर पच्चास दक्षिण दिश सोय।
उत्तर नगरी साठ सु जोड़, एक एक प्रति गांव जु कोड़ ॥२४॥
दोय भाग हिमवत गिरि सार, कन्द पचीस हि जोजन धार।
सौ जोजन उन्नत परवान, अन्तभाग छह लम्बो जान ॥२५॥
.. .. ।
तामें पाव कोश घटि मान, तापर इक जिन भवन महान ॥२६॥
तापर पद्म दह इक रूर, दश जोजन गहरा जल पूर।
लंबो है जोजन हज्जार, अरु शत पांच जास विस्तार ॥२७॥
इक योजन तहँ कमल प्रकाश, तापर श्री देवीको वास।
सोलह सहस तास परिवार, थिति इक पल्य शचीवत सार ॥२८॥
तिनतें निकसीं सरिता तीन, ताको भेद सुनो परवीन।

१—विजयार्द्ध पर्वत, २—मृत्न।

नदी मूल है देवी तेह, तिन नामांकित सरिता तेह ॥२९॥
प्रथम हि गङ्गा सरतै चली, मूल सवा छह जोजन भली।
भरतक्षेत्र विजयारध कोर, पूरव मिली लवणदधि जोर ॥३०॥
साढ़े बासट जोजन ताहि, जलचर जीव न उपजै माहि।
गाले जल वत जलहु विचार, चौदा सहस तास परिवार ॥३१॥
दूजी सिन्धू तिहिवत चली, गुफा फोरि पच्छिम दिशि मिली।
तीजी नदी रोहिता मूल, साढे बारह जोजन फूल ॥३२॥
क्षेत्र हेमवतमें हो आय, पूरव मिली उदधिको जाय।
जोजन शत पचीस विस्तार, सहस अठाइस है परिवार ॥३३॥
भाग चार क्षेत्र हि अवधार, भोगभूमि लग सब व्योहार।
अन्तर लेवो बारह भाग, तामें आध कोश घटि लाग ॥३४॥
मह हिमवन छठ भाग विथार, चौवीस लम्बौ कोश हि धार।
कन्द पचास हि जोजन होय, अरु उन्नत जोजन सौ दोय ॥३४॥
एक भवन जिन तिनपर लही, अष्टोत्तर शत प्रतिमा सही।
महापद्म द्रह तापर लह्यो, जोजन सहस दु लँबौ[1] कह्यो ॥३५॥
सहस एकको चँउरो[2] बनो, वीस गहीर कमल द्वै तनो।
ह्री ही देवी तहँ वास, प्रथम हिवत सामग्री जास ॥३६॥
तहँ तै निकसी सरिता दोय, रोहित क्षेत्र हेमवत होय।
पश्चिम मिली उदधिके द्वार, ताहि रोहिता वत सब चारँ[3] ॥३७॥

१–लम्बा, २–चौडा 'लांबौ' 'चँउरो' ये दोनो शब्द बुन्देलखण्डमे अधिकतर बोले जाते है, ३–गमन-बहाव।

हरिकान्ता हरि क्षेत्रहि दीस, मूल कही जोजन पच्चीस।
पूरब मिली लवणदधि द्वार, तहँ अढ़ाईसौ है विस्तार ॥३८॥
छप्पन सहस कह्यौ परिवार, निर्मल जल गालै व्रतधार।
सोलह भाग क्षेत्र विस्तार, भोगभूमि मध्यम सुविचार ॥३९॥
लांबो भाग सु अड़तालीक, दोय कोश घट निषध नजीकै।
बत्तिस भाग निषध गिरिथाइ, जोजन घट छ्यानव लव लाइ ॥४०॥
सो जोजन तस कन्द सम्हार, उन्नत है जोजन सो चार।
तापर इक जिनभवन मनोग, वसु प्रतिहारज प्रतिमा जोग॥४१॥
द्रह तिगिंछ सोहै गिरिशीस, सो गहरो जोजन चालीस।
लंबो चार सहस पुन कह्यौ, दोय सहसको चौरो लह्यौ ॥४२॥
जोजन चार कमल तहँ बसै, तामें धृतिदेवी तहँ लसै।
प्रथमहि व्रत सामग्री जोय, यहँतैं निकसी सरिता दोय ॥४३॥
हरिकान्ता हरिक्षेत्र मझार, पश्चिम मिली उदधिके द्वार।
हरिकान्ता वत जानौ सही, अब सीता मुनि जिहि विधि कही॥४४॥
मूल पचासह जोजन सन्त, मेरु निकट कौरो गजदन्त।
पूर्व विदेह होय दधि मिली, तहां पांचसै जोजन रली ॥४५॥
सहस चुरासी सब परिवार, जलचर जीव न तिष्ठैं सार।
अर्ध मेरु लौ बत्तिस भाग, भोग भूमि उत्कृष्ट सुहाग ॥४६॥
अर्धमेरु तें नील प्रजन्त, बत्तिस भाग भोग भूसंत।
मेरु सहित सीता सीतोद, लम्बाई सब मध्य प्रमोद ॥४७॥
भाग एकसै नव्वै होय, जोजन लक्ष पूर्व पर सोय।

१—पास—निकट।

भाग बत्तीस नील विस्तार, तापर इक जिनभवन विचार ॥४८॥
निषध समान भेद सब कह्यौ, मध्य केशरी द्रह तहँ लह्यौ।
सो तिगिंछ वत कहिये तास, देवी कीर्ति कमलमें वास ॥४९॥
तहँतै निकसि तरंगनि दोय, सीतोदा पश्चिम दिश जोय।
मेरु निकट गजदन्त विदार, सब रचना सीतावत धार ॥५०॥
नारी सरिता रम्यक क्षेत्र, पूरण मिली समुद्रहि जेत्र[1]।
मध्यम भोगभूमि यह सही, षोडश भाग विथारे[2] जु मही ॥५१॥
पर्वत रुक्म भाग बसु लीन, जिन चैत्यालय एक प्रवीन।
महापुण्डरीक द्रह सीस, तामें कमल प्रफुल्लित दीस ॥५२॥
तहां बुद्धि देवीको वास, नदी दोय निकसीं सर जास।
नरकान्ता रम्यक मधि होय, पश्चिम मिली समुद्रहि सोय ॥५३॥
सुवर्णकुला सरिता तसु रली, हैरण्य हि पूरबको मिली।
चार भाग क्षेत्र हि विस्तार, भोगभूमि लग जुगल विचार ॥५४॥
शिखरिन पर्वत भाग जु होइ, तहां एक श्री जिनगृह सोइ।
पुण्डरीक द्रह तापर लसै, लक्ष्मीदेवी कमलहि बसै ॥५५॥
तीन नदी निकसी सु रैमन्य[3], पछिमै रूपकूला हैरन्य।
रक्ता पुनि ऐरावत जाय, पूरब मिली लवणदधि धाय ॥५६॥
रक्तोदा पश्चिम दिश कही, क्षेत्र भाग इक जानो सही।
ताके मध्य रजत गिरि एक, तापर जिन चैत्यालय एक ॥५७॥
जैसो दक्षिण दिश व्यवहार, मेरु हि तैसो उत्तर धार।

१–आकर। २–विस्तार, ३–सुरमणीय–अत्यन्त सुन्दर अथवा सुरमन्य–देवोंको प्रिय।

हेमवरन शिखिरन हिमवन्न, रजत रुक्मि अर महाहिवन्न¹ ॥५८॥
नील नील मतिकी उनहार, निषध महा कंचनवत धार।
वज्रकोट ढिग कुल गिरि छोड़, तहँ कुभोग भू चौविस जोड़ ॥५९॥
अब पूरब पश्चिम विस्तार, नील निषधके बीच मझार।
कोट हेठ पूरब दिश जात, देवारण्य सुवन विख्यात ॥६०॥
जोजन दोय सहस परवान, नवसै बाइस ऊपर जान।
पुनि विदेह इक सोहै तहां, दोय सहस जोजन पर जहां ॥६१॥
ऊपर दोसै बारह जोय, साढ़ेतीन कोश जुत सोय।
तामें सरिता दोय पुनीत, गङ्गा सिन्धूवत सब रीत ॥६२॥
निषध निकट हृदसैं निकसाय, जाय मिली सीता सरमाय²।
षटखण्डहि मण्डित परवान, तामधि इक विजयारध जान ॥६३॥
ताही पै जिनभवन अकृत्त³, काल चतुर्थ हि सदा प्रवृत्त।
पुनि वछार पर्वत पहिचान, नीलहि तैं सीता लग मान ॥६४॥
पंच सया जोजन विस्तार, तापै जिनगृह एक सवार।
अब विदेह दूजी पहिचान, पूरब वत विधि लीजो जान ॥६५॥
फेर विभंगा सरिता एक, कही सवासै जोजन टेक।
रोहित वत सामग्री भली, निकस नील द्रह सीता मिली ॥६६॥
तृतिय विदेह पूर्ववत जोय, द्वितिय वछार प्रथम सम होय।
तुर्य विदेह जान अब सही, द्वितिय विभंगा सरिता सही ॥६७॥
फेर विदेह पंचमो जान, गिरि वछार तीजो पहिचान।
छठी विदेह जान अब और, तृतिय विभंगा सरिता दौर⁴ ॥६८॥

१–महा हिमवन्के समान। २–सीता नदीमें, ३–अकृत्रिम। ४–पाचवों।

विदेह सप्तमी थान गनेह, गिरि वछार तुर्य अवलेह।
विदेह अष्टमी तहंतै लही, दक्षिण तट सब वर्णन यही ॥६९॥
एही विधि उत्तर तट जान, वेसु विदेह तहँ शोभा थान।
तहँतैं भद्रशाल वन सार, है जोजन बावीस हजार ॥७०॥
ताकी रचना है बहु घेर, पंच सहस लहि आधो मेर।
यह पूरब दिश शोभा जान, जोजन सहस पचास प्रवान ॥७१॥
ताही विधि पश्चिम विरतंत, भूतारण्य वनहिलौं अन्त।
सब विदेह बत्तीस बखान, तिहितै है विजयारध थान ॥७२॥
अर षोडश वक्षार महान, सबपै इक इक जिनगृह जान।
ए पर्वत इकसठ परधान, सब जिनभवन अठत्तर थान ॥७३॥
अब सामान्य हि भूधर दीस, वृषभाचल है सब चौंतीस।
हैं म्लेच्छ खण्डके मांहि, तहां चक्रपति नाम लिखाहिं ॥७४॥
मेरु निकट हैं दिग्गज आठ, दीसत कंचन गिरिको ठाठ।
सीता सोतादा तट तेह, कंचन वरण जान सब लेह ॥७५॥
जघन्य भोगभूमिमें कहे, नान गिरीश चार सर दहे।
चार जमुकगिरि कुरु भू मांहि, नील निषधके निकट जु आंहि ॥७६॥
ए परवत सब ही वरणये, ग्यारा अधिक तीनसै भये।
सर वर सब इकसै छत्तीस, तिनकी संख्या सुन अवनीस ॥७७॥
पद्म आदि षट भूधर शीस, सीता सीतोदा मन वीस।
नील निकट अड़तीस जु और, तितनै ही निषद्ध नगै ठौर ॥७८॥
उपसमुद्र सब हैं चौतीस, आरज-खंड हि इक इक दीस।

१—आठ विदेह, १—पर्वतपर।

महा नदी नव्वै सब कही, गङ्गा आदि चतुर्दश लही ॥७९॥
चौंसठ सबहि विदेह मझार, बारह विपुल विभंगा सार।
सत्रह लाख सु है परिवार, ऊपर सहस बानवै धार ॥८०॥
पर्वत नदी कुण्ड लघु बनैं, सो सब भेद कहत नहि बनैं।
[* जथा बुद्धि कुछ वरणन कहौ, सुन बुध हियमें सरधा लहौ] ॥८१॥
दोहा—महिमा जम्बूद्वीपकी, को कवि वरननहार।
कही किमपि संक्षेप विधि, जिन मतके अनुसार ॥८२॥

चौपाई।

अब यह आरजखण्ड महान, देश सहस बत्तीस प्रमान।
तामें दक्षिण दिश गुणमाल, महा विदेहा देश रसाल ॥८३॥
सो विदेह वत है समुदाय, सब शोभा ता कही न जाय।
कोई तप फलके परभाय, उपजैं वर विदेहमें जाय ॥८४॥
उत्तम पद तहँ पावे कोई, सार्थ नाम शिवगामी होई।
कोई षोडश भावन भाय, बांधे तीर्थकर पद थाय ॥८५॥
कोई पंचोत्तर पद लहैं, निज समता आतम चित गहैं।
कोई दान सुपात्रहि देइ, ता फल भोगभूमिपद लेइ ॥८६॥
कोई धर्म तनें परभाव, लहें इन्द्र पद उत्तम ठाव।
जहां खान भूम मन रंग, पद पद पर दीसह सरवंग ॥८७॥
नरपति सुरपति भवन महेश, वंदे आय केवली शेष।
वन परवत गिरि गुफा मसान, तहां देइँ मुनि उत्तम ध्यान ॥८८॥

---

* यह पंक्ति मूल ग्रन्थमें नहीं है। पादपूर्तिके लिये ऊपरसे जोड़ दिया है।

विहरै जातिसमूह सम चेत, धर्मबुद्धिके कारण हेत।
चार प्रकार संघ सुखदाय, संबोधैं भविजन मन लाय ॥८९॥
देश तनों वरनन बहु गेह, कहत ग्रन्थ बाढ़ै अति केह।
ताके मध्य नाभिवत जान, कुण्डलपुर नगरी सुख खान ॥९०॥
तुंग कोट तसु गोपुर चार, खाई अति गंभीर विचार।
रिपुकुल तहां न पावे जान, वर्णन साकेता परमान ॥९१॥
तीर्थंकर कल्याणक जान, हूहैं सही यहां गुण खान।
यही जान सुर यात्रा करैं, परमोत्सव निज हिरदै धरैं ॥९२॥
अति उन्नत जहँ जिन आगार, हेम रतनमय रहित विकार।
बहु प्रकार दीसै निरभंग, सेवैं बुधजन निज मन रंग ॥९३॥
बाद् साल जयनन्दन मान, गीत-नृत्य शुभ वादहि ठान।
ताहीमें जिनबिम्ब मनोग, हेमवरण उपकरण संजोग ॥९४॥
ते वंदें भविजन गुणधाम, दिव्यरूप कोमल परिणाम।
मनों देवगण उत्तम एह, पूजा करैं रहित सन्देह ॥९५॥
कोई निज गृह द्वारहिं खड़े, वारंवार भक्ति मन जड़े।
देखि जती पड़गाहन करैं, मद मत्सर तनतै परिहरैं ॥९६॥
देइ सुपात्रहिं उत्तम दान, रतनवृष्टि सुर करहिं निदान।
तिनको देखि मध्य नर कोई, दान देनमें तत्पर होई ॥९७॥
तापुर मन्दिर सघनी पांत, तुंग ध्वजा दीसैं बहु भांत।
बांछैं इन्द्र लेन अवतार, जाते लहैं उच्च पद सार ॥९८॥
पुरजन बहु धरमी दातार, व्रत तें शूर शील गुणधार।

१—मुनियोंका समूह, २—अयोध्या।

जिनपति ज्ञानवंत गुण पाय, भक्ति सहित सेवैं सुखदाय ॥९९॥
मारग नीति गहै परवीन, हित मित वचन कहै सुख लीन।
बुद्धिवंत सब रहित विकार, अरि-मिथ्यामतके क्षयकार ॥१००॥
दिव्यरूप नारी नर सबै, कोमल कमलगात मन फबै।
तुंग सदन निवसैं मतिमान, मानों देव सहित वीमान ॥१०१॥

राजावर्णन।

पुरपति महीपाल मतिवान, श्री सिद्धारथ नाम महान।
काश्यप गोत्र परम सुख वास, नाथवंश नभ किरण प्रकाश ॥१०२॥
तीन ज्ञानधारी बुधवन्त, तीन मार्गरत दुर्गति हंत।
जिनवर भक्ति महा दातार, दिव्य सुलक्षण मण्डित सार ॥१०३॥
कर्म महा अरिनाशन वीर, शुभ दृष्टी वर वचन गहीर।
कला ज्ञान चातुर्य विवेक, धर्मवंत गुणसहित अनेक ॥१०४॥
शीलव्रती शुभ ध्यान प्रवीन, भावनादिमें निशदिन लीन।
भूचर खेचर व्यन्तर सबै, नृपके चरण कमलको नबै ॥१०५॥
दीप्ति कान्ति तन अधिक प्रताप, दिव्यरूप सूरज अविलाप।
नियमवंत गुण ज्ञापक सन्त, एक धर्मको मूल महंत ॥१०६॥

राज्ञीवर्णन।

दोहा—तिनहि भवन देवी महा, प्रियकारिणि वर नार।
गुण समूह उपमा रहित, जग प्रिय कर्ता सार ॥१०७॥
कला ज्ञान चातुर्य अति, यथा भारती आप।
त्रिशला त्रस रक्षाकरण, रूप अधिक परताप ॥१०८॥

राणी रूपवर्णन।

सवैया तेईसा।

अम्वुज सौं जुग पाय बनें, नख देख नखत्त[1] भयौ भय भारी।
नूपुरकी झनकार सुनें, दग शोर भयौ दशहू दिश भारी॥
कंदल थंभ बनें जुग जंघ, सुचाल चले गजकी पिय प्यारी।
क्षीन बनो कटि केहरि सौ, तन दामिनि होय रही लज सारी॥१०९॥
नाभि निवौरियसी[2] निकसी, पटहावत पेट सुकंचन धारी।
काम कपिच्छ कियो पट अन्तर, शील सुधीर धरे अविकारी॥
भूषन बारह भांतिनके अँत, कण्ठमें ज्योति लसे अधिकारी।
देखत सूरज-चन्द्र छिपे, मुख दाडिम दंत महा छविकारी॥११०॥
कर्ण अभर्ण दिपैं अति सुन्दर, नाक सुआ सम चोंच सम्हारी।
बैन कुरङ्ग[3] समान बनें, वर अष्टम इन्दु ललाट निहारी॥
मस्तक केश मनो फणिनायक[4], रूप अनूप सबै सुखकारी।
तीनहु लोक तिया नहिं तासम, निरमित सोइ सती सरदारी॥१११॥
दोहा—षट गुण रत्न निधान अति, नव निधि संपति गेह।
बहु देवी सेवा करैं, धरैं धरम सों नेह॥११२॥
कुण्डलपुर अमरावती, नृप सुरपति सुखदाय।
आप मनौं इन्द्रायणी, रहै भूमि अव छाय॥११३॥

चौपाई।

दंपति अधिक पुण्य परताप, उद्यत मनहु भान जनु आप।
जगत भोग उपभोग अनेक, भुगतै एक धरमसो टेक॥११४॥

१—नक्षत्र। २—अनारके दानेके समान। ३—मृग। ४—महासर्प।

इहि विधि नृप निवसै निजथान, और कथा अब सुनहु निदान।
धर्म तरूवर पूरण भयौ, सो फल आनि परापत भयौ ॥११५॥

नगरीरचनाके लिये इन्द्रका कुबेरको आज्ञा देना।

पद्धडि छन्द।

सौधर्म इन्द्र इमि कहउ ऐन, तुम धनदे सुनहु मुझ तनै बैन।
अच्युत सुरेश सो रहैं नाम, तसु आयु रही छह मास जाम ॥११६॥
है भरत खेत कुंडलपुरेश, सिद्धारथ नृप मन्दिर महेश।
श्री वर्धमान अन्तिम जिनेश, तिनके सुत हू है जग महेश ॥११७॥
तहँ रचउ नग्र नाना प्रकार, अर करहु रत्नवर्षा अपार।
सब जीव ठिक्क तावद् एव, निज अन्य सुक्ख दाइक तेव ॥११८॥
आदेश सुनौ जब जक्षै ईश, लै हुकुम तुरत नायो जु शीस।
मनभाव दुगुन नहि किय विलंब, नर लोक आय पहुंच्यौ सुलंब ।११९

नगरी रचना वर्णन।

नव बारह जोजन रचउ नग्र, सब हेमसदॅन मनिचित्र अग्र।
बहु कोट जु गिरदाकार जोइ, चहुंदिश दरवाजे चार सोइ ॥१२०॥
तहँ गोपुरकी छबि अधिक जास, खाई गँभीर जलभरी तास।
बन-उपवनकी शोभा अपार, मो बरनत होय सु अति अबार ॥१२१॥
जानें न राव अरु रंक कोइ, जयकार शब्द चहुँ ओर होइ।
नृपभवन रत्नवर्षा करंत, मानौं जलधार उलंघ पंत ॥१२२॥
नित प्रति ही साढ़ेतीन कोट, षट मास अग्र नव अंत जोड़।
उद्योत ताहि लाजै सुभान, उपमा अनूप बरनै महान ॥१२३॥

१-२-कुबेर, ३-सुवर्णके बने हुए घर, ४-मणियोंसे चित्र विचित्र।

गृह मंदिर जित तित रत्नराश, दुख विपति दई पुरतें निकाश।
नृप आंगन कल्पद्रुम विशाल, तहँ रत्नवृष्टि वरसै रसाल ॥१२४॥
वहँ फैल रही दशदिशि सुगंध, बहु पुरजन मन बाढ्यौ अनंद।
नरनार नगर निज सदन देख, धन कंचन पूरन अति विशेख॥१२५॥
मन विसमय धरधर सब निहार, यह कैवन पुन्य पुरमें विचार।
तब कहिय भव्य आश्चर्य कोय, अंतिम जिन यहँ अवतार होय॥१२६॥
कीनो कुबेरपुरमें प्रकाश, उन रचे हेम ऊचे अवास।
जिनराज गर्भ आगमन जान, इन कियौ महोत्सव सुक्ख खान।१२७॥
मिथ्या मत रत जे सबै मूढ़, जिनधर्म ठिक्कता गही गूढ़।
जैसे रजनी तम उदित भान, नसि जाय एक छिनमें महान ॥१२८॥

चौपाई।

धर्मरत्न सब सुख करतार, जगमें प्रगट करत भवपार।
धर्म सुफल नहि दीसै कोय, दाइक मोख पंथ नर लोय ॥१२९॥
होइ धर्म सों पुत्र सुपुत्र, भव भव करता धर्म पवित्र।
तीर्थंकर पद प्रापत होइ, महा संपदा निज गृह जोइ ॥१३०॥
सुख सों रहें सदा जिनतात, कारज धर्म विचारैं गात।
आदि अहिंसा लक्षण लहै, पंच अणुव्रत निहचै गहै ॥१३१॥

दोहा—बहुविधि सुख सब भोगवै, नृप गुरु जन समुदाय।
छहों मास पूरन भये, धर्म करत हित जाय ॥१३२॥
महिमा श्री जिनदेवकी, तीन लोक सुखदाय।
देखत भविजन धर्मधर, निजपर सदा सहाय ॥१३३॥

१—कौन, २—उत्तमता, ३—धर्म जैसा।

सोलह स्वप्न वर्णन।

चौपाई।

एक समय रानी निजधाम, कोमल सेज करै विश्राम।
निशा पाछिले पहर निदान, सोवै सुख जुत नींद प्रमान ॥१३४॥
जग प्रसिद्ध सुपनैं निरभंग, देखे षोडश विधि सरवंग।
पुण्य पाक फल जानो सोय, धर्महि तैं भव कहा न होय ॥१३५॥
प्रथमहि गज वीख्यो[1] मद जात, ऐरावत सम उज्वल गात।
दूजें वृषभ धवल निरमला, दीसै मनों चन्द्रकी कला ॥१३६॥
रक्तवरन देखो मृगराय, अति विकराल महाभयदाय।
कमलादेवी[2] न्हवन करंत, हेम कलश ऊपर ढारंत ॥१३७॥
देखी दिव्यदामिनी[3] धार, महासुगंध पुष्पमय सार।
षोडशकला सहित शशगेह, तारागण जुत देख्यौ तेह ॥१३८॥
पुनि देख्यौ तमनाशन भान, उदयाचल ऊपर सुख खान।
कनककलश[4] अति सुन्दर दोय, रमा शीस अवलोकै सोय ॥१३९॥
जुगम मीन तहँ करत जु खेल, जल भीतर शुभ करैं जु केल।
पूरन जल कर सरवर बनौ, फूल्यो कमल जहां अति घनौ ॥१४०॥
देख्यौ सागर अति गंभीर, लहरन सों झक झोरै नीर।
फिर देख्यौ सिंहासन संत, अति उतंग मणिमय सोभंत ॥१४१॥
सुर विमान आवत आकाश, देख्यौ रतनजड़ित परकाश।
भवनपती रथ देख्यौ जोइ, पृथिवी धँसत जातु है सोइ ॥१४२॥
बहुत भांत रतननकी राश, देखी अति उद्योत प्रकाश।

१—देखा, २—लक्ष्मी, ३—माला, ४—सोनेके कलश।

अगनि शिखा पुन देखी जबै, धूम रहित बहु दीपत सबै ॥१४३॥
इहिविधि सोलह स्वप्न अनूप, जिन माता देखे भर रूप।
पाछैं गज इक शोभावंत, निज मुखमें देख्यौ प्रविशंत ॥१४४॥
दोहा—इहि अन्तर निशितम गयौ, भयौ धरन उद्योत।
पठत पाठ विधि आदरी, चढ़ै धरमके पोत ॥१४५॥

चौपाई।

उठि प्रभात भवि समतावंत, सामायिक विधि करत महंत।
कर्म महा अरि चूरन करै, जियपद जाप हियेमें धरै ॥१४६॥
कोई उठै शयन सें सोय, पंच परम पद सुमिरैं जोय।
धर्म ध्यान धारैं निज अंग, कर्म शत्रु नासैं सरवंग ॥१४७॥
कोई भविजन धीरजवंत, धरैं ध्यान व्युतसर्ग महंत।
इत्यादिक आरम्भ सुकर्म, करै प्रभात ध्यान यौ धर्म ॥१४८॥
जिन सूरज जब उदय कराय, खग घूका[1] सम दुर्मत जाय।
चोर कुलिंगी तुरत पलाइ, अति भयभीत न धीर धराइ ॥१४९॥
ज्यों रजनीश कला बहु सजै, भानुगेहमें प्रभुता लजै।
जिन वच किरण प्रकट जब भयौ, तम विकल्प सब मनको गयौ ॥
शुभ मारग शुभ वचन सुध्यान, शुभ पदार्थ किरणा जिन भान।
धर्म कमल विकसावनहार, पाप कुमुदिनी सकुचनहार ॥१५१॥
यहि अन्तर जिन माता जान, उठी प्रातमुख सिन्धु समान।
धर्म ध्यान साधौ बहु भेद, सामायिक दीनो तज खेद ॥१५२॥
मज्जन न्हवन कियो तत्काल, आभूषण पहिरे सु विशाल।
सखिन सहित फिर पहुँची तहां, सभामध्य नृप बैठ्यो जहां ॥१५३॥

१—उलूक पक्षीके समान।

रानीद्वारा राजासे स्वप्नोंका फल पूंछना और राजाद्वारा स्वप्नोका फल बतलाना।

नृप आवत देखी वर नार, मधुर वचन बोले हितकार।
अति अस्नेह बुलाई तास, दियौ अर्ध सिंहासन पास ॥१५४॥
हर्षवंत बोली करजोर, मो वच सुन स्वामी सुख मोर।
आज रैनके पीछे जाम[1], देखे षोडश स्वप्न सु धाम ॥१५५॥
हस्ती आदि अगिनि पर्यन्त, यह आश्चर्य भयो मो कंत।
जुदे जुदे फल कहिये तास, जातें मनको संशय नाश ॥१५६॥
तीन ज्ञान वर मनहि विचार, तब नृप बोल्यौ सुन वर नार।
एकचित्त ह्वै फल सुन येह, मैं भाषत हों सब सुख एह ॥१५७॥

पद्धरि छन्द।

प्रथमहि गज सपनो फल सु एह, तीर्थंकर सुत तुम उर वसेह।
है वृषभ तनौं फल सुक्ख खान, जग ज्येष्ठ धर्म रथ धुर प्रधान ॥१५८
अब सिंह सुपन खय करत कर्म, ह्वै है अनन्त वीरज सुशर्म।
लक्ष्मी भिषेक फल मेरु शीस, अस्थापन कर है अमर ईश ॥१५९॥
अरु पहुप दाम फल सुनहु तेह, अति ह्वै है सहज सुगंध देह।
शशि पूरन देख्यौ तुम विशाल, सो धर्म सुधा वाणी रसाल ॥१६०॥
रवि सुपनतनों फल इहि प्रकार, अज्ञान महातम हरनहार।
जुग कुंभ तनों फल है विशाल, सो ज्ञान ध्यान अमृत रसाल। १६१
जुग मीन सुपन फल इहि प्रमान, संपूरन सुखकर्ता महान।
सर कमल सहित फल सुनहु जोग, लक्षण व्यंजन जुत तन मनोग १६२

१—याम-पहर।

है सिन्धु सुपनको फल महंत, सुन केवलज्ञान प्रकाशवंत।
सिंहासन फल इमि कहत राय, त्रय जगत रमा सेवैं सुपाय॥१६३॥
अब सुर विमान फल सुक्खदाय, सुरलोक छोड़ तुम गर्भ आय।
नागेन्द्र भवन फल होइ जास, सो मति श्रुत अवधि त्रिज्ञान भास॥
तुम रत्नराशि देखी विशाल, फल दर्शन ज्ञान चरित्र माल।
अब अगिन शिखा फल सुनहु एह, वसु कर्मजार शिवपुर वसेह १६५

दोहा—गज प्रवेश मुखमें कियो, सो फल अब सुन नार।
अन्तिम जिन तुम गर्भमें, लियो आय अवतार॥१६६॥
अंग अंग हरषित भई, सुने स्वप्नफल सार।
शीस नाय नृपको मुदित, मन्दिर गई सवार॥१६७॥

देवियोंके द्वारा जिनमाताकी सेवाका वर्णन।

चौपाई।

तबै प्रथम सौधर्म सुरेश, पट देविनको दिय आदेश।
पद्म आदि द्रह वासिनि मोय, आई कुंडलपुर अवलोय॥१६८॥
जिन माताके लागीं पाय, तुम सेवैं पठई सुरराय।
गर्भ शोधना कीनी आय, आज्ञा धरैं सब हि मन लाय॥१६९॥
श्री देवी श्री करै बढ़ाव, ह्री देवी लज्जासों चाव।
धृति धीरज धारै सब काज, कीर्ति बढ़ावे कीरति साज॥१७०॥
बुद्धि बुद्धिको करे अपार, लक्ष्मी लक्ष्मीको भण्डार।
प्रभ अम्बा आज्ञा चित धरी, दिन दिन प्रीति बढ़ावें खरी॥१७१॥
माता निर्मल सहज सुभाय, वे सेवैं निज कारण पाय।
फटिक समान उदर निरदोष, त्रिवली सहित हृदय सन्तोष॥१७२॥

भगवान् वर्द्धमानका-माताके गर्भमे आना।

मास अषाढ़ शुक्ल छट जान, नखत उत्तरा अन्त प्रमान।
अच्युत पति चय धर्म सनेह, प्रियकारिणि उर गर्भ धरेह ॥१७३॥
चतुर निकाय देव घर जबै, अनहद् शब्द भयो अति तबै।
कल्पवासि घर घंटा बजे, सिंहनाद ज्योतिष गृह गजे ॥१७४॥
भवनपती शंखध्वनि भई, व्यन्तर धाम भेरि गह गई।
बहु विध भयो अचर्ज अनेक, सुरपति आसन कंपी टेक ॥१७५॥
तीन ज्ञान धारी सुरराय, जान्यो गर्भ धर्‍यो प्रभु आय।
तबे त्रिदशपति मन हर्षियौ, आप आप बाहन चढ़ि कियौ॥१७६॥

गर्भकल्याणकके लिये देवोंका कुण्डलपुर आना।

आभूषण पहरै निज सबै, जोति दशौंदिश फैली तबै।
ध्वजा छत्र जुत सरस विमान, छाय रह्यो नभमण्डल जान॥१७७॥
जय जय शब्द करत मन लाय, आये कुंडलपुर समुदाय।
देवी देव विमान अपार, दिश दशहू रुध्यो पुर सार ॥१७८॥
राजभवन आयो सुरराय, जिनपति मात भक्ति उर लाय।
सिंहासन बैठारो राय, हेमकलश अभिषेक कराय ॥१७९॥
पूजा करी इन्द्र मन लाय, भूषण वसन सबै पहिराय।
गर्भमांहि प्रभुकी थुति कीन, भक्ति सहित बहु आनँद लीन॥१८०॥
इत्यादिक अतिशय बहु कर्यो, गर्भ महत्त्व महागुण भर्यो।
तेरम द्वीप रुचक गिरि जास, छप्पन देवीको तहँ वास॥१८१॥
ते जिनमाता सेवा काज, राखी दिक् कुमारीका साज।
प्रथम इन्द्रकी आज्ञा पॉन, रहत सदा सो अपने थान ॥१८२॥

वार वार फिर कर परणाम, गये शक्रपति निज निज धाम।
परम पुण्यको इन्द्र बढ़ाय, सो उपमा वरणी नहिं जाय ॥१८३॥

जिनमाताकी सेवाके लिये आई हुई देवियोंका कार्य वर्णन।

अब जिनमाता सेवैं पाय, देवी अपनी बुद्धि उपाय।
कोई हर्ष बढ़ावहिं अंग, कोई मुख विहसा वहिरंग ॥१८४॥
कोई नित मंजन विधि करै, कोई ले ताम्बूल जु धरै।
कोई सेज रचै छविकार, कोई पाय प्रक्षालै सार ॥१८५॥
कोई दिव्य वसन पहिराय, कोई केश समार बंधाय।
हेम रत्न आभरण जु कोय, अंग अंग पहिरावै सोय ॥१८६॥
कोई कज्जल देइ निहार, कोई तनकी करहिं समार।
रुचि आहार करावै कोइ, कोई प्रासुक जल मुख धोइ ॥१८७॥
कोई पुहुप माल गुहि देइ, कोई चन्दन खौर करेइ।
रतनचूर कोइ पूरै चौक, वहुविधि रंग करहि कोइ नौक ॥१८८॥
तुङ्गसदन जब निशतम होय, मदि दीपक उजियारै कोय।
ऐसैं सुख संधान बढ़ाय, सेवैं खड़े सपरसैं पाय ॥१८९॥
कबहूं वन क्रीड़ाको जाय, गावैं मधुर वचन समुदाय।
कबहूं नृत्य करैं सुख पाय, वाद्य कथा बहु कहै बनाय ॥१९०॥
इत्यादिक बहु करैं उपाय, ऋद्धि विक्रियाके परभाय।
जिनमाताको हर्ष बढ़ाय, करैं रंग देवी मन लाय ॥१९१॥
यह विधि निशि बासर बहु जाय, नवम मास तब लाग्यौ आय।
प्रश्न प्रकर्षण देवी करैं, माता सीख शीस पै धरैं ॥१९२॥
गूढ़ अर्थ शब्दादिक क्रिया, नाना प्रश्न करैं सुर त्रिया।

कहत पहेलो और निरोष्ठ[1], काव्य श्लोक धर्मकी गोष्ठ ॥१९३॥

प्रहेलिका वर्णन ।

महागुरुनको गुरु है कोय? जोगी त्रय जग जाहिर सोय ।
जो अतिशय मंडित चौतीस, गुण अनंत धारै जिन ईश ॥१९४॥
वचन प्रमाण कहै को माय? जग सर्वज्ञ कहावै आय ।
दोष अठारा रहित शरीर, वीतराग है जो जगहीर ॥१९५॥
सुधासिंधु कहियतु है काहि? जन्म मृत्यु विष दियो बहाहि ।
जिनवर मुख बहुज्ञान प्रकाश, सो अमृत-दुर्मत विषनाश ॥१९६ ।
ध्यायवंत बुध को जगमांहि? कौन ध्यान परमेष्ठित पाहि ।
सप्त तत्वकी श्रद्धा करै, धर्म शुक्ल जो ध्यानहि धरै ॥१९७॥
तुरत हि करनी करता कौन? पूरव कर्म खिपावै तौन ।
जो अनन्त दर्शन अरु ज्ञान, दृढ़ चारित्र धरै परवान ॥१९८
सहगामी जियको को होय? दया धर्म बांधव है दोय ।
पाप महा अरि नाशै जोय, सरव दिशा रक्षक है सोय ॥१९९॥
धर्म होय क्यों या जगमांहि? दर्शन ज्ञान चरित्र धराहि ।
व्रत अरु शील सर्व आदरै, उत्तम क्षमा आदि दश धरै ॥२००॥
धर्म तनो फल लोक मझार, होय विभूति इन्द्रपद सार ।
ए सुख लहि तीर्थंकर होय, फिर शिवपुरको पहुंचै सोय ॥२०१॥
लांछन कौन धर्मके कहे, शांतिभाव अतिरुचि लहलहे ।
निरहंकार जु रहै सदीव, शुद्ध क्रिया तत्पर सो जीव ॥२०२॥
कहो पापको कहा प्रमान? पंचमिथ्यात्व दुःखकी खान ।
क्रोध आदि षोड़श जु कषाय, षट् अनायतन सदा धराय ॥२०३॥

१-जिन अक्षरोका आष्ठसे उच्चारण होता है उन अक्षरोंसे रहित ।

पापवृक्ष फल कहिये माय ? दुखकारण दुर्गति ले जाय।
रोग कलेश अधिक तहँ सहै, निंद्य होय भवभवमें वहै ॥२०४॥
पापी लक्षण कैसो होय ? तीव्र कषाय धरै नर जोय।
पर निन्दाको करता रहै, आरत रौद्र ध्यान संग्रहै ॥२०५॥
लोभी कौन सर्वदा कहे ? धर्मबुद्धि जो दृढ़ गहि रहे।
निर्मल करे सबै आचार, कठिन जोग तप तन मन धार ॥२०६॥
को विवेक है जगमें श्रेष्ठ ? देह वस्तु जाने सु अनिष्ट।
देव शास्त्र गुरु नमैं न और, जैनधर्म पाले शिरमौर ॥२०७॥
धर्मी को कहिये जगमांहि ? क्षमा आदि पाले दशधाहि।
जिनवर भाषित आज्ञा लहै, ज्ञानी व्रती वृद्धि संग्रहै ॥२०८॥
संवर कौन पंथ भव चले ? निर्मल पुण्य पाप दल मले।
पूजा दान पैवास जु धरै, व्रत अरु शील नाम जस करै ॥२०९॥
सफल जन्म किहि कौ जगलोय ? उत्तम ज्ञान प्राप्ति ही होय।
मुक्तिपुरी बांधे उर हेत, और न भवसुख चित्त धरेत। २१०॥
सुखी कौन जगमें परधान ? जो उपाधि वर्जित गुण मान।
ज्ञान ध्यान अमृतको स्वाद, वनवासी तजके परमाद ॥२११॥
चिन्ता कोलौं यह जगमांहि ? जोलौं कर्म शत्रु क्षय नांहि।
साधन मुक्ती लक्ष्मी सोय, और स्वर्गसौं काज न तोय ॥२१२॥
बड़ो पुरुष है को जगथान ? जाके सदा सुमोक्ष हि ध्यान।
रत्नत्रय तव जोग जु लहै, ज्ञान संपदा सो निरवहै ॥२१३॥
परम पुरुष को जगमें मित्त ? जो धर्मी है सहजै चित्त।

१—उपवास, २—कब्रतक।

तप अर ध्यान व्रतादिक धरै, दुराचारको नहि संचरै ॥२१४॥
को है शत्रु जगत विख्यात? तप सुहानि दीक्षा न गहात।
हित अनहित दोऊ परिछेद, धरै कुबुद्धि स्वपर बहु खेद ॥२१५॥
को दानी है जग शिरमौर? क्षेत्र उलंघि धरै नहि ठोर।
तप कर दुर्बल अंग करेय, ते अमोल गुनकौ जु धरेय ॥२१६॥
तुम सम तिय जगमें अब कोय? तीर्थंकर सुत जाके होय।
तीन भुवनमें तारक जोय, दुर्मतको खयकारक सोय ॥२१७॥
पण्डित कौन जगतमें माय? श्रुतको जाननहार सुभाय।
दुराचार नहि बांधै अंग, पाप क्रियातें रहित प्रसंग ॥२१८॥
मूरख को कहिये जग मांहि? व्रत अरु क्रिया चार गत नांहि।
तप अरु धर्म धरै ना लेश, पाप बुद्धि लहि कुगति प्रवेश ॥२१९॥
दुर्धर चोर जगतमें कौन? धर्म रतनके हर्ता जौन।
इन्द्रिय पंच दई मुकराय, हित त्यागे अनहित जु सुहाय ॥२२०॥
शूरवीर को जगमें होय? सहै परीषह भट हो सोय।
धीरज-असि कषाय-अरिनाश, मोहादिक तज दीनों वास ॥२२१॥
को है अखिल देवता देव? दोष अठारह कीनों छेव।
गुण अनंत जगमें विख्यात, पर उपकार धर्म शिक्षाद ॥२२२॥
उत्तम गुरु या जगमें कोय, दुविध परिग्रह वर्जित होय।
भव्यनि प्रति उपदेशहि सार, भवदधि पार उतारन हार ॥२२३॥
यह प्रकार बहु प्रश्नहि करी, दिक्कुमारिका मन गह भरी।
अतिशय गर्भमांहि प्रभु जान, माता उत्तर दियौ महान ॥२२४॥
उदर मांहि अन्तिम जिनराय, तीन ज्ञान धारैं निज काय।
जैसे छीप मध्य मणिवास, तैसे उदर मध्य जिन तास ॥२२५॥

त्रिवली भंगुर नासी नाहि, माता कछू न संकट पाहि।
अधिक दीप्ति बाढ़ी जु शरीर, गर्भ-रतनकी ज्योति गहीर ॥२२६॥
इहि विधि देवी कर उत्साह, मन रंजैं नित नित अति ताह।
नवम मास पूरन जब भयो, मन आनंद नृपतिने ठयो ॥२२७॥
दोहा—देवी बहु प्रश्न हि करी, माता दीनौ ज्वाप।
श्रुतसागरकी केलिमें, मनहु सरस्वती आप ॥२२८॥
तब सुर पंचाश्चर्य कर, रतन पहुप बहु वर्ष।
गन्धोदक दुन्दुभि मधुर, जय जय बोलत हर्ष ॥२२९॥

गीतिका छन्द।

यहि भांति चरण सुधर्म करकै, भोग भुगते शक्रने।
पुन चय तहांतैं गर्भ आये, वीर जिन अन्तिम गने॥
धर्म ते जिन पित्र मातहिं, इन्द्र शत सेवत भये।
थुति करी मन अरु वचन तनधर, आप निजलोकहि गये॥२३०॥
धर्म फल कर पित्र माता, पुत्र तीर्थंकर लहै।
धर्मसौं भव कर्म छूटैं, धर्म शिवपदवी गहै॥
यह जान भविजन धर्म धर, दृढ़ धर्म सुपथहि ठानिये।
करि 'नवलशाह' प्रणाम नितप्रति, धरम हित जग जानिये॥२३१॥
दोहा—महिमा गर्भ कल्याणकी, को बुध बरनहि आप।
कह्यौ सकल संक्षेप कर, जिनवाणी परताप ॥२३२॥
वीर धीर गंभीर अति, वीर कर्म अरि जीत।
वीर सुभट गुणवीर है, वीर सुगुण धर प्रीत ॥२३३॥

इति श्री कविरत्न नवलशाहजी विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमें गर्भकल्याणकका वर्णन करनेवाला सप्तम अधिकार पूर्ण हुआ।

अष्टम अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा—वन्दौं वीर जिनेन्द्र पद, तीन जगत श्रिय दैन।
पंच कल्याणक भोगता, त्राता मोहि सुचेन ॥ १ ॥

भगवानके जन्मकल्याणका वर्णन।

चौपाई।

चैत्रमास उत्तम शशि पक्ष, त्रयोदशी उत्तम परतक्ष।
माता सुखमें सोवत थान, जनमें प्रभु ज्यों प्राची भान ॥ २ ॥
तन दीपत उद्योत अपार, निशि मिथ्यातमके क्षयकार।
तीन ज्ञान भूषित उर ठयो, तीन जगत ऊर्जित पद लयो ॥ ३ ॥
जनम महत्व भयो अतिशाय, सकल दिशा निर्मलता थाय।
तन सुगन्ध फैली चहुँओर, नभमें उपज्यो जै जै शोर ॥ ४ ॥
निर्मल पुहुप वृष्टि तहँ करैं, निज निज टेक पुण्य हिय धरैं।
चतुरनिकायी देवन भूप, आसन कंप भई निज रूप ॥ ५ ॥
अनहद घण्ट बज्यो सुरलोक, सिंह घोषणा ज्योतिष थोक।
शंख भवनवासिनके गेह, भेरी रव व्यंतर कर नेह ॥ ६ ॥
सौधर्मेन्द्र आदि बहु देव, जन्म जिनेश जानकर भेव।
कल्याणक प्रभु कीजै जाय, लीजै निजपर पुण्य उपाय ॥ ७ ॥
दल साजन आज्ञा की इन्द्र, सप्त अनीक रच्यौ आनन्द।
हस्ती प्रथम दुतिय हय जान, रथ गन्धर्व नृतक पय दान ॥ ८ ॥
वृषभ सातमों बरनौ भेव, देव बलाहक विक्रिय एव।
जोजन लख ऐरावत भयौ, सौ मुख तास दशों दिश ठयौ ॥ ९ ॥

मुख मुख प्रति वसु दन्त धरेह, दन्त दन्त इक इक सर लेह।
सर सर माहि कमलिनी जान, सवा सवासों हैं परवान ॥१०॥
कमलिनि प्रति प्रति कमल बखान, ते पचीस पचीसहि ठान।
कमल कमल प्रति दल सोभंत, अष्टोत्तर शत है विकसन्त ॥११॥
दल प्रति एक अपसरा जान, सब सत्ताइस कोड प्रमान।
ता गजपै आरूढ जु इन्द्र, अरु सब संग इन्द्राणी वृन्द ॥१२॥
सामानिक सब देव अनेक, षोडश स्वर्ग तनें कर टेक।
आये सकल महोत्सव काज, अपने अपने वाहन साज ॥१३॥
ज्योतिष व्यन्तर और फणीन्द्र, सब परिवार सहित आनन्द।
दुन्दुभि शब्द महाध्वनि करैं, सकल देव जै जै उच्चरैं ॥१४॥
कोई गावें गीत सुरंग, कोई नृत्य करैं मन रंग।
इहि विधि चतुरनिकायी देव, प्रथम इन्द्र सबमें बहु सेव ॥१५॥
विमान छाय रूंध्यो आकाश, छत्र ध्वजा दीसें परकाश।
अति फहराव होय चहुँओर, आये कुण्डलपुरहिं बहोर ॥१६॥
दे प्रदक्षिणा पुरहि सुरेश, कीनों पूरव पौर प्रवेश।
सकल नगरमें भीर जु भई, नर सुर असुर सेव मिल गई ॥ १७॥
नृप अंगन आये सब इन्द्र, संग लिये इन्द्राणी वृन्द।
तब हि शची जिनमंदिर गई, जननी सहित प्रदक्षिण दई ॥ १८॥
दिव्य देह तब देख कुमार, नमस्कार कर वारम्बार।
भो प्रभु! तीन जगत गुरुदेव, पुण्य प्रताप मिले तव सेव ॥ १९॥
धन दिग देवी सेवा करी, धन माता तिहि जनमत घरी।
सार्थ नाम अब प्रियकारिणी, विश्वलोकपति दरशावनी ॥ २०॥

इहि प्रकार अस्तुति कर गूढ़, जनम गीत गाये मन रूढ़ ।
कर माया सुख निद्रा पाय, मायामय बालक यह ठाय ॥ २१ ॥
लीनौं निज कर प्रभु हि उठाय, शची हर्ष निज अंग न माय ।
तन दीपति व्यापी दिश सर्व, को कवि वरनै श्रुत धर गर्व ॥ २२ ॥
आन दिखाये प्रभुको तबै, इन्द्र प्रदक्षिण दै शिर नवै ।
रूप देख जिन भये न तुष्ट, सहस नयन कीने हरि सुष्टं ॥ २३ ॥
इन्द्राणी दीनै शिरनाय, हरपवंत लीनें सुरराय ।
लक्षण अष्टोत्तरशत गात, अर व्यंजन नवसै विख्यात ॥ २४ ॥
दरसै अंग अंगकी कान्त, पूरव उदय भान लाजंत ।
नख देखत उडुगन द्युति घोर, हरि अस्तुति कीनी करजोर ॥ २५ ॥
गुरुन विषैं गुरु हो तुम ईश, चित्त धर्मके तीरथ ईश ।
तुम प्रभु अन्तिम जिनवर सूर, केवलज्ञान उदै अघ चूर ॥ २६ ॥
भव्य जीव रक्षक हित धर्म, मुक्ति स्त्री भर्ता शुभ शर्म ।
मिथ्याज्ञान कूप है अन्ध, परै ताहिमें प्रानी धंध ॥ २७ ॥
धर्म हस्त तुम परम जहाज, उद्धारत भवि जीवन काज ।
मोह आदि जे कर्म न हनै, ते शिवपुरको जेहैं घने ॥ २८ ॥
अँस्तुति बहुत शक्र तहँ करै, नमस्कार कर गज संचरै ।
जन्मभिषेक करन को जोय, गगन पयान कियौ पुन सोय ॥ २९ ॥

१–इन्द्र, २–सुष्ठु-उत्तम, ३–कविने इस ग्रन्थमें स्तुति-स्तवन आदि शब्दोंके पहले अकारका उच्चारण किया है। बुन्देलखण्डमे ऐसा उच्चारण करनेकी पद्धति भी है। इसलिये इस ग्रन्थमे जहां भी ऐसे शब्द आवे वहां 'अ' का अर्थ निषेधरूप नहीं समझना चाहिये ।

दुन्दुभि सकल बजैं बहु ध्वान, किंनर गावें गीत सुहान।
नृत्यत देवी लीला करैं, जिनके गुण रट रट निज गरैं ॥३०॥
प्रथम इन्द्र निज कांधै थाप, अरु ईशान छत्र लिय आप।
सनत्कुमार महेन्द्र जु होय, चौंर ढरैं अति हर्षित होय ॥३१॥
सकल देव जयघोष कराय, यहविधि बहुत भयौ कहराव।
ज्योतिष लोक उलंघै जाय, क्रम क्रम मेरु ऊर्ध्व पहुँचाय ॥३२॥
पाण्डुक वन तहँ शोभावान, कल्पद्रुम दीसैं सब थान।
चहुँदिश चार जिनालय धार, विदिशा पाण्डुक शिला सु चार ॥३३॥
(ई) शान दिशाकी शिला नियोग, भरतक्षेत्र तीर्थंकर जोग।
सौ जोजन है दीरघ सोय, अर पचास विस्तार जु होय ॥३४॥
जोजन आठ ऊँचाई धार, अष्टम चन्द्र तास आकार।
सिंहपीठ तिहि मध्य जु लीन, वैडूरज मणि सोहत तीन ॥३५॥
पाव कोश पहिली उन्मान, आधी तास दूसरी जान।
तातैं अर्ध ऊर्ध्वमुख और, मण्डप इन्द्र रच्यौ शिरमौर ॥३६॥

दोहा—छत्र चमर ध्वज ताल जुत, कलश अवर भृङ्गार।
सुप्रतिष्ठक दर्पण सहित, मंगल द्रव्य सु सार ॥ ३७ ॥
वसु द्रव्यैं ताही सदा, उपमा दीजै काय।
देव रचित मंगल करत, धरी सबै समुदाय ॥ ३८ ॥

चौपाई।

सिंहपीठ ऊपर हरि आप, दक्षिण दिशि सिंहासन थाप।
तापै पूरव मुख प्रभु करौ, कमलासन अद्भुत बल धरौ ॥३९॥
(सौ) धर्म इन्द्र दक्षिण दिश ढार, अरु उत्तर ईशान कुमार।

दश दिक्पाल दशों दिश खड़े, सुर विद्याधर आनंद चढ़े ॥ ४० ॥
कल्पद्रुम पहुपनकी माल, प्रभुके कण्ठ धरी तत्काल।
गीत नृत्य वादित्र बजाय, जै जै हर्ष करैं हरषाय ॥ ४१ ॥
इन्द्राणी आदिक सब देव, दिव्य कण्ठ गावें प्रभु सेव।
सहस अठोत्तर कलश बखान, जोजन एक तास मुख जान ॥ ४२ ॥
जोजन आठ महा गंभीर, उदय चार हाटकमय¹ तीर।
अब कुबेर रतनन कर खची, नानावर्ण पेड़िका रची ॥४३॥
मेरु शिखरतैं सोहै पंत, पंचम सागरके पर्यन्त।
सकल सुरासुर तहँतैं ठाट, एक एक छोड्यो दधि घाट ॥४४॥
सेनी² बांधी देवन सबै, हथाहन्थ कलशा ले तबै।
सो क्षीरोदधि जल भर लाय, जन्मासेक करा मन लाय ४५॥
प्रथम सौधर्म इन्द्रके हाथ, कलश दये देवन सब साथ।
एक सहँस वसु³ भुजा कराय, सकल कलश ढारे हर्षाय ॥४६॥
शेष शक्र अर सकल जु देव, ढारैं कलश करी बहु सेव।
तीन धार ह्वै शिरपर ढरी, मानौं त्रिविध मिली सुरसरी ॥४७॥
जो धारा सों गिरिवर खंड, सो प्रभु सही महा बल बंड।
वीर थान अति वीरज सक्त, उपमा कौन कहै कर भक्त ॥४८॥
प्रभुको परस छटी उपराय, पाप मुक्ति इव ऊरध ल्याय।
प्रभुबल अद्भुत वरनौं कहा, फूलमाल सम धारा महा ॥४९॥
वपु इक हाथ शरीर प्रमाण, नर सुर प्रभुबल अचरज जान।
जै जै शब्द करैं अति सबै, कलकहराव भयो है तबै ॥५०॥

१-सुवर्णमय, २-श्रेणी पंक्ति, ३-एक हजार आठ।

सुख अवलोकैं दिग कौमार, मुक्तागण सम जल अमधार।
पाण्डुक रव अति सोहत भयौ, निर्मल बहु विचित्रता ठयौ ॥५१॥
पद्मराज मणि आभा सोय, जन्म स्नान मगन सुर होय।
उमगि चल्यौ क्षीरोदधि नीर, मानों गंगा बढ़ी समीर ॥५२॥
सामग्री सब गंध गहीर, सुधा समान न्हवनको नीर।
श्री तीर्थेश न्हवन अतिशाय, गंधोदक वंदै हरषाय ॥५३॥
जो धारा प्रभु परस जो चली, सो सुर निज निज माथैं दली।
पाप अनेक गये भग दूर, देह पवित्र करी गुण भूर ॥५४॥
खड़गधार वत धारा राज, सहत सकल सुर मुक्तहि काज।
अमृतसम धारा निज गृही, विषमल धोय शुद्धता लही ॥५५॥
पुण्य अनेक उपार्जे सोय, लक्ष्मी मुक्ति सरूपी होय।
सकल सिद्धिकी करता सबै, (अ) भीष्ट संपदा लीनी जबै ॥५६॥
यह प्रकार गंधोदक वंद, शांतरूप सब देव अनन्द।
फिर पूजा कीनी सुरराय, अष्टद्रव्य लै हरष बढ़ाय ॥५७॥
जल सुगंध अक्षत बहु शुद्ध, कल्पद्रुमके पुष्प समृद्ध।
लै नैवेद्य धरो पकवान, दीप मणिमई धूप महान ॥५८॥
कल्पतरूवर फल ले सार, अर्घ्य धरो कुसुमांजलि डार।
सबै सुरासुर पुहुप जु वृष्ट, पंचाचार करैं मन तुष्ट ॥५९॥
यह प्रकार प्रभु जन्माभिषेक, इन्द्र और सुर असुर अनेक।
कियो महा आनंदित जाम, तीन प्रदक्षिण देता ठाम ॥६०॥
अंग अँगोछ लियौ सुरराय, फिर सिंहासन पै वैठाय।
इन्द्राणी आदिक सब देव, कौतुक करैं अग्र जिन सेव ॥६१॥

सब आभरण धरै तहँ आन, है नियोग तीर्थंकर जान।
तिलक दये चन्दनके सार, तीन जगतपतिको हितकार ॥६२॥

अंजन नैनन दियो सुढार, शीस मुकुट चूडामणि धार।
वज्रमयी प्रभु चरम शरीर, विंधे कर्ण गरभहिके वीर ॥६३॥

इन्द्राणी कुण्डल पहिराय, रत्नजडित द्युति दामिन जाय।
कंठ मांहि पहिराये हार, मणिमय मोह तिमिर हरतार ॥६४॥

जुगल बाहु जुग पौंची बनी, नाना रतन जड़ित सुख सनी।
अँगुरिन मुदरी दीप्ति अनेक, किंकिण ढिक पहराई एक ॥६५॥

जुगपद् मणिमय सांकर दोय, ताकी उपमा अति छवि होय।
इतनें साधारण आभरण, मण्डित महादीस अति करण ॥६६॥

भगवन्त रूप देख सुरराय, आनन्दो मन अङ्ग न माय।
सहस नेत्र करि तृप्ति न होय, पलसों पल न लगावै सोय ॥६७॥

अति प्रमोद उमग्यौ जु शरीर, रोमांचित ज्यों सागर नीर।
तुम तीर्थंकर तीरथ राज, अघनाशन भव जीवें काज ॥६८॥

प्रभु अस्नान करैं कह देव, तुम पवित्र सहजै स्वयमेव।
भक्ति हेत पै हम कछु कर्यौ, पुण्य लहौ पूरव अघ टर्यौ ॥६९॥

तीन जगत मंडित तुम भक्त, मै अपनै वशकर कछु सक्त।
तीन लोक जिय आये साज, प्रभु कल्याणक देखत काज ॥७०॥

तिनहूको कल्याणक एव, अमित पुण्यकर सैध्यौ सेव।
तुम दरशन सूरज परकाश, भव्यजीव अघ तिमिरै नाश ॥७१॥
रतन अमोल लक्ष्मी पाय, तुम दर्शन शिवपुर ले जाय।

तुम दर्शनकी बैठि जहाज, उतरै भव-वारिधि कर काज ॥७२॥
तुम दरसै प्रभु मन वच काय, स्वर्गलोक फल पावै जाय।
तुम्हरे गुण लै जो अनुसरै, क्रमकर मुक्ति वरांगन बरै ॥७३॥

मोह मल्ल जीतै तुम दर्श, तुम रक्षक भवि जीवन सर्स।
मोह जु अंध कूप तैं काढ़ि, शरणागत राख्यौ सुख माढ़ि ॥७४॥
प्रभुको जन्मभिषेक करेव, मेरे कर्म नाश कर देव।
तुम्हरे गुण जो सुमरन करै, सो तैसे गुणको विस्तरै ॥७५॥

तुम अस्तुति मुखतैं उच्चरै, सो निज वचन सफलता करै।
तुम गंधोदक वंदन करी, अंग पवित्र भयौ तिहि घरी ॥७६॥

तीन जगत स्वामी भगवान, तुम जगबन्धन हनत कृपान।
तुम परमातम मुक्त प्रकाश, परमानंद लोक शिर वास ॥७७॥

तीर्थंकर गुणसागर तेह, अघ मल दूर करन शुचि देह।
तुम दर्शन निर्वाण महेश, अष्ट करम नाशन जगदेश ॥७८॥

पंचहि इन्द्रिय जीत्यौ लोभ, पंचकल्याणक कीनौ शोभ।
नमौं मुक्ति अंगन भरतार, लोकालोक प्रकाशनहार ॥७९॥

नमौं त्रिजगपति लक्ष्मीनाथ, सकल मुक्ति सामग्री साथ।
बारबार प्रणमौं करजोर, दीजे मोह परमपद और ॥८०॥

दोहा—दरशन कर सुरराज इम, सन्मति सार्थक नाम।
कर्म निकन्दन वीर हैं, वर्धमान गुणधाम ॥ ८१ ॥
ये त्रय नाम प्रसिद्ध कर, धर उत्साह सुरेश।
ऐरावत आरूढ़ है, कंध लिये जिन ईश ॥ ८२ ॥

चौपाई ।

सकल विभूति लही जिन साथ, जय जय करैं नाय निज माथ ।
आय गगन रुंध्यो आकाश, सप्त अनीका सुर तिय तास ॥८३॥
सेव काज करवै कों इन्द्र, पुरमें गये सहित निज वृन्द ।
चतुर निकाय देव बहु संग, नृप आगार करै बहु रंग ॥८४॥
मणिमय सिंहासन धर तहां, थापै जिन कुमारको जहां ।
दिव्य कांतिको वरननहार, गुण अनंत केवल सुखधार ॥८५॥
जननी तहँ सोवत सुख भरी, शची जगाय गोद जिन धरी ।
हरषवन्त सुत देखत जोय, भूषण भूषित स्तुति बहु सोय ॥८६॥
इन्द्राणी तब अस्तुति करी. जीवन सफल धन्य तुम घरी ।
तीन लोकपति जन्म महान, तुम सम त्रिय जगमें नहि आन ॥८७॥
नैन सफल तुम देखत भए, तुम देखत सब विकलप गए ।
तुम उपमा अब दीजै काहि, तीन लोक तुम सम कछु नाहि ॥८८॥
श्री सिद्धारथ बन्धु सभेव, हर्ष सहित दरसे जिनदेव ।
प्रथम इन्द्र अब अरु ईशान, नृप थुति कर सिंहासन थान ॥८९॥
दम्पतिकी पूजा हरि करी, मणिमय आभूषण अँग धरी ।
पाटंवर बहु वस्त्र अनेक, पहुपमाल पहिराई एक ॥९०॥
फिर अस्तुति कर कर शिर नये, आज धन्य तुम दरशन भये ।
तिन जिन मात पिता धन तोय, तुम सम उत्तम और न कोय ॥९१॥
लोक विषें गुरु हो जगदिष्ट, मात पितामें बड़े सरिष्ठ[1] ।
तीन लोकमें पुरुष न और, तुम समान दम्पति शिरमौर ॥९२॥

१—श्रेष्ठ ।

जन्मभिषेक कियौ गिरि शीस, सो सब वर्ण कहो सुर ईश।
तब बहु हर्ष भयौ नृप रानि, अति आनन्द महोच्छव ठानि॥९३॥
फिर सुरपति श्री जिनवर गेह, पूजा करी अष्टविध नेह।
प्रभु जुत मात पिता पद नये, नानां भाति हर्ष जुत ठये॥९४॥
अद्भुत लीला हरि बहु करी, देखैं नरनारी पुर जुरी।
स्वजन आदि सब पुरजन तेह, आये सुतहि महोच्छव लेह॥९५॥
तोरण ध्वज अरु वंदनवार, गावैं गीत नृत्य सुखकार।
अति आनंद कर नाटक रंभ, देवी सहित इन्द्र मन थंभ॥९६॥
प्रथम सुरेश कियौ समतार, नेत्र सुखी पर एक हजार।
एक हजार भूजा जुत सोइ, मणिमय भूषण भूषित जोइ॥९७॥
पुनि बहुरूप नटनको ठयौ, जिन उद्भव कर भक्तहि लयौ।
नृत्य करैं ऊर्जित सब लोक, कल्पवासिनी देवी थोक॥९८॥
सकल दिव्य आभरण जु लहै, मानों दामिनिकी द्युति गहै।
नाना भांति कियौ तहँ रंग, भमरी लेत छिपै भू अंग॥९९॥
करै पहुप अंजलिकी वर्ष, बहु आडम्बर जिनवर हर्ष।
वीणा आदिक ध्वनि वाजंत, सुर समतार गीत अरु तुंत॥१००॥
जिनवरके गुण धर गावंत, भव भवके अघ नाश करंत।
जो कछु रंग मेरु पै करौ, तापै यहां अधिक[1] विस्तरौ॥१०१॥
नृप आदिक सबको सुखकार, ऋद्धि विक्रिया कर अनुसार।
अति विचित्र कटि पाय सुरेश, कंठ हस्त आदिक छवि देत॥१०२॥
धरन चरन चपल गति चलै, छिन कंपै गिरिवर सब हलै।

१—अत्यधिक।

भ्रमैं मुकुट चक्र फेरी लेत, वलयाकृति कुंडल छवि देत ॥१०२॥
भुज कंकण मणि शोभा हेत, मनों नखत गिरि फेरी देत।
सहस पाय नूपुरके सोर, सब वाजित्र वजैं चहुँ ओर ॥१०३॥
विह्वल कर ह्वै भ्रम भ्रम सोय, छिनमें एक छिनक बहु जोय।
छिनमें उन्नत द्वीप प्रमान, छिनमें सूक्षम वपु कर गान ॥१०४॥
छिनमें निकट धरै बहु भेक, छिनमें दूर जाय कर टेक।
छिनमें भूमि छिनहिं नभ सार, छिनमें दोकर छिनक हजार ॥१०५॥
इहि विधि हर्ष बढ़ायौ इन्द्र, इन्द्रजाल सम अप्यौं वृन्द।
पुनि अप्छर लै रंग विहार, भुज प्रति नाट नटावहि सार ॥१०६।
बढ़ै छिनक छिन लघुता धरै, सुर अंगत प्रवेश बहु करै।
लीला और करी इक तबै, हस्त अंगुलिन ऊपर सबै ॥१०७॥
शची आदि दे देव कुमारि, अंगुरिन पर नाचैं मनमारि।
आपुन इन्द्र मध्य जिमि मेर, पांति मराल लसैं चहुँ फेर ॥१०८॥
छिनमें उर्ध्व उचालै तबै, छिनमें अंगुरिन झेलै सबै।
छिनमें सकल अलोपित होइ, फिर छिनमें देखैं सब कोय। १०९॥
ऐसी विधि बहु लीला करी, गूढ़ न काहू परगट धरी।
भुवमें रहे करैं नट ख्याल, उपमा रहित महेन्द्र सुजाल ॥११०॥
जय जय धोक करै आकाश, देव और विद्याधर जास।
इह विधि दिव्य नृत्य कर इन्द्र, विक्रिय उद्भव मन आनंद ॥१११॥
उत्सव हावभाव कर सबै, पिता आदि पुरजन सुख जबै।
जिनवर शुश्रूषा कर इन्द्र, सेवा राख धनद सुख वृन्द ॥११२॥
धर्म महातम दीनौ भाख, तीन लोक जिय कीनै साख।
चतुर देव विद्याधर राज, निज निज लोक गये सब साज ॥११३॥

सिद्धारथ नृप सब परिवार, जन्म महोत्सव कौतुक धार।
देख्यौ पुत्र तनों फल पाय, पुण्य वृक्ष पूरब सुखदाय ॥११४॥
तहां सकल पुरजनके वृन्द, करी बधाई मन आनंद।
घर घर वंदनवार बंधाय, रत्नजटित कंचन समुदाय ॥११५॥
मंगन जनको दीनौ दान, हय गय रतन पटंबर आन।
जन्म महोत्सव कर मन रंग बहु वादित्र बजैं इक संग ॥११६॥
गावैं गीत सकल पुर सार, सो वरनत लागै बहु वार।
जन्मकल्याणक अति उत्साह, प्रभुकी सेव करैं अति चाह ॥११७॥

गीतिका छन्द।

यह सुकृत पुण्य विपाक फल, सब स्नान श्री जिनवर भयौ।
इन्द्र शत अरु देव चउविध, खचर मिलि उत्सव ठयौ॥
मेरु शीस सु जायकै प्रभु, थापि सिंहासन धरै।
क्षीरसागर जल जु भर फिर, कलश लै शिरपर ढरै ॥११८॥
धर्मसों सुर इन्द्र सुख लहि, धर्म गुण वारिधि भरै।
धर्म हित तिहुं लोक जीवन, धर्मतें शिवपद धरै॥
धर्म भव दुख नाश करता, धर्म जग माता पिता।
धर्म पण्डित बुद्धि उपजै, धर्म तारण तरणता ॥११९॥
धर्म तिहुँ जग वीर है, बहु धर्म तीर्थंकर धनी।
धर्म गुण सर्वज्ञ निर्मल, विश्व जग चूडामनी॥
कल्याण सुख उपमा रहित, वृष कर्मशत्रु विनाशनी।
'नवलशाह' प्रणामि धर्म हि, मन वच तन पावनी ॥१२०॥

इतिश्री कविरत्न नवलशाहजी विरचित भाषा छन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमें भगवानके जन्मकल्याणका वर्णन करनेवाला अष्टम अधिकार पूर्ण हुआ।

नवम अधिकार

मंगलाचरण।

दोहा—वर्धमान पदकमल नमि, जुग कर धर निज शीस।
गुणसमुद्र गंभीर अति, सो गुण देउ कृपीश ॥ १ ॥
बालचरित आगम अगम, को कहिवै समरत्थ।
अलप बुद्धि संक्षेप कह, सकलकीर्ति ले अर्त्थ ॥ २ ॥

वर्धमान जिनेन्द्रकी बाल्यावस्थाका वर्णन

चौपाई।

श्री सन्मति प्रभु शोभित एव, मति श्रुत अवधि त्रिज्ञान समेव।
माता पय नहिं पीवैं कदा, हस्त अंगूठामृत चखि सदा ॥ ३ ॥
यह विधि दिन दिन वृद्धि कराय, दोइज चंद्र बढ़त जिमि जाय।
वस्त्राभरण पहुपकी माल, पहिरावत सुर मुदित विशाल ॥ ४ ॥
न्वहन करावै जल शुचि अंग, दिगकुमार देवी मन रंग।
नाना क्रीड़ा कर जिन सोय, अति आनन्द रमावै जोय ॥ ५ ॥
कर अम्बुज जु पसारै दोय, प्रभुहि खिलावैं बहुविध सोय।
बालचन्द्र पृथिवीके मांहि, अति छबिधर सबको हरषांहि ॥ ६ ॥
माता दरस करै अहलाद, पिता अनंद नमैं द्वै पाद।
दिनकर छिपै देहकी कान्त, आनन चन्द्र तजै धर शान्त ॥ ७ ॥
अति संतोष पितृ परवार, सुधा सिन्धु पायौ सुत सार।
शनैः शनैः पद धारैं देव, मणिमय धरा सूर्य सम एव ॥ ८ ॥

१–देओ, २–अर्थ।

खेलैं देवन सहित जिनेश, तहां रतनमय धूलि विशेष।
सो निज शिरपर डारैं केलि, धूल देयँ मिथ्यामत वेलि ॥ ९ ॥
क्रम क्रम कहैं कमल मुख जैन, शारद इव सोहैं सुख दैन।
हंसि विकसै मुख कमल कुमार, सुंदर देह लसै अधिकार ॥१०॥
हर्ष करै क्रीडा वहु सोय, बांधव सजन सुक्ख अति होय।
इहि विधि वालकुमार सुहात, माता आगे वच तुतलात ॥११॥
स्वेद रहित मलवर्जित देह, दूध समान रुधिर है तेह।
वज्रवृषभनाराच संहान[1], सोहै सम सु चतुर संठान ॥१२॥
अति-सुगंध वपु दश दिशवास, उपमा रहित रूप है तास।
लक्षण एक सहस अरु आठ, अद्भुत वल प्रभुको निज ठाठ ॥१३॥
जगत पियारी वानी कहैं, वृष उपदेश सदा निर्वहैं।
ए दश अतिशय सहज हि अंग, गुण अनंत धारक सरवंग ॥१४॥
दोहा—एक सहस वसु अधिक जे, लक्षण जिनवर देह।
पृथक पृथक कछु वरनऊँ, आगम अर्थ सनेह ॥१५॥

पद्धडि छन्द।

श्रीवत्स शंख स्वस्तिक सरोज, वर शंख चक्र दल नील वोज।
सरवर तुरंग ध्वज चमर छत्र, तोरन गोपद अरु आतपत्र[2] ॥१६॥
नरनारी सागर कामधेन, शर धनुष वज्र कमला सुऐन।
तहँ कल्पवृक्ष कच्छप सुगंग, भू महल वैन वीणा मृदंग ॥१७॥
केहरी कलश पुनि वृषभ श्वेत, कपि गरुड मीन माला सुहेत।
अंकुश पाटंबर रतनदीप, सौवर्ण वीजना अहि समीप ॥१८॥

१—संहनन, २—छत्र।

गज भवन पतिग्रह सुर विमान, सिद्धारथ जम्बू वृक्षमान।
चूडामणि शारद गिरि सुमेर, गेंडा वराह मृग महिष फेर ॥१९॥
भूषणसे ही अजगं नु जान, शुभ साल खेत कुंडल वखान।
रवि शशि आदिक नवग्रह सुहेत, सतवीस नखत नवनिधि समेत॥२०

दोहा—प्रातिहार्य मंगल दरव, प्रमुख हि लक्षण ठौर।
अष्टोत्तर शत प्रमिति इति, नव सय व्यंजन और ॥२१॥
परै केवली दृष्टि तैं, सुरनर लखहिं न किद्र।
शक्र इष्ट प्रथमहिं लहै, सो लक्षण सुप्रसिद्ध ॥२२॥
वर्धमान भगवानके, दाहिन पद शोभंत।
लक्षण केहरि हरिसुवर, सो त्रय जग जयवंत ॥२३॥

चौपाई।

सौम्य क्रान्ति दीसै प्रभु अंग, कनकवरन सम दीप्ति अभंग।
कवहूं देव संघधर जवै, कथा परस्पर भाषै सवै ॥२४॥
कला, ज्ञान, चातुर्य विवेक, धर्म विचार करै प्रभु-टेक।
क्रमसौं शुद्ध ज्ञान संचरै, क्षायिक सम्यक् दृढ़ आदरै ॥२५॥
जव प्रभु आठ वरषके भये, श्रावकव्रत द्वादश परणये।
नर सुर सभा मध्य जिमि भान, अद्भुत वीरज परम प्रधान ॥२६॥
वीरनाथ प्रभु बालकुमार, धीर वीर शूरा अगवार।
दिव्यरूप गुणगणहि सुधार, क्रीडावृत्ति करै अधिकार ॥२७॥
देव सहित प्रभु जाइ धान, द्रुम वल्ली सोभै तिहि थान।
बालक रूप देख पितमात, पीछै धर चालै प्रभु सात ॥२८॥

देव विक्रियामय जब करौ, अतिमय मत्त[1] मतंग तन धरौ।
दूर पलाइ गये जन सबै, भय आतुर देखौ वह तबै ॥२९॥
गज आवत देख्यौ जिनराय, भय बिन पकरि लियौ छिन धाय।
प्रभु निरास निःशंक प्रधान, गज आरूढ़ भये उद्यान ॥३०॥
तब कुटुम्ब मिलि अरु सब देव, थुति आरंभ करी प्रभु सेव।
तीन जगत जिय तृणवत सबै, महाबली जिन देखे अबै ॥३१॥
इन धीरज सम को जगमांहि, अचरजवान भये सब तांहि।
प्रभुके गुणको अपरंपार, या कह कह हरषै परिवार ॥३२॥
तुम स्वामी त्रिजगत धर धीर, कर्म शत्रुके हंता वीर।
तुमरी द्युतिके तेज प्रताय, छिपै चन्द्र सूरज किरणाय ॥३३॥
तुमरौ नाम सुमिर अघ हरै, सुर अहमिन्द्र सुक्ख विस्तरै।
नमौ दिव्यमूरति प्रभु तोय, नमों दिव्य भर्ता अवलोय ॥३४॥
इहि प्रकार अस्तुति कर देव, सांरथ[2] नाम धरै उर सेव।
वार वार प्रणमैं शिर ताम, अपने थान गये विश्राम ॥३५॥
प्रभुहि वचन अमृतसम ऐन, विषयलोक बोधन सुख चैन।
अन्य दिवस सुर इन्द्रहि आय, नाना नृत्य करहि प्रभु पाय ॥३६॥
किंनर गीत सुकंठहिं करैं, अति आनंद सबै मनु हरैं।
आनंद नृत्य रचौ बहु इन्द्र, कलश देव ले लीला कंद ॥३७॥
देखै बहुविधि उत्तम ख्याल, मात पिता उर सुक्ख विशाल।
भूषण बसन माल पहिराय, पुन सुरेन्द्र निज थानहिं जाय ॥३८॥
कबहूं सुर हर्षित प्रभु पाहि, जलक्रीड़ा वनक्रीड़ा जाहि।

१–मदोन्मत्त हाथी, २–सार्थक।

नित प्रति देव विनोदहि धरै, धर्महि लै सुख वांछा करै ॥३९॥
फिर सुरेश सुख करवै काज, आयौ सबै विभूति हि साज।
अति विचित्र नृत्तक विस्तरे, बाजै गीत ग्राम मनु हरै ॥४०॥
स्वर्गजनित जे वस्तु अनेक, पहिरावै प्रभुको थुति टेक।
काव्य पढ़ै गुण गोष्ठि जु करै, धर्म हिये लै वच उच्चरै ॥४१॥
इहि प्रकार बहु पुण्य उपाय, सुखसागर अमृत जल पाय।
क्रम क्रम सों प्रभु जौवन भये, नित प्रति सुर नर सेवा ठये ॥४२॥
मणिमय मुकुट शीस पै लसै, भाल तिलक शोभा कर बसै।
कण्ठमाल मुक्तागण एम, मेरु प्रदक्षिण उडुगम जेम ॥४३॥
मुख कपोल सोहै निज तेह, अष्टम इन्द्र लहै श्रुति जेह।
नयन कमल दल शोभा धार, भ्रकुटी चढ़ौ धनुष आकार।४४॥
मणिमय कुण्डल सोहैं कर्ण, अरु मुखेन्दु सूरजसम किर्ण।
कीर नासिका दाडिम दशन, बिम्बोष्ठी ठोड़ीको शरन ॥४५॥
अधर कमलकी शोभा सजै, वचन कोकिला वानी लजै।
वक्षःस्थल मणिहार विराज, भुजा दंड सम कोमल राज ॥४६॥
मुँदरी भूषित अंगुरी चंग, पोंची कंकण मण्डित रंग।
नख सूरज किरणावलि धरै, को बुध शोभा वरनन करै ॥४७॥
अंग अंग बहु दीपत वान, नाभि वर्तुलाकार प्रमान।
वागदेवि[1] इम बचन गहीर, लक्ष्मीक्रीड़ा विमल सुधीर ॥४८॥
मेखल कटिमें शोभा गहै, जुगल जंघ कदली सम बहै।
पाद कमल जुग बने सुढार, महादीप्त नख है अधिकार ॥४९॥

१—सरस्वतीदेवीके समान।

यह प्रकार भूषण शृङ्गार, केश नागिनी सुत आकार।
तीन जगतमें श्रेष्ठ सरूप, अति पवित्र सदगंध अनूप ॥५०॥
तीर्थंकर पुद्गल वरगना, और न होय यही तन विना।
सात हाथ तन उन्नत सार, वीर नाथ जग तारनहार ॥५१॥
दोहा—अति विचित्र सुन्दर सुरभि, परमौदारिक देह।
अद्भुत बल तीर्थेशको, रूप वाक्य गुण गेह ॥५२॥

छन्द चाल।

मन वच तन व्रतको लीनौं, सो धर्म ध्यान सुख भीनौं।
प्रभु लीला बाल जु कीनौं, पित मात हर्ष सुख दीनौं ॥५३॥
सुख भुंजें सबरस पागे, सपने सम तै अनुरागे।
है तीस वरस संजोगू, लहि तृपत भये नहि भोगू ॥५४॥
अब काललब्धिको पाई, क्षायिक सम्यक्त्व सुहाई।
चारित मनमें अब धारौ, सनमति प्रभु बुद्धि विचारौ ॥५५॥

भगवानका वैराग्य वर्णन।

वह पूरब प्रेक्षा दीनौं, तब कोटि भ्रमन भ्रम कीनौं।
उतकृष्ट भाव वैरागो, भव भोग सकल अब त्यागो ॥५६॥
अब रतनत्रय तप लीजै, मोहादि करम खय कीजै।
ए वृथा सकल दिन जांही, व्रत दुर्लभ बहु जग मांही ॥५७॥
प्रभु आदिनाथ तें होई, इकवीस जिनेश्वर सोई।
बहु आयु लै भोगजु कीनौ, आखिर तप कर शिव लीनौ ॥५८॥
नेमि पारस धन्य जु दोई, घटि आयु बाल तप होई।
तप साध्यौ मुक्तिहि जाई, सो हम अब छिन न सुहाई ॥५९॥

वे काल रहे अब नाही, त्रय पल्य आयु सुख मांही।
अब आयु बहत्तर बरसा, तहँ तीस गये वे सैरसा ॥६०॥
लघु आयु सु जे जगरूढ़ा, रैमयंति तपो बिन मूढ़ा।
चितत त्रय ज्ञान जु नैना, थिति गेह बिना सुख चैना ॥६१॥
किम ज्ञान सधारण इच्छै, मुक्ति श्रीको नहि वंछै।
है ज्ञान सफल तेहीको, चारित तप दृढ़ जेहीको ॥६२॥
बहु ज्ञान विफल कर तेसा, जो प्रकट करै नहि लेशा।
द्रैंग देखत परहि जू कूपा, ते चक्षु वृथा धर रूपा ॥६३॥
परै मोहकूपमें जाई, धर ज्ञान वृथा जग माई।
कह तीन ज्ञान धर लीनौं, संसार बढ़ावन कीनौ ॥६४॥

दोहा—अज्ञानहि तैं पाप कर, ज्ञान लहै घट जाय।
ज्ञान पाय पापै गहै, सो क्यों छूटै भाय ॥६५॥

चौपाई।

ज्ञान पाप कारज न करेय, शोभित ज्ञानवंत पुरुषेय।
प्राण गये को संशय नाहि, निन्द्य करम मोहादिक आहि ॥६६॥
राग द्वेष दुर्धर चिरकाल, दुर्गति घोर दु खको शाल।
भ्रमण करै, प्राणी परवीन, सुख नहि रंच प्रकट है दीन ॥६७॥
तातैं ज्ञानी मोह जु शत्र, हनै ज्ञानके खडग जगत्र।
शक्ति पाय जो हनै न ताहि, तो फिर दाव न पावै काहि ॥६८॥
बालपनैं तप साधै सुधी, जौबन लहै होय मन कुधी।

१—विना रसके अर्थात् व्यर्थ। २—रमण करते है। ३—आंखोसे देखते हुए भी।

तातैं अब कीजै तप काज, मुक्ति पुरीको लीजै राज ॥६९॥
जोबन भूप-कामकी फौज, पंचेन्द्रिय है तिनमें मौज।
जीतै तहँ दुर्गतिको देश, धरै मोह जोधा आदेश ॥७०॥
जोवन गये जरा तन आय, बल अरु दीप्ति सबै जर जाँय।
नैन कान कर राखै मन्द, तब पछिताय परै जम फन्द ॥७१॥
अब तप लैन विना न सुहाय, विषय शत्रुको देउं वहाय।
यह चिन्तवन करौ प्रभु सोय, राज्य भोग निःस्पृह मन होय ॥७२॥
गृह आगार राजश्री तज्यौं, तप उद्यम कर मुक्तिहि भज्यौं।
काल लब्धि यह दुर्लभ पाय, सुख निधान संवेग उपाय ॥७३॥

दोहा—श्री सन्मति त्रय ज्ञान मय, द्वादश प्रेक्षा चित।
संवेगादिक भाव धर, आतम कार्जे लहंत ॥७४॥
है अनित्य वस्त्वादि जग, शरण न दीसै कोय।
संसारहि भ्रम एकलौ, अन्य जीव तन सोय ॥७५॥
अशुचि अपावन पोतरा, आस्रव कर्म अधार।
संवर कर निर्जर झरै, तीनहु लोक मंझार ॥७६॥
दुर्लभ दुर्लभ पाइयै, मानुष जन्म जिहाज।
धरमहि लगि पारहि लगै, अपर भवोदधि माज ॥७७॥

बारह अनुप्रेक्षाओंका चिन्तवन।

जोगीरास छन्द।

काललब्धि श्री वीर जिनेश्वर, आपुन मनहिं विरागे।
राज समाज भोग इत्यादिक, ते सब वेरस लागे॥
आयु कालके मुखमें खेलै, जोवन घट हि जरासौं।
रोग अनेक देहमें व्यापति, छिनभंगुर सब यासौं ॥७८॥

तीन लोकमें वस्तु जु सुन्दर, देखत विनशै सोई।
अति दुर्लभ गति कोटिन धरधर, नरभव थिर नहि होई॥
कोई गर्भहिमें खिर जाई, पाप उदय जब आवै।
कोई बाल तरुण हो विनशै, कोई जरा सतावै॥७९॥
कोई पुण्य उदय जोबन लहि, धर्म हि साध सुधारौ।
कोई मूढ़ मोह मदमातौ, दुर्गति भटकत भारौ॥
कोई रोग व्याधि कर पीड़ित, नाना दुःख सहंतौ।
कोई पुत्र कलित्र मोह वश, गृह बन्दी खनवंतौ॥८०॥
हय¹गय² रथदल³ देखि विनश्वर, अभ्रपटल⁴ सम सोई।
लक्ष्मी राज्य चक्रवति आदिक, थिर न भई तहँ कोई॥
तातैं सुधी जान जग भंगुर, तपकर मुक्तिहि साधौ।
नित्य अनन्तै सुक्खहि भुं-जौ, नित्य गुणन अवराधौ॥८१॥

इति अनित्यानुप्रेक्षा।

ज्यों बन भीतर हिरन इत्यादिक, सिंह कवलकौ नाखै।
तैसे या जग जीवित प्रानी, काल गहतकौ राखै॥
इन्द्र चक्रि हरिहर विद्याधर, राख छिनक नहि सके।
आपुन सकल मीचं⁵की चिन्ता, और शरण कह तके॥८२॥
मंत्र यंत्र तंत्रादिक औषधि, और उपाय घनेरौ।
जब ही सन्मुख काल दिखानौ, भये वृथा सब हेरौ॥
तातैं भविजन शरन धरौ निज, पंच परम गुरु चरना।
है रक्षक दुर्गति तैं राखत, शुभ गति साथी शरना॥८३॥

१—घोड़ा। २-गज-हाथी। ३—सेना। ४—मेघ पटलके समान। ५—मृत्यु।

तप अरु ज्ञान जिनेश्वर पूजा, तप व्रत आदिक भावै।
विश्व अनिष्टहि हनकर शरनहि, लै शुभगति पहुँचावै॥
चंडिक क्षेत्रपाल बहु आदिक, शरण मूढ़ जे बांछै।
रोग क्लेश बहु दुःखहि लेकर, नरक परत कृत पाछै॥८४॥
जे भव अशरण जानि जगतमें, कुगुरु कुदेवनि कोई।
है परमेष्ट धरम तप आदिक, देह दुक्ख खय सोई॥
जो रत्नत्रय आदि चरण लहि, मुक्ति पुरीमें जावै।
ताहि अनंते सुख गुण पूरण, सांचौ शरण जु पावै॥८५॥

इति अशरण अनुप्रेक्षा।

द्रव्य क्षेत्र अरु कालहि, भावजु भव संसारहि पांचौ।
ताको आदि रु अंत न कोई, भ्रम भ्रम जिय दुख नाचौ॥
सुख दुख भय जड आतम तीनौ, केवल दुःखहि भुंजौ।
पंच प्रकार बना तरु भूमैं, सिंह व्याघ्र है गुंजौ॥८६॥
औदारिक अरु वैक्रियिक आदिक, पंच शरीर धरंतौ।
तीन लोकमें जेते पुद्गल, वर्तन अनुक्रम जंतौ॥
इहि विधि वार अनंतौ धर धर, भ्रमियौ कर्मन घेरो।
द्रव्य परावर्तन यह वर्ते, द्रव्य सँसार सुडेरो॥८७॥
(द्रव्यपरिवर्तन)

मेरु सुदर्शनके तल हेठ हि, अष्ट गोष्ठ थन सोहै।
तहँ तैं अष्ट दिशा तन धर धर, अध ऊरध तन जोहै॥
चौदह राजू लोक प्रमानै, याके सकल प्रदेशा।
श्रेणीवद्ध मरण जन्मांतर, क्षेत्र सँसारहि भेषा॥८८॥
(क्षेत्रपरिवर्तन)

उत्सर्पिणि अवसर्पिणि दोई, कोड़ाकोड़ी वीसा।
कालचक्र मर्यादा इतनी, तिन समयन वीत्या सा॥
समय समय धर जन्म मरण जिय, अन्त उपज नहि लेखै।
अनुक्रम सकल संपूरण कीनै, काल सँसारहि भेखै॥८९॥
(कालपरिवर्तन)

चारहु गतिकी आयु विचारो, उतकिठ जघन जु भेदा।
तिनके समय समय प्रति धारै, गति गति पूरन खेदा॥
नारक देव मनुष पशुके सब. भ्रमण चतुरगति न्यारै।
मिथ्यामतिधर लख चौराशी, जो नहि भव संसारै॥९०॥
(भवपरिवर्तन)

मिथ्यादिक संतावन बन्धन, अशुभ प्रणामन साधै।
सो वसु कर्म प्रकृति अड़तालिस, चारौं बन्धन बांधै॥
आतम भाव भये नहि कबहूं, जातें कारज होई।
भव संसार जु इहि विधि लहिजै, जीव अनादि जु सोई॥९१॥
(भावपरिवर्तन)

विषयनमें जड़ सुखकर मानै, वे दुख अधिक जु लीनै।
ज्यौं घृत तेल अगनिं,सन कीजै, अगनि प्रचंडित कीनै॥
प्राणी-जीव भ्रमत चिरकालहि, अन्त न पायो केहू।
रत्नत्रय आदिक व्रत धरिकै, भव जिय पार लहेहू॥९२॥
और अठारह नाते जिय त्रय, भव भव है विख्याता।
कबहूं पिता-पुत्र हो कबहूं, कबहूं त्रियकी माता॥
धर्म बिना प्राणी बहु भ्रमियौ, काल अनादि अजाना।
धर्म सहित सुख दुखहि दूर कर, जन्तु लहै निरवाना॥९३॥

इति संसारानुप्रेक्षा।

जनम होय एकाकी जगमें, मृत्युक एकहि सोई ।
एकत मैं जग केवल मैं तहँ, एक हि सुखमय होई ॥
एकहि रोग ग्रस्यौ बहु व्याधनि, एकहि वेदन भारी ।
एकहि देख परत नैनन सौं, एकहु अन्ध अँधारी ॥९४॥

यम अरु नियम व्रतहि गहि एकहु, सुरगति सुख्य उपाई ।
एकाकी तप साधि शिरोमणि, मुक्तिपुरीको जाई ॥
एकहु पाप करै सो भुंजै, दुर्गति दुःख लहानौ ।
सावद्[1] हिंसा निंद्य आदि कर, नरकहि देय पयानौ ॥९५॥

मात पिता अरु पुत्र कलित्र हि, स्वजन सकल नहि सातौ ।
एक चिदातमको मन ध्यावै, तिनहू गुनकौ नातौ ॥
तातैं अष्ट करम शत्रुनिको, रत्नत्रय असि हंतौ ।
मुक्ति सरूपी सुन्दर जग है, भुगतै सुख्य अनंतौ ॥९६॥

इति एकत्वानुप्रेक्षा ।

अन्य जु आतम पुद्गल अन्य जु, जन्म मृत्यु कहँ सोई ।
कर्म-संजोग सुख्य दुख भुगतौ, अती काल जहँ होई ॥
अन्य हि मात-पिता अरि बांधव, त्रिया पुत्र सब अन्या ।
हाट[2] प्रस्ताव सबै जुर आये, काज सरै नर मन्या ॥९७॥

सहजहि[3] वपु अर आतम जानौ, पृथक पृथक कर पेखौ ।
साक्षत मृत्यादिक समयहि लखि, आपुन गहि नहि लेखौ ॥

१—सावद्य पापारम्भसे सहित, २—बाजारके सदृश, ३—जन्मसे ही साथ साथ रहनेवाले ।

जब पुद्गलको जीव त्याग कर, अन्तहि थितिको कीवै।
मन वच कर्म संग ही चालै, फेर न वपुको छीवै ॥९८॥
कर्म काजे करवैलौं साथी, सुख दुख गति परनावै।
जबहि कर्मरस भोग करै निज, आतम ज्ञान चितावै॥
इन्द्रिय सकल पदारथ तत्वनि, आतम ज्ञानहि जानै।
पुद्गल भिन्न जुदौ जड़तामय, एकहि क्यों कर मानै ॥९९॥
इहि अंतर बहु साध पृथक कर, ज्ञान गुणहि पहिचानै।
वपु ये काय कछू नहि जानैं, कर्म शुभाशुभ ठानै॥
आतम ध्यान करैं योगीश्वर, काय हतनके काजे।
रहय चिदानंद सुख्य अनंतै, मुक्ति पुरीमें राजै ॥१००॥

इति अन्यत्वानुप्रेक्षा।

चौपाई।

शुक्ररुधिर अर मांस जु चाम, अस्थि सहित मल मूत्र कुधाम।
सप्त धातुको पुतरा सोइ, अशुचिवंत बुध भजै न कोइ ॥१०१॥
क्षुधा तृषा बहु जराजु रोग, अगिन समान ज्वलित संजोग।
ऐसी काय कुटीमें वास, ज्ञानवंत तहँ होय उदास ॥१०२॥
रागद्वेष अरु सकल कषाय, मोह मरोर वहै महकाय।
ज्ञानी पुरुष कहो क्यों रमै, पापी देह यही जग वमै ॥१०३॥
भरी स्वेदसों बहुत विकार, नेक सुगंध लगै नहि सार।
चर्महि माहि रूप है सोय, तासौं रम्य कहै बुध कोय ॥१०४॥
ऐसी देह मोख नहि करै, रोग लहै दुर्गति संचरै।
तप करि शोषत ज्ञानी जीव, स्वर्ग सुख्य लहि मुक्तिजु पीव ॥१०५॥

सब उर[1] नंतानंत[2] अकाश, तामें लोक नखते[3] वत जास ।
[अ]नादि शाश्वतौ बहु गुण भरौ, हरिहर आदि न काहू करौ॥१२६
अधो लोक चौखूंटो थान, मध्य लोक झल्लरी समान ।
ऊरध लोक मृदंगाकार, तीन लोक सब पुरुषाकार,॥१२७॥
चौदह राजू सबै उतंग, वातवलय बेड्यौ सरवंग ।
प्रथमहि तनु वाताहिको नाम, बीस सहस जोजन आयाम॥१२८॥
दूजो वातवलय घन कह्यौ, वीस सहस जोजनको लह्यौ ।
तिंती[4] घनोदधि मोटौ सोय, बीस सहस जोजनको लोय॥१२९॥
मूलहि तें इकराजू तंगें[5], सात सात चारौं दिश संग ।
तामें पंच गोलकै जेह, तिनके भेद कहौं कछु येह॥१३०॥
*प्रथमहि खंदर नामहि भेव, जम्बूद्वीप समान गनेव ।
दूजी अंडर नाम बखान, भरतक्षेत्र वत है उनमान॥१३१॥
तीजी गोलक नाम अवास, कोशल देश समान सुवास ।
चौथी पुलवि नाम है कही, नग्र अयोध्या वत है कही॥१३२॥
पंचम देह नाम लहि सोय, चक्रवर्ति मंदिर वत होय ।
सबमें नित्य निगोदहि जीव, उपजैं मरि मरि रहैं सदीव॥१३३॥

१–सब ओर, सब तरफ । २–अनन्तानन्त । ३–नक्षत्रके समान छोटा ।
४–तृतीय । ५–तुङ्ग–एक राजूकी ऊँचाई तक ।

* खधा असखलोगा अडरआवासपुलविदेहा वि ।
हेट्ठिल्लजोणिगाओ असखलोगेण गुणिदकमा ॥ १९३ ॥
जम्बूदीव भरहो कोसलसागेद तग्घराइ वा ।
खधडर आवामापुलविशरीराणि दिट्ठता ॥ १९४ ॥

—जीवकाण्ड ।

तहँ तै त्रस नाड़ी सुन भेव, तेरह राजू ऊँची लेव।
ताके मधि इक राजु विथार, तामें त्रस उपजैं संसार ॥१३४॥
छै राजूमें नरक जु सात, अरु तिहि अन्त भवन दश जात।
सब ही पूरब पर विस्तार, राजू इक इक हीन विचार ॥१३५॥
दक्षिण उत्तर सब ही सात, अब सुन पृथक पृथक सब भांत।
धम्मा पहिलहि तेरह पटल, रत्नप्रभा दीसै भू अडल ।१३६॥
बिले तहां हैं लाख जु तीस, उपजैं तहँ नारक दुख दीस।
दूजौ वंशा नरक हि नाम, पृथिवी प्रभा शर्करा ठाम ॥१३७॥
ग्यारह पटल जहां दुख खांन, बिल पच्चीस लाख उन्मान।
मेघा तृतिय नरक पहिचान, वालू वत आभा सब थान ॥१३८॥
बिले जु पन्द्रह लाख प्रमान, नव पलटनमें दुःख महान।
चौथौ अंजन नरक बखान, पंक प्रभा दीसै बहु ग्लान ॥१३९॥
पटल सात हैं ताके लीय, बिले लाख दश उपजै जीय।
पंचम आरिष्टा दुख धाम, धूम वर्ण दीसै अभिराम ॥१४०॥
पटल पंच पुनि ताके कहै, बिले जु तीन लाख सरदहै।
छठमौं मघवी नारक जेह, अन्धकार सम पृथिवी तेह ॥१४१॥
पटल तीन ताकै सुख नूंन, बिलै जु एक लाख पंचून।
सातम नरक माघवी नाम, महा जु अंधकार दुख धाम ॥१४२॥
पटल एक है दुखकी खान, पंच बिले जिय उपज प्रमान।
सातम तैं पहले लौं होय, पंक बहुल जल पृथिवी सोय ॥१४३॥
असुर कुमार प्रथम भवनेव, चौसठ लाख विमान गनेव।

१–सुखसे रहित।

दोहा—अधो लोक घनकार सब, इकसै छ्यानव तेह।
राजूसौं गन लीजिये, भ्रम नाशन सब एह ॥१५५॥

मध्यलोकका वर्णन।

चौपाई।

मध्यलोक अब सुनौ बखान, पूरव पर इक राजू जान।
दक्षिण उत्तर सात गनेह, तीन तीन दुइ दिशा सुनेह ॥१५६॥
त्रस नाड़ी भीतर उनमान, राजू एक सबै परवान।
द्वीप समुद्र असंख्य सु नाम, जम्बूद्वीप मध्य अभिराम ॥१५७॥
ताके मध्य सुदर्शन मेर, लवण समुद्र बहे चहुँ फेर।
सो वर्णन पूरव वरनयौ, पुनर उक्त सो फिर नहि भयौ ॥१५८॥

धातकीखण्ड द्वीपका वर्णन।

ताकौ घेर धातकी द्वीप, चार लाख जोजन सु महीप।
तामें पूरव पश्चिम जोय, विजय अचल हैं मेरु जु दोय ॥१५९॥
ताको कछु वर्णनको लहौ, जिनवाणी जैसो सरदहौ।
पूरव दिश पृथिवी है इती, लवणहितैं कालोदधि मिती ॥१६०॥
चार लाख चौड़ी उन्मान, ताके मध्य विजयगिरि जान।
सहसे चुरासी ऊँचौ सोय, सब विभूति प्रथमहि वत होय ॥१६१॥
करतै तहां विदेहै सहै, पूरव अपर दोय दिशि बहैं।
दक्षिण उत्तर इक्ष्वाकार, दोय मेरुके मेंड विचार ॥१६२॥
भरत दोय ऐरावत दोय, ताके मध्य हि इक इक सोय।
लम्बै चार लाख परवान, ऊँच विथारै निषधसम जान ॥१६३॥

१—चौरासी हजार योजन, २—चारसौ योजन।

तापर इक इक जिनवर गेह, अष्टोत्तर-शत प्रतिमा जेह।
दक्षिण इक्ष्वाकारहि निकट, भरतक्षेत्र षट खंडहि विकट॥१६४॥
लांबौ पूरब पश्चिम धार, चार लाख है दण्डाकार।
* क्षेत्र मध्य विस्तार गनंत, बार सहस जोजन निवसंत॥१६५॥
ऊपर इकशिय जोजन पांच, सत्रा पांचसै धनुष हि सांच।
दुगुण दुगुण कीजै अवदात, षट पर्वत अर क्षेत्र जु सात॥१६६॥
गंगा सरिताको सुन भेव, मूल चुरासी जोजन एव।
समुँदहि मिलि दश गुनी जु होय, दोय लाख परिवार जु सोय॥१६७॥
ऐसी सिन्धू नदी प्रमाण, क्षेत्र क्षेत्र प्रति दुगुणी जाण।
भरतक्षेत्र वत ऐरावता, तहँ इक्ष्वानग उत्तर युता॥१६८॥
कहौं विदेह किमपि विस्तार, जम्बूद्वीप चतुर्गुण धार।
लम्बाईको करौ बखान, लवण समुद्रतट सुनहु सुजान॥१६९॥
× एक लाख सैताल हजार, तिनमें क्रम क्रम बढ़ती धार।
मेरु निकटकी कही विदेह, दोय लाख अरु सहस गनेह॥१७०॥
बत्तीसहि ताको परमान, इक सय साढ़े अडसठ जान।
इतने जोजन गनिये सोय, अब कालोदधि तटको जोय॥१७१॥
मेरु निकट तैं पौने दुगुन, गिरिवक्षार विभंगा रवन।
यह विभूति पूरब बहु कही, ऐसै ही पश्चिमकी मही॥१७२॥

---

* आदि ६६१४$\frac{१२९}{२१२}$ योजन, मध्य १२५८१$\frac{३६}{२१२}$ योजन, अन्त १८५४७$\frac{१५५}{२१२}$ क्षेत्रके आदि, मध्य और अन्तिम परिधिका प्रमाण राजवार्तिक और त्रिलोकसारमे ऊपर लिखे अनुमार पाया ज़ाता है। यहां ग्रन्थकर्ताने क्षेत्रका विस्तार किस आधार पर लिखा यह मालूम नहीं पडता।

× भरतक्षेत्रके विस्तारसे विदेहक्षेत्र पर्यन्त क्रमसे चौगुना चौगुना विस्तार है।

परवत नदी कुटुंब बहु तेह, उपसमुद्र जुत जानो जेह।
नदी चतुर्दश लवण हि मिली, कालोदधि तेती हैं रलीं ॥१७३॥
जिन मंदिर उत्कृष्ट हि सर्व, आकृत्रिम कंचनमय दर्व।
इकसै अंठावनको है जोर, धातदि द्वीप वर्णियो थोर ॥१७४॥
ताको घेर समुद्रको वहै, आठ लाख कालोदधि लहै।
तामें जलचर जीव प्रमान, जल मीठो पीवे को जान ॥१७५॥

पुष्करवर द्वीपका वर्णन।

ताकौ घेर जु पुहुकर द्वीप, सोरा लाख जु जोजन हीप।
ताके मध्य जु बलयाकार, मनुषोत्तर है प्रबल पहार ॥१७६॥

मानुषोत्तर पर्वतका विस्तार आदि—

मूल चारसौ जोजन तीस, एक कोश ऊपर जानीस।
चौड़ो भूधर एक हजार, बाइस जोजन अधिक जु सार ॥१७७॥
एक सहस सतसौ इकवीस, जोजन महा उतंग जु दीस।
लंम्बौ एक कोड़ि परवान, लख पनतिस परवत मध्यान ॥१७८॥
सतसै चौविस गनौ विथार, हेम वरणकी शोभा सार।
चौदा द्वार गुफा हैं तहां, नदी चतुर्दश निकसी जहां ॥१७९॥
चार दिशा जिनमंदिर चार, विदिशा लघु सुर गृह अधिकार।
मानुष लोक मियाद अगाध, ताके भीतर पुहकर आध ॥१८०॥
तामें दोय मेरु राजंत, मन्दर विद्युन्माली संत।

१–मेरुपर ४०, कुलाचल १२, विजयार्ध ६८, चैत्यवृक्ष ४, वक्षारगिरि ३२, इक्ष्वाकार २=१५८

२–पुष्कर द्वीप, ३–४३०¼ योजन, ४–१०२२ योजन, ५–१७२१ योजन, ६–ऊँचा, ७–परिधि।

पूरव दिशको सुन व्यवहार, आठ लाखको लहि विस्तार ॥१८१॥
कालोदधितें आदि गनेह, मनुषोत्तर पर्यंत भनेह।
तास मध्य मन्दर गिरि दीस, सहस चुरासी ऊँचौ ईस। १८२॥
तास निकट कुरुद्वय दो वसें, और विभूति पूर्ववत लसै।
पूरव अपर विदेह जो लहै, कालोदधितें पर्वत[1] वहै ॥१८३॥
ऐसे ही दो इष्वाकार, दक्षिण उत्तर निषध प्रकार।
वहँते क्षेत्ररु षट[2] कुल सबै, पृथक पृथक सो जानो तबै ॥१८४॥
दक्षिण इक्ष्वाकार नजीक, भरतक्षेत्र दो दो दिस ठीक।
आठ लाखके दण्डाकार, अब ताको वरणौं विस्तार ॥१८५॥
अ[3]ट्ठावीस सहस गन तेह, चार शतक उनतिस अधिकेह।
इतनै जोजन कहै प्रमान, दून दून पर्वत्र क्षेत्रान ॥१८६॥
गंगा सिन्धू मूल विचार, त्रय शत अरु पैतालहि धार।
कालोदधि मिलि तैं दशगुनी, पुहकर समुदरली विसगुनी॥१८७॥
दुगुन दुगुन सब लीजौ जोर, इहिविधि पूरब दिशकी ओर।
सो पश्चिम जानो अवलोय, विधुन्माली गिरि तहँ जोय॥१८८॥
पूरव वत वर्णन अवधार, नदी चतुर्दश भेद विचार।
पूरब पश्चिमकी पहिचान, सात सात कालोदधि थान ॥१८९॥

१—मानुषोत्तर। २—छह कुलाचल। ३—यह विस्तार राजवार्तिकमें इस प्रकार लिखा है:—

आदि विस्तार १५७९ १७३/२१२ योजन। मध्य विस्तार ५६५१२ १९९/२१२ योजन। अन्त विस्तार ६५४४६ १३/२१२, योजन ग्रन्थकर्ताने किस आधार पर लिखा इसका पता नहीं।

सात सात मनुषोत्तर फोर, पुहकर उदधि मिली सब जोर।
पुहकरार्धे जिनगृह उत्कृष्ट, इकसै अंठावन जग दिष्ट ॥१९०॥
और विभूति पूर्ववत सोय, लघुमति कवि वर्णन नहि होय।
पुहकर उदधि द्वीपको घेर, जोजन बत्तिस लाख जु फेर ॥१९१॥
निर्मल जल गंगावत बार[1], जलचर जीव न होंहि लगार।
ताको घेर जु वारुण द्वीप, चौंसठ लख विस्तार महीप ॥१९२॥
ताको घेरहि वारुण सिन्ध, जोजन एक कोड़को लिन्ध[2]।
अरु अट्ठाइस लाख प्रमान, इतनौ गन विस्तार महान ॥१९३॥
तहँ तै क्षीर द्वीपवर नयौ, दोय कोड़ छप्पन लख ठयौ।
ताको क्षीरोदधि चहुँ फेर, पांचकोड़ बारह लख हेर ॥१९४॥
फिरि दधिवर द्वीपहि उन्मान, दश कोड़ी चौवीस बखान।
दधिवर उदधि घेरके सोइ, जोजन वीस कोड़ कर जोइ ॥१९५॥
अरु अडताल लाख निरधार, इतनौ है ताकौ विस्तार।
तहँ तें द्वीप इक्षुवर जान, जोजन चालिस कोड़ बखान ॥१९६॥
लाख छ्यानवै ऊपर धार, गनि सब लेहु तास विस्तार।
उदधि इक्षुवर ताहि घिराय, इक्यासी गन कोड़ लहाय ॥१९७॥
लाख बानवै है जो और, यह विस्तार कीजियो ठौर।
तहँ तै अष्टम द्वीप लहंत, नंदीश्वर नामहि निवसन्त ॥१९८॥
एक अरब अर त्रेसठ कोड़, लाख चुरासी जोजन जोड़।
इतनौ गनिये तिहि विस्तार, अब वरनौं लंबाई सार ॥१९९॥
सप्तम उदधि अंत निकटेह, सो भू गिरदाकार गनेह।

१–जल, २–लेना।

*नव अर्वहि सु विलालिस कोड, लाख पंचावन जोजन जोड़॥ २००
मध्यद्वीप लंबाई जान, गिरदाई सब गुनहु सुजान।
चौदह अर्व चुहत्तर कोड़, लख सैतालिस जोजन जोड़ ॥२०१॥
द्वीप अन्तकी परिधि गनेह, सब उनईस जु अरब भनेह।
पैंसठ कोड़ निन्यामव लाख, द्वीपहि तीन भेद्कर भाख ॥२०२॥
घनाकार अब वरनौं जोर, बीस अंक लिखिये तिहि और।
दोय लाख इकताल हजार, पंच शतक सतहत्तर धार ॥२०३॥
इतनै कोड़ाकोड़ी जान, ऊपर और सुनो बुधवान।
सोरह लख अड़ताल हजार, इतने कोड़ गनो सविचार ॥२०४॥
(२४१५७७१६४८००००००००००)
तामें चारों दिश शोभंत, बावन चैत्यालय जिन संत।
पूरब दिश वरनौं कछु तेह, अंजनगिरि पर्वत इक जेह ॥२०५॥
नील वरण इक शोभा रंग, सहस चुरासी जोजन तुंग।
इतनै ही गिरदा विस्तार, ताके मधि इक जिनगृह धार ॥२०६॥
गिरिके चहुँ दिश वापी चार, लाख महाजोजन विस्तार।
जलकर पूरित पहुप सरोज, चार घाट पैडन जुत जोत ॥२०७॥
वापिन मधि दधि मुख इक लेख, दश हजार उत्तुंग विशेख।
सो विस्तार कह्यौ धर लीक, उज्वल इक इक जिनगृह ठीक ॥२०८॥

---

*हरिवंशपुराणमे इस प्रकार बतलाई है—

आभ्यन्तर परिधि—एक हजार छत्तीस करोड बारा लाख दो हजार सातसौ त्रेपन योजन।

वाह्य परिधि—दो हजार बहत्तर करोड तेतीस लाख।

भीतर वापी घाटन माहि, द्वै द्वै रतिकर आठ गनाहि।
रक्त वरण शोभा जुत सोय, जोजन सहस एक अवलोय ॥२०९॥
इक इक जिनवर भवन समेत, ऐ तेरह पूरव दिश हेत।
तेरह दक्षिण पश्चिम गनौ, तेरह उत्तर दिश जुत भनो ॥२१०॥
सब बावन पर्वत विस्तार, ऊंचे लंबे ढोलाकार।
नन्दा नन्दोत्तर हैं आदि, महावापिका षोडश गीादि ॥२११॥
तहां इन्द्र जुत आवें देव, नन्दीश्वर द्वीपहिं जिन सेव।
गेरै द्वीप कुण्डल आकार, कुण्डल गिरि पर्वत अवधार ॥२१२॥
दशौं हजार जोजन सु उतंग, दोसै चालिस अधिक सुसंग।
अरु विस्तार जु पर्वत शीस, सहस पचत्तर दोसै वीस ॥२१३॥
चारहुं दिश जिन मन्दिर चार, कंचनमय शोभा अधिकार।
आवहिं विवुध दरशको जहां, इन्द्र सहित जिन बन्दन तहां ॥२१४॥

१—गाई गई है। २—ग्यारहवां। ३—कुण्डलगिरिका विस्तार वगैरह राजवार्तिक, त्रिलोकसार तथा हरिवंश पुराणमे नीचे लिखे अनुसार पाया जाता है। यहां कविने यह वर्णन किस आधार पर किया सो मालूम नहीं पडता।

	राजवार्तिक	हरिवंशपुराण	त्रिलोकसार
गहराई	१००० योजन	१००० योजन	×
ऊंचाइ	४२००० ,,	४२००० ,,	७५००० योजन
मूल विस्तार	१००२२ ,,	१०२२० ,,	१०२२० ,,
मध्य ,,	७०३२ ,,	७१६१ ,,	×
मुख ,,	४०२४ ,,	४०९६ ,,	४२४० ,,

तेरम द्वीप रुचक वर फेर, नाम रुचकगिरि पर्वत घेर।
संहस चुरासी ऊँचौ भार, इतनौ जोजन महा विथार ॥२१५॥
चार दिशा जिनगृह चहुँ संग, प्रातिहार्य जुत प्रतिशोभंत।
छपन कुमारी देवी लसैं, रुचकवासिनी जिनवर जसैं ॥२१६॥
तहँ तैं द्वीप असंख्य जु भये, संभूरमण अंतमौ ठये।
ताके मध्य जु गिरदाकार, नागेन्द्रहि पर्वत अतिभार ॥२१७॥
मनुषोत्तर ते परे विचार, नागेन्द्रहिके उरै सम्हार।
भोगभूमिवत पृथिवी कही, तिरयंच हि हिमवत सम सही ॥२१८॥
आधे द्वीप कर्मभू सोय, विकलत्रय जलचर जिय होय।
ताको घेर समुद्र महान, तिनको कछू सुनो उनमान ॥२१९॥
लवणोदधि वत सब व्यवहार, मध्यलोक मर्याद सुधार।
द्वीप समुद्र असंख्य प्रमान, तिनको कछू सुनो उन्मान ॥२२०॥

असंख्य प्रमाण।

राजू एक भाग वसु करै, तामें चार मेरु तैं परै।
संभूरमण उदधि दो भाग, संभूरमण दीप इक लाग ॥२२१॥
भाग एक दधि द्वीप असंख्य, ताको किमपि कहौं निरशंक।
जम्बूद्वीप समानहि कुण्ड, गहरो एक सहसको मण्ड ॥२२२॥
प्रथम शलाका कुण्ड प्रमान, प्रती शलाका दूजौ जान।

१—राजवार्तिक और हरिवंशमे रुचकगिरिका विस्तार ४२००० योजन और ऊँचाई ८४००० योजन बतलाई है। परन्तु त्रिलोकसारमे विस्तार और ऊँचाई दोनों ही ८४००० योजन बतलाये है।

२—इस पर्वतका दूसरा नाम स्वयप्रभाचल भी है।

महाशलाका तीजौ कह्यौ, अनवस्थित मापहि चउ लह्यौ ॥२२३॥
ताके सरसोंको परमान, अंक छियालिस गन बुधिमान।
उनिस सतानवे ग्यारह हाल, उनतिस अड़तिस अर पैंताल ॥२२४॥
तेरह सोरह अंकहि धर्यौं, छत्तिस पंद्रह वार जु कर्यौं।
[१९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६
३६३६३६३६३६३६३६१२]
उक्त अंक हिरदै सरदहो, निर्मल समकित मनमें लहो ॥२२५॥
प्रथम गर्त सरसों भर लयौ, द्वीप समुद इक इक डारयौ।
जब वह कुण्ड रीत सब जाय, दोय रहै सौ करहि उपाय ॥२२६॥
एक सरस राखै वह कुंड, एक धरै दूजै में मण्ड।
जिहि द्वीपहिमें सरस निसर्त, तेही द्वीप भरै वह गर्त ॥२२७॥
सो फिर सरसों भर जु चलाय, एक एक सो डारत जाय।
फिर वह गर्तामें इक रहै, सोय प्रथम कुंडहि धर तबै ॥२२८॥
वही द्वीपमें कुण्ड भरेय, फिर सरसों इक इक डारेय।
पीछे एक रहै जब सोय, सो पहिलेमें डारै जोय ॥२२९॥
यह विधि करत कुण्ड वह भरै, तब इक सरस दूसरै करै।
यह प्रकार जब दूजौ भरै, तब इक सरस तीसरै धरै ॥२३०॥
एही विधि सों तीजौं भर्ण, पूरव रीति करै सो पूर्ण।
संभू रमण समुद लौं अन्त, नामावलि यह जानौ संत ॥२३१*

---

* अन्तिम अनवस्था कुण्डमे जितने सरसो समावें उतना जघन्य परीता संख्यातका प्रमाण है। जघन्य परीतासख्यातके प्रमाणमे एक कम करनेसे उत्कृष्ट सख्यातका प्रमाण निकलता है। इस अनवस्था कुण्डके सरसोंके प्रमाणसे कई गुने अधिक द्वीप समुद्र है।

सो तिर्यंच लोक यह जास, अरु व्यन्तर देवनको वास।
तिन विमान हैं अनसंख्यात, एक एक जिनगृह विख्यात ॥२३२॥
दोहा—चैत्यालय उत्कृष्ट जुत, मध्यलोक परमान।
चउ सय अट्ठावन प्रमिति, व्यन्तर अधिक बखान ॥२३३॥

मध्यलोकके अन्तर्गत ज्योतिर्लोकका वर्णन।

चौपाई।

अब ज्योतिषको सुन विरतंत, बिन आश्रय नभ मांहि बसंत।
सूर्य-चन्द्र ग्रह नखत जु तार, बहु कुटुम्ब जुत पंच प्रकार ॥२३४॥
मध्यलोक पृथिवी तैं जान, ऊँचौ जोजन महा प्रमान।
*सात शतक नव्वे तहँ तार, तिहि तैं सूरज दश अधिकार ॥२३५॥
जोजन असी सूर्यसे चन्द्र, तहँ तै चार नखत सब वृन्द।
तिहितैं बुध जोजन चहु तुङ्ग, बहँतैं शुक्र तीन गुणपुञ्ज ॥२३६॥
गुरु मंगल शनि ये ग्रह तीन, तीन तीन ऊपर गन लीन।
रत्नजडित सबके जु विमान, पन्थ चलैं मेरु पर जान ॥२३७॥
तिनितैं कोइ अणू भुवि खिरै, कुमति कहैं देव यह मरै।
राहु केतु दो ग्रह पुनि श्याम, निकट रहैं रवि शशिके धाम ॥२३८॥
जोजन एक अधो ये चलै, रवि शशि इनके ऊपर भलै।
शशि अरु केतु दोउ इक जोट, दव्यौ चलै छायाकी ओट ॥२३९॥
दिन दिन छाया छूटत जाय, इक इक कला चंद्र प्रगटाय।
पूनौके दिन केतन अंक, सोहत षोड़श कला मयंक ॥२४०॥

---

* णउदुत्तरसत्त सया दस सीदी चदु दुग तिय चउक्कसु।
तारा रवि ससि रिक्खा, बुह भग्गव गुरु अंगिरार सणी॥

अंजन मणिकी झूलै माल, तिहि प्रतिबिम्ब श्यामता घाल।
ताको निरखि कहैं मतिमन्द, थाप्यौ जगत कलंकी चंद्र ॥२४१॥
फिर परमातैं दावे केत, छाया पडे उपरिकौ तेत।
मावसके दिन सुनो प्रवीन, दीसे हिमकर कला विहीन ॥२४२॥
इहि विधि राहु केतु द्वय सोय, तैर ऊपर शशि दावैं लोय।
घटै अमास राहुकी छाह, दावै सूरज कला जु ताह ॥२४३॥
ग्रहण कहैं सब अंजनी लोग, ताको भेद कहो घर जोग।
जब शशि सूरज-सप्तम थान, राहु सूर्य इक खेत निदान ॥२४४॥
चन्द्र ग्रहण ता निसमें लसै, जब पूनौ गति परमा वसै।
अब सुन सूर्य ग्रहणको भेव, दावै छाया राहु जु तेव ॥२४५॥
जास नक्षत्रहि रविको वास, वेही नखत अमावस जास।
राहु सूर इक थान गनेह, परमा सरसी मिलिकै तेह ॥२४६॥
सूरज गहन होय इमि रीत, छठमैं मास राहु अर नीत।
इहि विधि सत्य पदारथ सार, सरधौ मनमें करहु विचार ॥२४७॥
अब विमानकी संख्या लाग, जोजनके इकसठ कर भाग।
छप्पन चन्द्रविमान भनेह, सूरज अड़तालीस गनेह ॥२४८॥
भृगु गुरु बुध मंगल शनि थान, किंचित् ऊन कोश परमान।
अर्ध अर्ध कर घट पुन लेख, नखत हि तारागण जु विशेख ॥२४९॥
रतनमयी सब पटहाकार, तापर नग्र विभूति अपार।
बसैं देव देवनि जुत नेक, जिन चैत्यालय मण्डित एक ॥२५०॥

१—चन्द्रमा, २—नीचे ऊपर, ३—अज्ञानी लोग, ४—चन्द्र विस्तार $\frac{56}{61}$ योजन। सूर्य विस्तार $\frac{48}{61}$।

एक चन्द्र परिवार सुदीस, ग्रह जु अठासी उडु अठवीस।
अब तारागण गिनती जान, छ्यासट सहसरु नवसै मान ॥२५१॥
पचहत्तर ऊपर पुनि सोय, इतनै कोड़ाकोड़ी होय।
[एक चन्द्र तारा अंक—६६९७५०००००००००००००००]
भरतक्षेत्र तारागण सवै, सात सया पंचोत्तर फवै ॥२५२॥
[भरतक्षेत्र पर तारा अंक—७०५०००००००००००००००]
इतनै कोड़ा-कोड़ि प्रमान, तितनै दुगुन दुगुन पहिचान।
भरतक्षेत्रतैं दूनै जोय, हिमवतपर्वत पर अवलोय ॥२५३॥
हिमवनतैं दूनै परमान, हिमवत क्षेत्रहिमें जु बखान।
क्षेत्र हैमवत तें कर दुगुन, मह हिमवन परवत पर वरन ॥२५४॥
हरिक्षेत्र हि ताहीतैं दून, तिनितै दुगुन निषद्ध हि भून।
तितनै ही गण मेरुहि उरै, यह सब चन्द्र एक प्रति जुरै ॥२५५॥
यह विधि दुतिय चन्द्र परिवार, ऐरावततैं मेरु हि धार।
जम्बूद्वीप दोय रविजुता, भरत एक इक ऐरावता ॥२५६॥
दिनकर जब हि विदेहन जाय, भरतैरावत रैन लहाय।
तिनहि मार्ग इक गहि छह मास, उतरायण दक्षिणायन वास ॥२५७
लवणोदधिमें चन्द्रहि चार, धातकि द्वीप हुआ दश धार।
कालोदधि जु व्यालिस माघ, चंद्र बहत्तर पुष्कर आध ॥२५८॥
सब इकसै बत्तीस हि जोर, इतने हि रवि कहे बहोर।
इनै आदि ग्रह सबै बखान, ग्यारा सहस छसै परवांन ॥२५९॥
ऊपर सोरह कहै जु और, अब सब नखत गनौ तिहि ठौर।
तीन हजार छसै छ्यानवै, कहौ भेद तारागण सबै ॥२६०॥

लाख अठासी तीस हजार, ऊपर सात सयाय जु धार।
इतनै कोड़ाकोड़ी तार, इकसै बत्तिस चन्द्र प्रवार[१] ॥२६१॥
[अढ़ाईद्वीप तारा अंक—८८३७००००००००००००००००]
द्वीप अढ़ाईके सब तेह, मेरु पञ्च परदक्षिण देह।
पहुकरार्ध तैं बाहिर जहां, संभूरमण उदधि अन्त तहां ॥२६२॥
घंटाकार उंदै[२] कर रहें, सदा जहांके तहँ ही लहें।
सहस पचासहि जोजन लेव, परकालौ[३] भाषौ जिनदेव ॥२६३॥
चन्द्र जहां हैं रात्रि सदीव, सूरज जहां दिवस है सीव।
असंख्यात तिन कहै वखान, सोई जिनगृहको परमान ॥२६४॥
इकसै दश जोजन नभ मांहि, ज्योतिष पटल भिन्न२ जांहि।
मध्यलोक इमि वर्णन कहौ, जथा शास्त्र हिरदै सरदहौ ॥२६५॥

ऊर्ध्वलोकका वर्णन।

ऊर्ध्वलोक अब जो विख्यात, है उतंग सब राजू सात।
पूरब अपर सुनो विस्तार, मध्यलोक तैं बढ़ि क्रम धार ॥२६६॥
ब्रह्म स्वर्ग भर राजू पंच, घट क्रम लोक अंत इक संच।
दक्षिण उत्तर सब ही सात, पृथक पृथक अब सुनिये भांत ॥२६७॥
(सौ)धर्म प्रथम ईशान जु दोय, ताहि पटल इकतीस हि होय।
(वि)मान सकल सब साठ[४] जु लाख, इक इक जिनवर भवन जु साख।

१—परिवार, २—उदय, ३—ज्योतिर्वलय—मानुषोत्तरके बाद पचास हजार योजन आगे सूर्य और चन्द्रमाका प्रथम वलय है फिर उसके आगे इसी प्रकार लाख लाख योजनकी दूरीपर एक एक वलय है। प्रत्येक वलयमे चार चार सूर्य और चन्द्रमा अधिक अधिक होते जाते हैं, ४—सौधर्मके ३२ लाख और ऐशानके २८ लाख।

सनत्कुमार महेन्द्र जु नाम, सात पटल सोहै अभिराम ।
बीसै लाख तहँ कहे[1] विमान, सोई श्री जिनवर अस्थान ॥२६९॥
ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर कल्प, पटल चार सोहैं तहँ स्वल्प ।
विमान चार लाख सो वास, श्री जिन चैत्यालयसो जास ॥२७०॥
लांतव अरु कापिष्ट बखान, दोय पटल सोहैं अस्थान ।
सहस पचास विमान वसंत, सोई श्री जिनगृह निवसंत ॥२७१॥
शुक्ररु महाशुक्र अभिराम, एक पटल सोहै सुख धाम ।
चालिस सहस हि सबै विमान, इक इक जिनगृह है परमान ॥२७२॥
शतार सहस्रार दुइ स्वर्ग, पटल एक ताके बहुवर्ग ।
छह हजार तहँ कहे विमान, श्री जिनगृह जुत सबै बखान ॥२७३॥
आनत प्राणत दोई थोक, पटल तीन सोहै वह लोक ।
हैं विमान पंचसै इकताल, तिनमें इक जिनभवन विशाल ॥२७४॥
आरण अच्युत कल्पहि जान, तीन पटल सोभै शुभ थान ।
इकसै उनसठ ताहि विमान, तितने ही जिन भवन महान ॥२७५॥
कल्प लोक इतलौं वरनयौ, अब अहमिन्द्र ब्रह्मद्ध थयौ ।
ग्रैवक तीन अधोगन लेय, तीन पटल ताके अतनेय ॥२७६॥
[वि]मान एकसौ ग्यारह सोय, तितने ही जिनगृह अवलोय ।
मध्यम ग्रैविक पटल जु तीन, (वि)मान एकसै सात प्रबीन ॥२७७॥
ऊरध ग्रैवक हैं त्रय पटल, (वि)मान इंक्यानव सोहैं अटल ।
सोई जिन गृह लीजै जान, नैव अन नुतर[2] पन सुविमान ॥२७८॥

१—सनत्कुमारके १२ लाख और माहेन्द्रके ८ लाख, २—नव अनुदिश और पांच अनुत्तर विमान ।

ए सब त्रेशठ पटल जु भाख, तिहि विमान चौरासी लाख।
सहस संतानवे अरु तेईस, इक इक जिनमन्दिर सब दीस ॥२७९॥
तीन लोकके जिनगृह साख, आठ कोड़ि अरु छप्पन लाख।
सहस संतानवै चऊसै एक, ऊपर इक्यासी वर नेक ॥२८०॥
सदा सासुते सबै जु सोय, सौ जोजन लंबाई होय।
अरु पचास विस्तार महान, पंचहत्तर ऊँचै उनमान ॥२८१॥
तिनमें जिनप्रतिमा सोभंत, अष्टोत्तर शत ताहि गनंत।
धनुष पांचसै ऊँची काय, समोशरण मण्डित समुदाय ॥२८२॥
तिन सब प्रतिमाको कर जोर, ×नवसै कोड़ जु पच्चिस कोर।
त्रेपन लख सत वीस हजार, नौसै अड़तालीस समार ॥२८३॥
सर्वारथ तैं उचित* रवन्न, मोक्ष शिला, बारह जोजन्न।

सिद्धशिलाका वर्णन।

पटहावत सो गिरदाकार, ऊर्ध्व अणू नीचे विस्तार ॥२८४॥
पैंतालीस लाख है सोय, मोटी वसु जोजन अवलोय।
फटिक सरीखी उज्वल गनौ, तहँ तैं वातवलय तनु सुनौ ॥२८५॥
पौने सोरहसौ धनु महा, और भेद अब सुनियौ तहां।
[ऊपर जहां छत्र आकार, मोटौ सौ कोशहि इकधार ॥२८६॥

×नौसेपच्चीस करोड त्रेपन लाख सत्ताईस हजार नौसे अडतालीस इतनी अकृत्रिम प्रतिमाए है। + ऊँची। १–रमणीय। २–सर्वार्थसिद्धिसे १२ योजन ऊपर ४५ लाख योजन विस्तारवाली सिद्धशिला है। उसका आकार ऊपर उठे हुए अतिशय गोल छत्रके समान है अर्थात् नीचे विराट और ऊपर अणु। उसके ऊपर ३ वातवलय है। पहलेके २ वलय तीन तीन कोश मोटे है परन्तु तीसरा वातवलय पौने सोलहसौ धनुष मोटा है; उसीमे सिद्ध परमेष्ठीका निवास है।

जोजन लख पैंताल विथार, गिरदामयी तहां तैं सार।
माखी पंख सम पतरी सोय, मोक्ष शिला सो लागी जोयं]॥२८७
तनु वातहिमें तिष्टै एम, मानु² छिप्यौ पानी शशि जेम।
ता मधि अन्तरीक्ष तिष्ठही, सरब सिद्ध माथे सम सही॥२८८।
सो त्रय अवगाहन परवान, उतकिठ मध्य जघन्य बखान।
* पौनै सोरह से धनु तेह, ताके लघू भये जो येह॥२८९।
सत लख और सतासि हजार, तिनहि भाग, पन्द्रहसै धार।
सबै भाग खाली अध रहै, सवा पांचसै धनुषहि लहै॥२९०।
सो उतकिठ अवगाहन होय, बाहूबलि सम तन जिहि जोय।
× अब जघन्यके सुनिये भेव, पूर्वहि वर्णे लघु धन तेव॥२९१।
तिनहि चतुरगुन हाथ बहोर, साढ़े इकतिस लाखहि जोर।
ताकै नव लख भाग करेह, अधो भाग सब खाली तेह॥२९२॥
ऊर्ध्व भाग इक हूंठहि हाथ, सो जघन्य अवगाहन नाथ।

१—कोष्टकके भीतरका विषय अन्य शास्त्रोंमे नहीं मिलता।

२—मानों (उत्प्रेक्षावचक शब्द)।

*—१५७५ महाधनुषमे ५०० का गुणा करके लघु धनुष बनाए, क्योंकि महाधनुष लघु धनुषसे ५०० गुणा अधिक होता है। गुणा करने पर लघु धनुषका प्रमाण आया ७८७५०० सात लाख सतासी हजार पांचसौ, उसमे ५२५ धनुषका भाग देकर बराबर बराबर पन्द्रहसौ हिस्से किये। सो ऊपरके हिस्सेमे उत्कृष्ट अवगाहनावाले सिद्धोंका निवास है।

×—ऊपर जो लघु धनुषोंका प्रमाण बताया था, उसमे ४ का गुणा कर हाथ बनाये, सो हाथोंका प्रमाण हुआ ३१५०००० साढे इकतीस लाख, उसमे ३½ हाथका भाग देकर बराबर नौलाख भाग किये, उनमे ऊपरके भागमे ३½ हाथकी जघन्य अवगाहनावाले सिद्ध परमेष्ठी रहते है।

÷ चतुरथ काल लहै शिव सोय, नमई वर्षकेवली होय ॥२९३॥
मध्यम अवगाहन बहु भेव, सब विदेह तन पंच शतेव।
भरतैरावत और अनेक, क्रमसौं जानो आगम टेक ॥२९४॥
मध्यम अवगाहन बहु यहै, चर्म शरीर धार शिव लहै।
तामें अस्थि चरम नख केश, यहै ऊन निज तनतैं शेष ॥२९५॥
घनाकार सुन ऊरध लोक, जुदे जुदे भाषौ सब थोक।
मध्यलोक सौधर्महि जुगल, साढ़ै उनिसहि राजू अटल ॥२९६॥
सनत्कुमार महेन्द्र बखान, साढ़ै सैंतिस राजू जान।
ब्रह्म ब्रह्मोत्तर स्वर्ग जु दोय, साढ़ै सोरह राजू होय ॥२९७॥
जुगल कह्यौ लांतव कापिष्ट, साढ़ै सोरह राजू धिष्ट।
शुक्र महाशुक्र अभिराम, साढ़ै चौदह राजू जाम ॥२९८॥
शतार सहस्रार ए दोय, साढ़ै बारह राजू होय।
आनत प्राणत जुगलहि नाम, साढ़ै दश राजू गुणधाम ॥२९९॥
आरण अच्युत स्वर्ग बखान, साढ़ै वसु राजू उन्मान।
अहमिंद्र अरू मोक्ष पर्यंत, ग्यारह राजू सब निवसंत ॥३००॥
इहिविधि घनाकार हैं सर्व, इकसै सैतालिस गनधर्व।
अध ऊरध सबको कर लेख, राजू जोजन महा विशेष ॥३०१॥
पूर्व सात इक पंचहि एक, चौदह भए तिहि चौ त्रय लेख।

÷—जब चतुर्थकालमे भरतेरावत क्षेत्रमे ७ हाथकी अवगाहना होती हो उस समय यदि कोई ९ वर्षकी अवस्थामे केवली हो जावे तो सिद्ध अवस्थामे उनके शरीरकी अवगाहना ३½ हाथकी होगी, क्योंकि केवली होनेके बाद शरीरकी वृद्धि नहीं होती। पञ्चमकालमे ३½ हाथकी अवगाहना होती अवश्य है परन्तु पञ्चमकालके मनुष्य मोक्ष नहीं जा सकते।

१—चारों तरफ.

दक्षिण सप्त गुन साढ चौवीस, ऊँचौ चौदासौ कर वीस ॥२०२॥
सो त्रय सय अरु तैतालीस, घनाकार यह विधि अवनीस* ।
तीन लोकमें पृथ्वी जेह, किमपि भेद वरणौं कछु तेह ॥२०३॥

आठ पृथिवीओके नाम ।

नारक भावन वासी सबै, मानुष पृथ्वी ज्योतिष फबै ।
कल्पलोक अरु ग्रैवक ठाठ, [स]र्वार्थसिद्धि तहँ मोक्षजु आठ ॥२०४॥

दोहा—गोलक× इक पृथिवी कही, नरकमांहि उनचास ।
भावन षोडश अवनि जुत, मध्यलोक इक वास ॥२०५॥

---

* पूरव पच्छिम तले सात, मधि एक बखानी ।
पच स्वर्गमे पांच अन्तमै एक प्रवांनी ॥
चहुँ मिलाय चहुँ अस, तीनि साढे परमानौ ।
दच्छिन उत्तर सात साढ चौवीस बखानौ ॥
ऊचा चौदै राजु गुणौ, अधिक तितालिस तीनसै ।
यह घनाकार तिहूँ लोकको केवल ग्यान विषै लसै ॥११॥
चरचागतक पृष्ठ १७–१८ ।

अर्थ—यह लोक तलीमे पूर्व पश्चिम सात राजू, मध्यमे एक राजू, पांचवे स्वर्गमे पांच राजू और अन्तमे एक राजू चौडा है। इस तरह चारो स्थानोकी चौडाईका जोड १४ राजू होता है। इसके चार अश करो अर्थात् चौदहमे चारका भाग दो तो साढे तीन होगे। इस साढे तीनमे लोककी दक्षिण उत्तरकी मुटाई सात राजूका गुणा कर दो तो २४॥ साढे चौवीस होगे। और फिर इस चौडाई और मुटाईके गुणनफलमे १४ राजू ऊचाईका गुणा कर दो तो ३४३ राजू होंगे। यही तीनों लोकोका घनफल है जो भगवान्‌के केवलज्ञानमे भासमान होता है।

—श्री० नाथूराम प्रेमी ।

× पटल ।

ज्योतिष नभमें तिष्ठ ही, त्रेशठ देव महीस।
मोक्ष एक, सब जोरि इमि, इक सय अरु बत्तीस ॥२०६॥

पांच पैंतल्लाओके नाम।

प्रथम नरक पहलौ पटल, द्वीपं अढ़ाई जाल।
ऋजु विमान सर्वार्थ सिध, मोक्ष पांच पैंताल ॥२०७॥

चौपाई।

इहि प्रकार लोकोत्तम जान, सुख दुख दायक है जगथान।
छह द्रव्यनि जुत भर्‌यो सदीव, ज्यों घट सुई शर्करा घीव ॥२०८॥
पुद्गल जीव मिलौ भ्रम ओर, बँध्यो फिरै कर्मनकी डोर।
सुर नर नारक पशुगति मांहि, त्रस थावरमें रुल्यौ सदाहि ॥२०९॥
अब यह करन लब्धिको पाय, सुपनै सम संसार दिखाय।
रत्नत्रय तप साधौ जतन, कर्म दाहि कर मुक्तिहि धरन ॥२१०॥

इति लोकानुप्रेक्षा।

दुर्लभ ज्ञान चतुर्गति मांहि, भ्रमत भ्रमत मानुषगति पाहि।
जैसे कोई दरिद्री रहै, कर्म संजोग रत्ननिधि लहै ॥२११॥
अरु उत्तम कुल जन्म जु होय, आरजखण्ड मुक्तिपद सोय।
आयुपूर्ण पंचेन्द्रिय सुक्ख, निर्मल मत धर कोई न दुःख ॥२१२॥
मन्द कषाय तजै मिथ्यात, विनय गुनन जुत है विख्यात।
दुर्लभ देव शास्त्र गुरु पाहि, कल्प वेल फैलो जगमांहि ॥२१३॥
समकित दरशन ज्ञान जु धीर, तप इत्यादिक लहि भव वीर।
सब सामग्री दुर्लभ पाय, मोहादिक हनि मुक्ति लहाय ॥२१४॥
जो मिथ्यात प्रमाद कराय, बूढ़ै भव वारिधिमें जाय।

पापहि तजि चढ़ि धर्म जहाज, मुक्तिपुरीको पावै राज ॥२१५॥

इति बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा।

पाले धर्म जतन कर जबै, मुक्ति महासुख पावै तबै।
धर्म सहित जो मरण करेह, भव भव सुक्ख लहे धर नेह ॥२१६॥
भव समुद्रमें बूडत जीव, धर्म जहाज पार लहि सीव।
धर्महि तैं तीर्थंकर होय, धर्महि तैं चक्रीपद सोय ॥२१७॥
उत्तम क्षम अरु मार्दव अंग, आर्जव सत्य शौच निरभंग।
संजम तपहि त्याग मन आन, आकिंचन ब्रह्मचर्य बखान ॥२१८॥

इति दशलक्षण धर्म नाम।

गीतिका छन्द।

दान तीरथ करहि जप तप, व्रतहि जुत भुवि शयन है;
पुनि ध्यान धर वनवास, पुनि जन आश शिवपदकी चहै।
कोप अगनि न बुझ्यो मनकी, कार्ज सब निष्फल वहै;
जब हि सब जिय भजहु धीरज, अंग उत्तम क्षम यहै ॥२१९॥
जाति कुल बल रूप प्रभुता, लाभ विद्या तप लयो,
वह अष्ट मद जुत मत्त, ज्यों गज जगत सब नीचो ठयो।
जब हि मान विध्वंस कीनो, जीव सब रक्षित भयो;
भजहु समता अंग मार्दव, मोक्ष मारग पद दयो ॥२२०॥
आदि अन्त जु जगत भ्रम भ्रम, कष्ट कर मानुष भयो;
तदपि माया जुत फिरै जन, विषय हित जग वंचियो।
आर्जवंग हि शुद्ध मन जब, दान व्रत प्रभु पूजयो;
कुटिलता तज आतम भज, जो शिवहि मुख मो रच्यो ॥२२१॥

१—मार्दव।

लोभतैं जग झूठ वच कह, लोकमें अपजस भये;
ताहि तजिकै सत्यवादी, जिनहि पद सुरगन नये।
सत्यतैं गुण ज्ञान लहिये, सत्यतैं कुल उच्चये;
सत्यतैं शिवलोक वसिये, सत्य अंगहि सेवये ॥३२२॥
शौचसे मन रहे निर्मल, बाह्य आभ्यंतर सदा;
प्राप्त ध्यान जिनेन्द्र पूजा, अष्ट द्रव्यहि संमुदा।
भाव अविचल शुद्ध राखै, जिनहि शिवसुंदरि वरैः
शौच अंगहि भजहु पंचम, धर्म जुत भव अपहरै ॥३२३॥
संजमेन्द्रिय पंच दंडहि, संजमी नहि भव वहै;
संजमी षटकाय रक्षा, संजमी शुचि तन रहे।
संजमी लहि सुख्य सुरपति, संजमी व्रत मंड है;
अब षष्ठमो भज अंग संजम, ताहितैं शिवपद लहै ॥३२४॥
तपहि द्वादश भेद भजिलैं, बाह्य षट षट अंतरैं;
तपहितैं वसुकर्म जीतहि, तपहि ध्यानहि संचरै।
तपहितैं सुरगति वसैरो, तप हि शक्र हि पद धरै;
तप हि केवलज्ञान प्रगट हि, तप हि निरवाण हि करै ॥३२५॥
त्याग अंग हि भजहु अष्टम, दान चारौं विधि धरौ।
आहार औषधि अभय जीवन, ज्ञान शास्त्र हि जुत करौ ॥
उत्कृष्ट मध्यम जघन पात्रहि, भावसौं पायनि परौ।
भोग भुवि सुर सुख्य भुंजहि, फेर भवदधि उत्तरौ ॥३२६॥
नवम आकिंचन जु अंग हि, सकल परिग्रहको चयौ।

१—पार होओ।

बाह्य दश हि जु क्षेत्र आदि हि, चौदहा अभि अंतयौ ॥
साधु निश्चय ग्रन्थ पालहिं श्रावक हि व्यौहार यौ।
सुरग गति फिर मोक्ष पहुंचै, धर्म सौं भवि परनयौ ॥३२७॥
शील सागर ज्ञान नागर, चित्त चारित धारिकै।
शीलवंत हि इन्द्र वंदहि, अहमिन्द्र पुनि अवतारकै ॥
शील भज सुख मोक्ष दायक, भवहि दुःख निवारकै।
नव वाड़ जुत ब्रह्मचर्य पालहु, मन वचन तन धारिकै ॥३२८॥

उक्तं च–कवित्त।

तिये थल वास प्रेम रुचि निरखन, दे परीक्ष भाषत मधुबैन।
पूरव भोग केलिरस चिन्तन, गरुव अहार लेत चित चैन ॥
कर शुचि तन शृङ्गार बनावत, तिय पर्यंक मध्य सुख सैन।
मन्मथ कथा उदरभर भोजन, ए नव बाड़ जान मत जैन॥३२९॥

चौपाई।

ए दश लक्षण धर्म विख्यात, मुक्ति वृक्षको बीज सुहात।
दुँहि कर्मनको हंता सोइ, संपूरण सुख करता होइ ॥३३०॥
रत्नत्रय तप करै मुनेश, मूलोत्तर गुणपालक देश।
तीन लोकमें दुर्लभ धर्म, समवसरन लक्ष्मीको शर्म ॥३३१॥
धर्म मन्त्र आकर क्षर्ण करै, स्वर्ग योषितो इच्छा धरै।

१–अन्तरङ्ग, २–स्त्रियोंके पास रहना, प्रेमपूर्वक स्त्रियोंको देखना, उनके साथ मधुर सभापण करना, पहले भोगे हुए भोगोंका स्मरण करना, कामोद्दीपक–गरिष्ठ आहार लेना, शरीरको शृङ्गार करना, स्त्रीके शयन करनेके पलंग वगैरह पर शयन करना, कामवर्द्धक कथाएं कहना और उदरभर विकारी भोजन करना ९ वाड कहलाती हैं। ३–द्रव्यकर्म भावकर्म अथवा घातिया और अघातिया दोनों तरहके कर्म, ४–उत्सव, ५–स्वर्गकी स्त्रियां देवांगनाएं।

तीन जगतमें दुर्लभ इष्ट, पद पदमें मिलियौ संतुष्ट ॥३३२॥
मात पिता अरु मित्र जु धर्म, चिन्तामणि कल्पद्रुम शर्म।
कामदेव नव निधि भंडार, सहगामी भव भव हितकार ॥३३३॥
यह जग धन्य पुरुष है सोय, तजि परमाद धर्म भजि कोय।
जे शठ मूढ गमैहि विन धर्म, विन सींगनके वृषभ विशर्म ॥३३४॥
यही जान भवि धर्म हि करै, तजै पाप दिन दिन विस्तरै।
धर्म शुकल ध्यानहि लवलीन, मुकति वधूके सुख आधीन ॥३३५॥

इति धर्मानुप्रेक्षा।

अडिल्ल—ये अनुप्रेक्षा जान मूल वैरागको।
बहु गुण रत्न विधान हन्यौ दुख रागको॥
जिन मुनि बुधिजन सकल तास सेवित जहां।
पाप दूर कर देहि अपर यातैं कहा ॥३३६॥

गीतिका छंद—इहि भांति बारहभावना, भवि सदा हिरदै भावही।
अंततैं जु अतीत गुण निधि, मुक्ति पंथ सु पावही॥
भवहरण विमल सिद्धान्त साधक, सूत्र उद्भव जानिये।
सुर आदि सकल विभूति दायक, 'नवलशाह' बखानिये॥३३७॥
बालपन सुख भोग कीनौ, सुर असुर सेवा करै।
सुर जनित सकल विभूति क्रीड़ा, करत निशदिन मन हरै॥
पुनि काललब्धि विचार प्रभु, जहँ परम उर वैरागियौ।
श्री वीर जिन कर जोर प्रनमौं, चित्त शिव पद लागियौ ॥३३८॥

इति कविरत्न श्री नवलशाहजी विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमे भगवानका कुमारकाल, संवेग तथा अनुप्रेक्षाओका वर्णन करनेवाला नवम अधिकार पूर्ण हुआ।

१—बिताते है, २—बैल।

दशम अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा—भोग काम विरकत भये, गुण संवेग बढ़ाय।
मुकति वधू अनुराग हिय, नमों वीर जिनराय ॥ १ ॥
द्वादश भावन विविध विधि, भावैं प्रभु वैराग।
तिहि अवसर लोकान्त सुर, आये मन अनुराग ॥ २ ॥
सारस्वत आदित्य द्वै, वह्नि वहुर रुण चार।
गर्दतोय पंचम कहे, तुषित छठम गुण धार ॥ ३ ॥
अव्याबाधनु सातमौ, रिषमेष्टक वसु जान।
सब विमान ये आठ कहि, तिनमें देव प्रमान ॥ ४ ॥
तिनकी संख्या लीजिये, चार लाख गन लेह।
सहस बहत्तर जानिये, विंशोत्तर अधिकेह ॥ ५ ॥

चौपाई।

ब्रह्म स्वर्गके अंतिम वास, लौकान्तिक शुभ नाम प्रकास।
ब्रह्मचारि उर सदा विराग, तीन ज्ञानधारी बड़भाग ॥ ६ ॥
हैं एका अवतारी सोय, प्रनमैं तिनहिं इन्द्र सुर जोय।
प्रभु दीक्षा कल्याणक काज, आवें सकल महोत्सव साज ॥ ७ ॥
महावीर जिनवर जब देखि, अपनो जन्म सफल कर लेखि।
तीन प्रदक्षिण दे शिर नाय, प्रणमैं भुवि कर शीस लगाय ॥ ८ ॥

१—सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध, और अरिष्ठ ये आठ लौकान्तिक देवोके विमान है।

दोहा—परम भक्ति उरमें बढ़ी, विरकत वचन सुनाय।
पुनि अस्तुति आरम्भ किय, लौकान्तिक सुरराय॥ ९॥

लौकान्तिक देवोंके द्वारा भगवान्‌का सम्बोधन होना।

चौपाई।

तुम प्रभु तीन जगतके नाथ, तुम गुरुमें गुरु महा सनाथ।
तुम ज्ञानिनमें ज्ञानी सर्व, भव्य जीव बोधक गुणधर्व[1]॥१०॥
विश्व ज्ञान परकाशक भान[2], सकल पदारथ वेदक वान।
सो सब बोध प्रगट जग भयौ, भव्यजीवको विकलप गयौ॥११॥
जब उदयाचल आवे भान, निश नम गयौ जग्यौ जगवान।
तीन लोक तुम उदय कराय, मोह नीद भग गई पलाय॥१२॥
निज नियोग[3] हम आये देव, तुम संबोध सकै कौ एव।
प्रभुकी भक्ति न हृदय समोय, मुख उचार करावै सोय॥१३॥
तीन ज्ञान तुम नैन सु ठार, हेयाहेय[4] सकल वेत्तार।
तुम शिक्षा दे समरथ नाहि, दीप तेज जुगनू द्युति जाहि॥१४॥
तुम प्रभु तीनें योग उर ल्याइ, मोह महा अरि विजय कराइ।
अब निज पदकी कीन्हीं चाह, प्रनमौं तीन जगतके नाहं॥१५॥
कोई प्रभु तुम अस्तुति पाय, दुर्लभ धर्म जहाज चढ़ाय।
भववारिधि है अगम अथाह, उत्तर गहै शिवपुरकी राह॥१६॥
कोई सुन धर्म हि उपदेश, रत्नत्रय उर धैर महेश।
ता फल पावहि उत्तम थान, शुभ सरवारथसिद्धि महान॥१७॥

१—धारण करनेवाले, २—सूर्य, ३—कार्य-ड्यूटी। ४—हेय-छोड़ने योग्य, ४—अहेय-नहीं छोडनेके योग्य, ५—मन, वचन और काय इन तीन योगोंको स्थिर करके ६—नाथ।

तुम वच-सूरज किरण प्रकाश, तम अज्ञान छिनकमें नाश।
विश्वतत्वको अर्थ बढ़ाय, दीसे शिव मारग सुखदाय ॥१८॥
तुम अभीष्ट-सुख-सिद्ध कराय, अखिल-वृद्धि-दायक जिनराय।
हो प्रभु स्वर्ग मोक्षके गेह, भविजन उर नाशन संदेह ॥१९॥
जे नर मोह पंक गस रहै, तिनके हस्त कमल निज गहै।
धर्म तीर्थ वरतावनहार, तुमको शिवदासी सम सार ॥२०॥
तुमरे वचन महा गंभीर, मय वैराग्य वज्रसम धीर।
मोह महा पर्वत सम दण्ड, तिनकौ चूर करै शत खण्ड ॥२१॥
भव उपदेश करैं बहु भेव, पापी पाप बढ़ावै देव।
कामी काम सक्त अज्ञान, तिन्हें हनौ प्रभु ज्ञान कृपान ॥२२॥
कोई प्रभु तुम भक्ति बढ़ाय, सेवैं पादांबुज उर लाय।
षोडशकारण भावन भाय, तिन्हें करत अपने सम राय ॥२३॥
इन्द्रिय मोह शत्रु दुखदाय, ता विपसौं कंपै भविकाय।
तुम संवेग वचन निर्दोष, अमृत वत पीवै चित पोष ॥२४॥
दुर्जय आरत रौद्र निदान, और परीषह सुभट महान।
क्षमाभावकी फौज चढ़ाय, जीतै सुभट महाभट राय ॥२५॥
मोह महा अरि विजयीवान, घातिकर्म नाशन भगवान।
वीर धीर प्रभु तुम अविकार, भव्यजीवके तारणहार ॥२६॥
सुरनर आदि सबै जगजीव, होंहि काल सन्मुख जु सदीव।
तप कर हनौ ताहि जिनदेव, भव्य शिवालय करता एव ॥२७॥

१–मनवांछित सुख, २–सब पदार्थोंकी वृद्धिके देनेवाले, ३–ज्ञानरूपी तलवार, ४–चरणकमल।

प्रनमौं सब सुखदायक स्वामि, प्रनमौं गुणबारिधि शिरनामि।
प्रनमौं मुक्ति कामिनी कंत, जगत प्रसिद्ध उदित अरहंत॥२८॥
प्रनमौं तुम निस्पृह जिनदेव, अंग भोग सुख कीनौ छेव[1]।
अरु सस्पृह प्रनमौं कर सेव, मुक्ति श्री साधक सुख एव॥२९॥
प्रनमौं अद्भुत वीरज धार, ब्रह्मचारि तुम बालकुमार।
प्रनमौं विरकत राजभंडार, सदा शाश्वतौ पद विस्तार॥३०॥
कृपासिन्धु[2] तुम वीर जिनेश, जुग कर जोर नमौं जोगेश।
प्रनमौं तीन लोकके मित्त, बुधिसागर वन्दौं धर चित्त॥३१॥
बहु प्रकार अस्तवन जिनेश, जन्म जन्म मुहि मिल्यौ महेश।
तुम दातनिमें दाता एव, तप चारित्र सिद्ध कर देव॥३२॥
इत्यादिक प्रभु शक्ति अपार, को बुध भक्ति करै लहि पार।
बाल कुमार धरौ वैराग, आर्ति मोह मद हनि बड़भाग॥३३॥

दोहा—यह विधि बहु अस्तुति करी, लौकान्तिक वरदेव।
विविध प्रार्थना प्रकट कर, निज नियोग स्वयमेव॥३४॥
परम पुण्यको उदित करि, थुति जुत पूजा कीन।
चरण कमल जुग प्रणमि कर, गये स्वर्ग परवीन॥३५॥

चौपाई।

तब सब चतुरनिकायी देव, घंटा आदि भयौ रव भेव।
जान्यौ संजम उत्सव सबै, निज निज वाहन साजे तबै॥३६॥
सजकै सकल विभूति निदान, आये कुंडलपुर जिन थान।
भक्त हिये उत्साह अनेक, रुंध्यौ पुर वन मारग सेक॥३७॥

१—अन्त, २—दयाके समुद्र।

छाय रह्यौ नभ सकल विमान, देखै जिनगुण परम निधान।
प्रभुको सिंहासन बैठार, सब सुरपति हिय हर्ष विचार॥३८॥
हेम[1]-कुम्भ उन्नत गंभीर, भर ल्याए क्षीरोदधि नीर।
प्रभुको तहँ अभिषेक कराय, अरु पूजा कीनी समुदाय॥३९॥
गीत नृत्य वादित्र बजाय, जय जय शब्द करयौ अधिकाय।
तीन लोक भूषण जिनराय, कंठमाल सुरपति पहिराय॥४०॥
मात पिता बांधव परिवार, जान्यौ जिन वैराग्य विचार।
महामोह उर कीनों घनौ, मानों वज्रपात तन हनौं॥४१॥
कहिकै मधुर वचन जिनदेव, संबोधै सब परिजन एव।
जो वैराग्यजनित है धर्म, सो विधि भेद बताया पर्म॥४२॥
तजि बांधव परिजन समुदाय, गृह लक्ष्मी नहि राज्य सुहाय।
उरमें अति संवेग बढ़ाय, दीक्षा लौं लागी जिनराय॥४३॥
तब सुरेश इक शिविका रची, हेममयी रतननि कर खची।
सूर्य चन्द्र छबि देख छिपाय, तप लक्ष्मीको व्याहन जात॥४४॥
प्रथम लही शिविका भुवि राय, सात पैंड़ अति हर्ष बढ़ाय।
पुन खग[3]पति लिय सातौं पैंड़, नभ गतिधर पुनि निज मैंड़॥४५॥
अपने अपने कंधाधार, लीनी सुरपति हर्ष विचार।
धर्म राग रस सबनि बढ़ाय, जय जयकार करै अधिकाय॥४६॥
आसन जुम्मक वाही जान, भवनपती दश[2] भेद बखान।
दशहू दिशतैं हरष बढ़ाय, करै पहुप वरषा समुदाय॥४७॥

१—सुवर्ण कलश। २—स्थान, ३—विद्याधरोंके राजा।

मन्द पवन सुरगंध समेत, वातकुमार करै निज हेत।
शक्र सबै आनन्द बढ़ाय, बहु देवी सुरगण समुदाय ॥४८॥
कोलाहल उत्सव अति करै, भक्ति भाव हिरदैं आदरै।
पुरते नभ वारिधि लौं सोय, रूंध्यौ नभ मारग घन होय॥४९॥
दुन्दुभि नगर बजे अधिकार, सब विधि वरनत लहै न पार।
सुर नर्तक नाटकगति करैं, अति विचित्र उपमा मन हरैं॥५०॥
मोह महा अरि विजय वखान, जसगुन गीत कला विज्ञान।
गावैं ज्योतिष किन्नर देव, परम हुलास करैं जिन सेव॥५१॥
ध्वजा छत्र छायौ नभ भान, बढ्यौ प्रमोद गंग उन्मान।
षट देवी श्री आदिक जहां, दिक्कुमारिका आई तहां॥५२॥
इत्यादिक माहात्म्य कराय, वीजमान प्रकीर्णक[1] आय।
सितच्छत्र[2] शिर शोभै जोय, दिपहि अंगभूषण जुत सोय॥५३।
सौधर्मादिक सुर असुरेश, सब विभूति वरनैं नहि शेष।
पूरब दिश नंदन वन जान, ले आये प्रभुको तिहि थान॥५४॥
प्रभु उर परम विराग सुहाय, आरत रौद्र हनन जगराय।
शिव मारग साधन अनुराग, सुख कल्याण देन बड़भाग॥५५॥
देख सबै उत्साह अनेक, भविजन मन कछु करैं विवेक।
है अभुंज[3] संपति सुख गेह, करौ अमल वैराग सनेह॥५६।
देख्यौ राज्यभार प्रभु छोड़ि, देवजनित सुख त्यागे कोड़ि।
बाला पनैं काम रिपु हन्यौ, उर संवेग बढ़ायौ घनौ॥५७॥

१—चमर, २—सफेद छत्र, ३—नहीं भोगनेके योग्य।

यह विचार मन हर्ष बढ़ाय, मन वैराग धरै अधिकाय।
मोह मदन आरतिको हनै, हिरदै पंच परम गुरु भनै ॥५८॥
कोई सूक्षम बुद्धी जीव, भव सागरमें रुल्यौ सदीव।
देख स्वर्ग संपति सुख गेह, मनमें सो चितवि शठ येह ॥५९॥
मोह काम ये किहि विधि गमै, तपसा दुखमें कैसे रमै।
सो दारिद्री कुष्टी होय, पार न पावै भवदधि सोय।६०॥
कोई प्रभु वैराग्य विचार, अपने जिय हित धरैं समार।
विन संवेग सफल नहीं काय, जीवौ सकल अकारथ जाय ॥६१॥
कोई श्रावकव्रत दृढ़ करै, ग्यारा प्रतिमा अन्तर धरै।
पंच करम गुरु हिरदै जाप, दूर होहि भव भवके पाप ॥६२॥
इहि विधि सब नर करैं प्रमान, सुर अर असुर भक्ति उन्मान।
तिहि अवसर पुरजन सो आय, मात पिता परिजन समुदाय ॥६३॥
पुत्र विछोह ताप अधिकाय, तन मन वेलि गई मुरझाय।
रुदन करै बहु व्याकुल होय, दुख विलाप जुत विह्वल सोय ॥६४॥
पुत्र पुत्र कर रटै अपार, हाहाकार करैं मन हार।
कब देख्यौं इन नैनन तोहि, कब तनको दुख नासै मोहि ॥६५॥
तुम विन को यह बाजी[१] चढ़ै, तुम विन माय मायको रढ़ै।
तुम विन नरपति सुरपति आय, काको नवैं शीस भुवि लाय ॥६६॥
तुम अति कोमल बालकुमार, तप जैसे खांडेकी[२] धार।
घोर परिषह है बाईस, सो उपसर्ग अनेक सरीस ॥६७॥
पंचेन्द्रिय दुर्धर मातंग[३], तीन लोक विजयी सरवंग।

१—घोड़ा। २—तलवारकीधारके समान कठिन। ३—हाथी।

अरु कषाय है अति बड़वीर, किहि विधि जीत सकौ सुत-धीर ॥६८॥
कैसे एकाकी वन मांहि, गिरि कंदर निवसौ सुत काहि ।
यह प्रकार बहु करहि विलाप, तब बोले सुरपति निज आप ॥६९॥
भो देवी उर धीरज आन, मेरे वचन सुनो निज कान ।
तुम सुत तीन जगत भरतार, अद्भुत विक्रमको नहि पार ॥७ ॥
भवसागर दुख पूरव सहै, ताके भेद वरण सब कहै ।
यह विचार इन बाल कुँवार, दीक्षा उर धारी अविकार ॥७१॥
आप तरै अरु तारै और, तीन लोक पति है शिरमौर ।
निर्भय यथा सिंह वन रहै, पुरजन जाकी सीम न गहै ॥७२॥
देवी तुम सुत जग गुरु सार, मोहादिक बंधन निरवार ।
भवदधि तारन तरन महेश, किम गृह रमै सुख्य तहँ लेश ॥७३॥
तीन ज्ञान हैं नैन विशाल, जानै सकल चराचर जाल ।
मोह कूप जे परे अजान, तिनकौ काढ़नहार निदान ॥७४॥
तुम अपने उर देखो टोय, शोक महा अघकारी होय ।
करो धर्म अपने गृह जाय, प्रभुके चरणकमल चित लाय ॥७५॥
मूरख शोक बढ़ावै कोय, सो पुन इष्ट विराधी होय ।
जो उर धर्म धरै अविकार, सो अनिष्ट घातक गुणधार ॥७६॥

दोहा—यहि प्रकार वच सुन सकल, देवी समझ विवेक ।
शोक सबै उरतैं गयो, ज्यों दीपक तम टेक ॥७७॥

१—हद्द—मर्यादा, २—आदि कारण—मुख्य कारण, ३—अनुभव करके—विचार करके।

धरौ धर्म निज हृदय दृढ, उर संवेगय नाम।
बांधव सुजन कुटम्ब जुत, गई मात निज धाम ॥७८॥

चौपाई।

उत्तम वन अति सघन विचार, फल अरु फूल तहां अधिकार।
चन्दन तरु तामें रमणीक, मंडप सम शाखा कर ठीक ॥७९॥
तिहितर शिला महा छवि धार, चन्द्र कान्ति मनकी उनहार।
सुरपति पहिल रची मन रंग, शीतल छाह देख सरवंग ॥८०॥
तहां फेर इन्द्राणी आय, पंच वरन शुभ रतन मँगाय।
निज कर चुटकी चूरत जाय, नाना विधिको चौक पुराय ॥८१॥
केतु माल बांधी समुदाय, किय विचित्र मंडप घॅट छाय।
खेवै धूप हरप मन लाय, रहौ धूप दशहूं दिशि छाय ॥८२॥
उतरे शिला वीर जिनराय, आरूढे समचित उर ल्याय।
शरीरादि ममता मन तजी, मोख पंथ साधकता भजी ॥८३॥
परिग्रह तज चौवीस असार, बाहिज भीतर दोय प्रकार।
क्षेत्र ग्रन्थ पहलौ तज एह, खेतीको उपदेश न देह ॥८४॥
वस्तु परिग्रह दूजो यही, गृह अस्थाप सु रहिवो नही।
तृतिय हिरण्य परिग्रह जोड़, रूपौ तामौ कांसो छोड़ ॥८५॥
तुर्य सुवर्ण परिग्रह भाख, सोनो रतन न किंचित राख।
पंचम धन परिग्रहको नाम, गो महिषी गज बाजि विराम ॥८६॥
धान्य परिग्रह छठमौं भेद, सकल अन्न संग्रह निःखेद।
दासि दास सेवक निज नार, सातम परिग्रह यहै निवार ॥८७॥
कुप्य परिग्रह अष्टम भजै, सूत रोम पट वस्तर तजै।

*नवम प्रमाण परिग्रह जोय, सकल वस्तुकी संख्या होय ॥८८॥
दशमो अतिक्रमा है ग्रन्थ, पंच भेद ताके क्रम पन्थ।
ऊर्ध्व अधो तिरछो गति सर्व, क्षेत्र वास्तु मर्यादा धर्व ॥८९॥
जो कछु व्रतको नियम जु करो, तातें विचल नहीं पग धरो।
ए दश बाहिज परिग्रह जान, अब चौदश संक्षेप बखान॥९०॥
मिथ्यात प्रथम दूजो पुंवेद, स्त्री त्रय चौथ नपुंसक भेद।
हास्य पंचमो परिग्रह जान, रति छठमों त्यागो उर आन॥९१॥
अरति सप्तमो परिग्रह तजौ, शोक अष्टमो रंच न भजौ।
भय परिग्रह नवमों नहि त्रास, दशम जुगुप्साको कर नाश॥९२॥
अनंतानुबंधी जु कषाय, क्रोध मान माया लोभाय।
ऐ चौदश आभ्यंतर ग्रन्थ, सो छोड़े जिनधर शिवपंथ॥९३॥
वस्त्र सकल आभरण उतार, तनतैं त्याग दए जिनसार।
देह भोग मद सबै निवार, स्वातम पद थिर कियो संवार॥९४॥
फिर सिद्धनको प्रणमन करो, पल्यंकासन निश्चल धरो।
पंच मुष्टि तहँ लुंचे केश, मोह पाश जिमि टोर जिनेश॥९५॥

---

* प्रमाण और अतिक्रम नामके कोई बाह्य परिग्रह नहीं है। यहां कविको 'क्षेत्र वास्तु हिरण्य सुवण धन धान्य दासी दास कुप्य प्रमाणातिक्रमाः' इस सूत्रके अर्थ समझनेमे भ्रान्ति हुई मालूम होती है। प्रचलित दश बाह्य परिग्रह निम्नप्रकार हैं—

'क्षेत्र वास्तु धन धान्य द्विपद च चतुपदम्। शयनासनं च यानं कुप्य भाण्डमिति दश॥' अर्थात् १-क्षेत्र, २ घर, ३ सोनाचांदी, ४ गेहू वगैरह, ५ दासी दास, ६ गाय भैंस आदि, ७ खाट पलंग आदि, ८ सवारी, ९ वस्त्र आदि और १० बर्तन ये १० बाह्य परिग्रह है।

सब सावद्य त्याग तहँ कियौ, अष्टावीस मूलगुण लियौ।
उत्तर गुण चौरासी लाख, धारौ जोग अडोल अभाख ॥९६॥
अब सुनिये चारित्र प्रमान, प्रथम कहे व्रतके सन्मान।
ताके हैं दो भेद निदान, देशव्रत पहिलौ उनमान ॥९७॥
श्रावक पालै धर अनुसरै, एकादश प्रतिमाको धरै।
थावरकी रक्षा नहि होय, पंच अणुव्रत पालहि सोय ॥९८॥
दूजौ सर्व व्रती जोगेश, ऋषि मुनि जति अँगार[1] न लेश।
चार भेद यह प्रथक विचार, ताके गुण संक्षेप सम्हार ॥९९॥
अट्ठतालीस ऋद्धि उपदेश, सो ऋषि विष्णुकुमार वतेश।
मतिश्रुतअवधि मनःपर्यय ज्ञान, इन्हैं लहै सो मुनि परधान ॥१००॥
सोल कषाय जीत वर वीर, सो कहिये जतिवर गुणधीर।
अनागार चौथौ आचार, तजै गृह स्तव नव नव धार ॥१०१॥
अब जु त्रयोदश चारित नाम, पंच महाव्रत गुप्ति त्रिठाम।
पंच समिति पालन परवीन, ताके भेद सुनौ गुणलीन ॥१०२॥
प्रथम अहिंसा व्रतको पाल, त्रस थावर रक्षा करहाल।
सत्य महाव्रत दूजौ जान, सत्य वचन बोले निज वान ॥१०३॥
तृतीय अचौर्य महाव्रत धार, वस्तु अदत्त न अंगीकार।
चौथौ ब्रह्मचर्य पालेय, अस्त्री राग न किमपि करेय ॥१०४॥
पंचम आकिंचन व्रत महा, परिग्रहरहित काल निरवहा।
अब सुन पंच महाव्रत भाव, सब पचीस अनुक्रम ठाव ॥१०५॥
प्रथम अहिंसा व्रत विधि पंच, जुदी जुदी भाषों कछु रंच।

१—अनागार।

वचन गुप्ति पहिली भावना, मारन शब्द नहीं बोलना ॥१०६॥
दूजी मनोगुप्तिकी गाम, मन कर मारन नहिं परिणाम।
ईर्या तृतिय भावना रक्ष, चलै दण्ड इक देख प्रतक्ष ॥१०७॥
आद निक्षेपण चौथी लेख, धरै उठाय वस्तु भू देख।
लोकितपान भोजना पंच, लेयँ अहार नीर शुद्ध च ।१०८॥
अब सुन सत्य वृत्त भावना, पंच भेद तिनके गावना।
प्रथम क्रोध कर झूठ न कहैं, दुतिय मानकर सांच न जहै ॥१०९॥
तीजै लोभ अर्थके काज, वचन असत्य न बोलै साज।
चौथी भीरुत कही भावना, भयसौं झूठ न बोलै मना ॥११०॥
पंचम प्रत्याख्यान जु कही, हास्य निमित्त वचन तज सही।
निराबाध बोलै नय बंड, सत्यवृत्त दृढ़ करै अखण्ड ॥१११॥

१–'वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।'
तत्वार्थसूत्र ७ अ० ४ सूत्र।

वाग्गुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदाननिक्षेपण समिति और आलोकितपानभोजन, ये पांच अहिंसाव्रतकी भावनाएँ है।

२–आदाननिक्षेपण।

३–' क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानानुवीचिभाषण पञ्च '।
अ० ७ सूत्र ५

तत्वार्थसूत्रमे सत्यव्रतकी भावनाए नीचे लिखे अनुसार बतलाई है–१ क्रोध प्रत्याख्यान, २–लोभ प्रत्याख्यान, ३–भीरुत्व प्रत्याख्यान, ४–हास्य प्रत्याख्यान और ५–अनुवीचि भाषण। परन्तु यहां ग्रन्थकर्तानि ' मानसे सत्य बोलना नहीं छोडना ' इस द्वितीय भावनाको विशेषरूपसे निरूपण किया है और अनुवीचिभाषणका अन्तर्भाव (हास्य) प्रत्याख्यान नामक भावनामे किया है, ४–भीरुत्व।

अचौर्य महाव्रत भावन पंच, तिनके भेद सुनो धर संच।
शून्यागार प्रथम पालेय, गिरि गुह कंदर वास करेय ॥११२॥
दूजी परमोचित घर वास, पर घर रंच करे नहि आश।
तृतिय परोधाकरन जु नाम, पर उपरोधाकरन वसाम ॥११३॥
भैक्ष्यशुद्धि चौथी गुण खान, चर्याशुद्धि धरे मन आन।
पंचम धर्म विसम्बा जान, धर्म परस परवाद न ठान ॥११४॥
ब्रह्मचर्य पांचौ विध सार, कोक आदि नाटक श्रंगार।
इनको सुनै न कहै मुनीश, प्रथम भाव तिय राग कथीश ॥११५॥
दूजी तन मनोज्ञ नीरीक्ष, अङ्गोपांग न त्रिया परीक्ष।
दृष्टि न देखै ताहि शरीर, काम अगनि सींचै ब्रह्म नीर ॥११६॥
पूरव रति स्मरण नहि जान, गृहस्थ काल त्रिय भोग मिलान।
जाहि अवस्था चितै नांहि, सो दृढ़ व्रती ब्रह्मचर्याहि ॥११७॥
वृष्येष्ट रस चौथी भावना, षट रस सरस सबल भोजना।
संपूरन विधि करन मुनीश, अब सुन पंच भावना धीश ॥११८॥
वपु संस्कार तास है नाम, भूषण पट सूक्षम बस्राम।
कोमल सब उपजें तस राग, वर्जित ये उपभोग समाग ॥११९॥

१—'शून्यागार विमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसवादा पञ्च' अ० ७ सू० ६

शून्यागारवास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्ष्यशुद्धि और सधर्माविसवाद ये पांच अचौर्य व्रतकी भावनाए है।

२—'स्त्रीरागकथा—श्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरस स्वशरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च' अ० ७ सूत्र ७

स्त्रीरागकथाश्रवणत्याग, तन्मनोहराङ्गनिरीक्षण त्याग, पूर्वरतानुस्मरण त्याग, वृष्येष्ट रस त्याग और स्वशरीरसंस्कार त्याग, ये ब्रह्मचर्य व्रतकी पांच भावनाएँ है।

अब परिग्रह पंचम व्रत सोय, पंच भावना ताकी होय।
पांचों इन्द्रिय वश कर रहै, ताके भेद किमपि कछु कहे ॥१२०॥
रुपरस इन्द्रियको परभाव, कोमल विषय रहित तिहि ठाव।
रसनेन्द्रिय षटरस ज्यौंनार, हो निरास सो भाव अपार ॥१२१॥
नासा गन्ध विषयको राग, त्यागै सोम भजै वैराग।
चक्षू इन्द्रिय रूप मनोग, ताको विषय तजो उपभोग ॥१२२॥
श्रोत्रेन्द्रिय है शवद मनोग, सो सुन राग द्वेष तज जोग।
ए पचीस भावना कही, पंच महाव्रत सो सब लही ॥१२३॥
अब सुन तीन गुप्तिके भेद, पृथक् पृथक् भाषैं नहि खेद।
त्रस थावर रक्षाके काज, मन वच तन पालैं मुनिराज ॥१२४॥
वचन गुप्ति पहली है यही, कुवचन आंपुन बोलै नहीं।
औरहिसों बोलावै नाहि, कहूं बोल परिणाम न जाहि ॥१२५॥
ऐसे ही मन गुप्ति जु कही, तैसहि कायगुप्ति कर सही।
अब सुन पंच समितिकी रीत, जुदी जुदी भाषौं धर प्रीत ॥१२६॥
ईर्यासमिति प्रथम विख्यात, एक दण्ड भू शोधत जात।
भाषासमिति दुतिय पहिचान, दश प्रकार भाषा न कहान ॥१२७॥
हितमित ललित प्रनत है आदि, जिहि वच होय जीव नहि बाधि।
तृतिय एषणा समिति प्रमान, जल आहार शुद्ध कर ठान ॥१२८॥

१—'मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च।'

स्पर्शन आदि पांच इन्द्रियोंके इष्ट अनिष्ट विषयोमे रागद्वेष छोड़ना ये परिग्रह त्याग व्रतकी पांच भावनाएँ है।

२—कृत, ३—कारित, ४—अनुमोदना।

अन्तराय तहँ रहित बत्तीस, चौदह मल टालहि जोगीश ।
सब कोई निर्मल सुविशुद्ध, इहि विधि लेय अहार निरुद्ध ॥१२९॥
अदाननिछेपन चौथी कही, जीव जन्तु रक्षा कर सही ।
जो कछु वस्तु धरै अरु लेय, तहँ मुनीश बहु जतन करेय ॥१३०॥
समिति प्रतिष्ठापन पंचमी, मल-मूत्रहि छिप शुद्धहि जिमी।
हरित रहित सन्मूर्च्छन बचैं, ऐसी क्रिया महामुनि रचैं ॥१३१॥
लहुडी काया शुद्ध न करैं, थूकैं नहीं जीव जहँ मरैं ।
पग प्रक्षालन फासू थान, यह प्रकार चारित्र बखान ॥१३२॥

दोहा—इहि विधि चारित आदर्यौ, अरु संजम उर धार ।
क्षायिक सम्यक् दृढ़ धर्यौ, जय जय वीर कुमार ॥१३३॥

चौपाई ।

मारगशिर है उत्तम मास, कृष्णपक्ष दशमी तिथि जास ।
हस्त उत्तरा अन्तर माहि, अपराहिन वेला तहँ आंहि ॥१३४॥
तब दीक्षा जिनवरनै धरी, मुकतिवधू मन इच्छा करी ।
भूप एकसै प्रभुके संग, तप धारौ तजि परिग्रह अंग ॥१३५॥
प्रभुके केश तबै सुरराय, अपने हाथ उठाये आय ।
मणिमय डबा मांहि धर लये, क्षीरोदधि लै तत्पर गये ॥१३६॥
मनुषोत्तर पर्वततैं बाहि, मनुष अंश आगे नहि जाहि ।
तहां केश खिर सहजहि गये, डबा वज्रमय रीते भये ॥१३७॥
तब सुरपति विक्रिय कर करै, फिर फिर जोर डबामें धरै ।
अंगुल एक न आये गये, मनकर क्षीरोदधि क्षिप गये ॥१३८॥
अब सुरपति अति हर्ष बढ़ाय, प्रभुकी थुति कीनी बहु भाय ।

तुम परमातम परम निधान, तीन जगतमें सुगुरु महान ॥१३९॥
तुम प्रभु जगन्नाथ गुण सिंध, अरि विजयी निर्मलता मिंध।
तुम गरिष्ठ तुम वीर जिनेश, थुति कर पार न लहै गणेश ॥१४०॥
सुर गुरु मुनिजन आदि अनेक, कोइ न समरथ करन विवेक।
धर मो उर तुम भक्ति बढ़ाय, हठ उच्चार करावै आय ॥१४१॥
बाहिर आभ्यंतर मल धोय, निर्मल गुण मुनि परगट होय।
तिनकौ तुम थुति विन न सुहाय, ज्यों विन[1] मेह कृषी कुमलाय।१४२
हेयाहेय[2] प्रकट तुम करौ, सार वस्तु तन मन आदरौ।
जो प्रभु तुमको मनमें भजैं, तब ही मनको विकलप तजै ॥१४३॥
राजपाट अघदायक होय, छिनमें तुम त्यागौ प्रभु सोय।
तीन लोकको राज मनोग, ताकी चाह करी तज शोग ॥१४४॥
अति चञ्चल लक्ष्मी जग मांहि, सो प्रभु तुमको छिन न सुहाय।
परम शाश्वती लक्ष्मी थान, ताहीको कीनौ सन्मान ॥१४५॥
दुष्ट कर्म मद मान सहीत, मोह भूप दल सुभट अजीत।
तुम प्रभु वीर विना हथियार, हन्यौ छिनकमें दया निधार ॥१४६॥
मात पिता बांधव परिवार, तजत तिन्हें नहि लागी वार।
लागे भोग भुजंग समान, उरमें केवल मोख निदान ॥१४७॥
दीक्षा है जगमें पर शुद्ध, क्षमा पवित्र करन सम बुद्ध।
मुक्ति श्री मनरंजन हार, प्रनमौं त्रिविध शुद्ध अविकार ॥१४८॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र, रत्नत्रय भूषण सुपवित्र।
वस्त्राभरण रहित सब संग, प्रनमौं प्रभुहि दिगम्बर अंग ॥१४९॥

१—मेघके विना, २—हेय—छोड़नेयोग, अहेय—नहीं छोड़नेयोग्य।

नमौं मुक्ति कान्ता भरतार, सखा तात प्रनमौं अविकार।
स्वयंबुद्ध वन्दौं तीर्थेश, तीन ज्ञान जिन नैन महेश ॥१५०॥
इन्द्रिय विमुख अमित अनभेव, प्रनमौं सन्मुख आननमेव।
नमौं कर्म अरि घातनहार, शुभ लक्षण गुण सिन्धु अपार ॥१५१॥
इहि विधि तुव स्तवन अनेक, को बुध पार लहै भव एक।
दीजै प्रभु मुहि सेवक जान, दीक्षा तप जिनमुक्ति निदान ॥१५२॥

दोहा—इहि विधि वहु अस्तवन कर, पुनि पुनि भक्ति बढ़ाय।
बारंबार प्रनाम प्रभु, सुरपति निज सुखदाय ॥१५३॥
परम पुण्यको उदित कर, पूजा थुति बहु भाय।
सुर गण जुत निज लोकको, गये हर्ष उर लाय ॥१५४॥

चौपाई।

अब कीनौं प्रभु जोग अरूढ, निश्चल तन पर्वत सम गूढ़।
उदित भयो जिम ग्रीषम भान, जग जियको प्रिय करता वान ॥१५५॥
तप बल चौथो ज्ञान प्रकाश, भव्यनको सुख करता जास।
षट महिना पर्यन्त सुहेत, ध्यान अडोल कियो सम चेत ॥१५६॥
चर्या हित उठ धीरज लाय, भोग ममत्व न अंग समाय।
ईर्यापथ शोधन पग देत, चाले नासा दृष्टि समेत ॥१५७॥
धनी निर्धनी एक समान, उर संवेग त्रिविध दृढवान।
ना अति मन्द न शीघ्र चलाय, दयावंत भू शोधत जांय ॥१५८॥
दर पुर नगरी पहुँचे जबै, कूल नाम नृप देखे तबै।
उत्तम पात्र जान जिनराय, पुण्य प्रताप मिलै मुहि आय ॥१५९॥

१—मन पर्यय ज्ञान।

विधिपूर्वक पडगाहै सोय, अति आनंद कियौ उर जोय।
तीन प्रदक्षिण दे शिर नाय, पंच अंग भुवि वंदै पाय ॥१६०॥
तिष्ठ तिष्ठ स्वामी यह कही, शुद्ध अहार लीजिये यही।
तीन लोकपति दर्शन दयौ, मेरौ जन्म सुफल अब भयौ ॥१६१॥
सिंहासनपै प्रभु बैठार, लै आयो नृप प्रासुक[1]-वार।
चरणकमल प्रक्षालै[2] महां, अरु अंस्नान कराए तहां ॥१६२॥
गन्धोदक बन्दौ नर ईश, तन पवित्र कीनौं निज शीस।
अष्ट प्रकारी पूजा करी, भक्ति भाव अस्तुति उचरी ॥१६३॥
मो प्रभु आज सुकृत[3] बहु भयौ, गार्हस्थ्य पनौ सुफलता लयौ।
पात्र लाभ उर चिन्तौ सोइ, सो अब सुफल फलौ सब मोइ ॥१६४॥
धन्य नाथ शुभ वासर आज, तुम आगमन भयौ जिनराज।
मुख पवित्र मेरो अब भयो, तुमरी अस्तुति उद्यत ठयो ॥१६५॥
भयौ पवित्र गात्र सब मोहि, कर पवित्र पद प्रनमौं तोहि।
दोष सकल मेरे तुम हरे, सुख समाज संपूरन करे ॥१६६॥
इहि विधि थुति कीनी अधिकार, पुण्य उपायौ नवै[3] परकार।
बहु विधि हरष चित्त नृप करी, दान तनी श्रद्धा उर धरी ॥१६७॥
यथाशक्ति निज परकट कीन, पात्र दान उद्यत परवीन।
सुश्रूषा बहु भांति करेय, भयौ भक्तिमें तत्पर तेय ॥१६८॥
यह विचार नृप कृपानिधान, परम क्षमा धीरज मन आन।

१—प्रासुक जल, २—चरण कमलोको जलसे धोया। (मुनियोंके समस्त शरीरका स्नान नहीं होता) ३—पुण्य।

३—मन वचन काय और कृत कारित अनुमोदनासे त्रिगुणित ३×३=९

क्षीर अन्न मिश्रित कर ठान, मन वच काय शुद्धि उर आन ॥१६९॥
प्रासुक मधुर सरस निर्दोष, क्षुधा तृषा नाशक सन्तोष।
सो अहार प्रभु लीनो जबै, पंचाश्चर्य करे सुर तबै ॥१७०॥
राजभवन अंगन भू मांहि, रत्नवृष्टि पूरी अधिकाहि।
अति अमूल्य अरु थूल अपार, बरषै मनो मेघकी धार ॥१७१॥
पहुप सुगंध वृष्टि अधिकार, दुंदुभि शब्द होय अतिसार।
जय जय घोष होय अति घनो, दाता जश गावें सुर मनो ॥१७२॥
परम दान फल बहु विध होय, भवसमुद्र तैं तारै सोय।
जिहि घर कीनौं गमन जिनेश, सो दाता धन जगत महेश ॥१७३॥
दान पुरुषको परम निधान, स्वर्ग मुक्तिको कारण जान।
बहु प्रकार जाके ग्रह देव, जयजयकार करैं स्वयमेव ॥१७४॥
उत्तम पात्र दान फल लोय, कोटिनकी धन प्रापति होय।
परभव स्वर्ग भोगभू लहै, तप कर फिर शिवपन्थ जु गहै ॥१७५॥
सब पुरजन नृप अंगन मॉहि, रतन राशि देखैं अधिकाहि।
कहैं परस्पर सो इमि बैन, दान तनौं फल अति सुख दैन ॥१७६॥
तिन वच सुन भविजन इमि कहैं, दान तनौं फल बहु विधि लहैं।
कोई भोगभूमि सुर कोय, कोई मोक्ष लहैं तप जोय ॥१७७॥
दोहा—वर्धमान जिनराज इमि, लीनौं परम अहार।
भूपति भवन पवित्र कर, फिर बन गये सँवार ॥१७८॥
दान तनौं फल नृप लह्यौ, सुख संपति गुण गेह।
बहुजन हरष बढ़ाय हिय, कियौ दानसौं नेह ॥१७९॥

छन्द चाल ।

अब जिनपति बहिर सरेसा, पुर ग्राम फिरै बहु देशा ।
कछु ममता अंग न आना, नाना अटवी उद्याना ॥१८०॥
तप द्वादश भेद बखानौ, जिनवर मन वच तन ठानौ ।
प्रभु अनशन प्रथम हि लीनौ, जब चार अहार न कीनौ ॥१८१॥
फिर अवमोदर तप कहिये, तहँ अलप अहार जु लहिये ।
व्रतसंख्या उर अवधारी, सो वस्तु संख्या तप भारी ॥१८२॥
भोजन रस स्वाद न कीनौ, रस त्याग महा तप लीनौ ।
जब आसन शयन जु न्यारै, विविक्त[1] शय्यासन धारै ॥१८३॥
अब काय क्लेश सु जीजै, निज काय कलेश हि कीजै ।
वर्षा ऋतु तरुके मूला, तहँ वायु बहै प्रतिकूला[2] ॥१८४॥
सित काल नदी सरै[3] तीरा, जाड़े सौं कँपत शरीरा ।
प्रभु ध्यान अगनि तप भारी, शित[4] जाय महाभयकारी ॥१८५॥
ऋतु ग्रीषम भानु जे तेजा, गिरि तुंग शिलाकी सेजा ।
सो सरवर रहड़ न कीचा, प्रभु ध्यान सुपय तन सींचा ॥१८६॥
यह बाहिज षट तप गुनिये, आभ्यंतर षट अब सुनिये ।
जो पूरब चिन्ता त्यागै, निज आतम खोज हि लागै ॥१८७॥
मद इन्द्रिय धोय बहावै, सो प्रायश्चित्त कहावै ।
जो होय अपुनतें भारी, तसु विनय करै अधिकारी ॥१८८॥
जो रोग सहित तन छीजै, सुश्रूषा ताकी कीजै ।

१—विविक्त—पवित्र और निर्जन स्थान । २—उल्टी, ३—तालाव, ४—शीत-ठण्डका दुःख ।

जो बारह व्रत दृढ़ होई, वैयावृत जानौ सोई ॥१८९॥
स्वाध्याय[1] पंच विधि कीजे, सो स्वाध्याय हि तप लीजै।
कायोत्सर्गासन साधै, तहँ चारौ ध्यान अराधै ॥१९०॥
पिण्डस्थ पदस्थ बखानौ, रूपस्थ रूपातित जानौ।
इमि कर्म महावन जारौ, तप कायोत्सर्ग सुधारौ ॥१९१॥
दोहा—वीर नाथ जिनराजने, द्वादशविध तप कीन।
आत्मवीर्य परगट भयौ, राग द्वेष मद हीन ॥१९२॥

चौपाई।

क्षमा भाव सब ही सों मानै, काश्चन कांच बराबर जानै।
धन कन जिनसे एक समान, महल मसान भेद नहि आन ॥१९३॥
दुख सुख जानहि एक हि भाव, जीवन मरण बराबर चाव।
शत्रु मित्र दोनों सम एक, धनी निरधनी एक हि टेक ॥१९४॥
दोहा—उपजी प्रभुको ऋद्धि बसु, सिद्धि अनेक प्रकार।
तिन गुण कछु वर्णन करौं, लहि आगम अनुसार ॥१९५॥
बुद्धि औषधी क्षेत्र वच, तप रस विक्रिय धस्स।
क्रिया सहित अष्टौ कही, तिन ऋद्धि तिस बस्स ॥१९६॥

सवैया इकतीसा।

प्रथम[2] बुद्धि ऋद्धि है अठारा गुन ताहूके,
तपसा प्रभाव श्री मुनीश उर आनिये—

१—वाचना, प्रच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश ये स्वाध्यायके पांच भेद है।

२—बुद्धि ऋद्धिके अठारह भेद हैं—१ केवलज्ञान, २ मन पर्ययज्ञान,

केवल मनःपर्यय अवधि बीज कोष्ठ सं-
भिन्न स्रोत तथा पादानुसार हां जानिये।
दूरी पर्श दूरी रस घ्राण औ श्रवण दूरी,
दूरी बहु भांत अवलोकन बखानिये-
दश पूर्वी चतुर्दश पूर्वी प्रत्येक वाद प्र-
ज्ञा नैमित्तिक भेद अष्टादश प्रमानिये ॥१९७॥

पद्धडि छन्द।

तहं तीन लोक भासैं जु एम, लहि जलकी बूंद जु हस्त जेम।
यह केवल ऋद्धि जु प्रथम नाम, जहँ जीव सर्व इष्टी विराम ॥१९८॥
अब मनःपर्यय दूजीय बुद्धि, तजि मन विकार निर्मल हि शुद्धि।
सबके मनकी आनै जु जीव, जैसी जाके हिरदै प्रतीव ॥१९९॥
ताहीमें हैं सुन भेद दोय, ऋजु विपुल कहे भगवान सोय।
सबके मनको है सरल भाव, सो ऋजुमति यारेको लखाव ॥२००॥
सूधी टेढ़ी जो जान लेय, यह विपुल मती तासो कहेय।
पुनि अवधि बुद्धि तीजी प्रमान, सो आगम शास्तर भव बखान।२०१
विन पूछै नहि पहिचान होय, जब पुच्छय उत्तर कहइ सोय।
है अवधि भेद तीनों प्रकार, देशावधि परमावधि जु सार ॥२०२॥
जो एक देशकी कहइ दक्ष, सो देशावधि मुनिवर प्रतक्ष।
जहँ द्वीप अढ़ाई बरन भेद, मुनि परमावधि भाषैं निखेद ॥२०३॥

---

३ अवधिज्ञान, ४ बीजबुद्धि, ५ कोष्ठ बुद्धि, ६ संभिन्न श्रोतृत्व ७ पदानुसारित्व, ८ दूर स्पर्श सामर्थ्य, ९ दूर रसनसामर्थ्य, १० दूराघ्राण सामर्थ्य, ११ दूरावलोकन सामर्थ्य, १३ दशपूर्वित्व, १४ चतुर्दशपूर्वित्व, १५ प्रत्येक बुद्धता, १६ वादित्व, १७ प्रज्ञा और १८ अष्टाङ्ग निमित्त ज्ञान।

कहि तीन लोक संवन्ध जोय, सर्वावधि ऐसौ गुण जु होय।
अब बीजबुद्धि चौथीय टेक, पद एक पढ़त प्रापति अनेक ॥२०४॥
पुन कोष्ठ बुद्धि पंचम वखान, जहँ सुनहि एक अस लोक ठान।
कहि पूरन अर्थ गिरंथ, सोइ, कछु भेद छिपौ नहि रहइ कोइ ॥२०५॥
संभिन्न श्रोतृता बुद्धि षष्ठ, नव बारह जोजन लौं गरिष्ठ।
दल चक्रवर्तिते तक प्रमान, नर देश देशके ताहि थान ॥२०६॥
जो बोलहिं एकहि बात सर्व, पहिचानहि तिनके वचन धर्व।
पादानुसार सत्तमहि बुद्धि, पद आदि अंतकी करहि शुद्धि ॥२०७॥
सो सकल ग्रन्थ अर्थ हि समस्त, अरु कंठ पाठ भज मुनि प्रशस्त।
दूरी सपरस अष्टम गनेइ, गुरु लघु चीकन अरु रुख धरेइ ॥२०८॥
कोमल कठोर अरु उष्ण शीत, यह आठ प्रकार सपर्स रीत।
सो द्वीप अढ़ाई लौं उतिष्ठ, इक जोजन तैं जानै कनिष्ठ ॥२०९॥
सबके गुण भाषै जुद जुदेय, तपबल सौं ते सब जान लेय।
अब नवमी दूरी रसन थाय, मधु तिक्त कटुक आमल कषाय ॥२१०॥
ए रस जो कोई कहइ भाष, तौ द्वीप अढ़ाई स्वाद चाख।
सो स्वाद बखानै मुनि गहीर, यह ऋद्धि लही कर तप शरीर ॥२११॥
अब दशमी दूरी घ्राण जास, दुरगंध और सुगंध वास।
सो पूर्व रीति मुनि जानि लेह, यह नासा विषय विलास जेह ॥२१२॥
पुन दूरी-श्रवण जु इक दशेव, हैं सात विषय ताके सुनेव।
सो ऋषभ निषाद गांधार तीन, चौथेको षड्ज जु नामलीन ॥२१३॥

१—श्लोक, २—ग्रन्थ।

पंचम मध्यम धैवत छटेवे, पंचम मिलि स्वर सातौं गनेव।
जो पुरुष शवद है ऋषभ नाम, नभगरज निषाद द्वितीय ठाम॥२१४॥
पुन अजा शवद गांधार होय, मंजार[1] शवद जह षड्ज जोय।
पंचम मध्यम यह शवद रूप, छठमौं धैवत गजवर अनूप॥२१५॥
कोकिल वर पंचम स्वर हि सात, सब पंच शब्द कहिये विख्यात।
है प्रथम शवद जहँ चर्म बाज, फुंकार दुतिय तहँ तंत साज॥२१६॥
चौथो मंजीरादिक बखान, जल लहर शब्द पंचम प्रमान।
सो पूर्व रीति जाने लखाव, सब द्वीप अढ़ाईके प्रभाव॥२१७॥
दूरी अवलोकन द्वादशेव, रंग श्वेत पीत अनुरक्त भेव।
तहँ कृष्ण नील सब पंच वर्ण, पूर्वोक्त दूर तैं ज्ञान धर्ण॥२१८॥
दश पूर्ववुद्धि तेरम बखान, दर्श पूर्व अङ्ग एकादशान।
विन पढ़ै सकल विद्या लहेय, संपूरण अर्थ हि सुख कहेय॥२१९॥
अरु रोहिणीदेवी क्षुल्लिकादि, सब पंच सप्त तै धर विषाद।
मिल करैं कटाक्षी हाव भाव, थिर रहै तहां मन ध्यान चाव॥२२०॥
चौदह पूर्वा बुधि चौदशेव, तहँ चौदह पूर्व जु अंग तेव।
विन ही श्रम सब ही पढ़ कहाय, सो द्वादशांग श्रुत ज्ञान राय॥२२१
सत संयम अरु चारित विधान, ते विन उपदेश हि लहइ ज्ञान।
इन्द्रिय दम तप घोरानघोर, वह बुधि प्रतेक पन्द्रमहि जोर॥२२२

१—मजार—बिलाव, परन्तु दूसरे ग्रन्थोंमें षड्ज स्वर मयूरके स्वरको कहते है, ऐसा लिखा है। यथा—

'षड्जः मयूरस्य कूजितानुकारी स्वरविशेषः।' 'षडज मयूरो वदति' इति लक्षणात्। शिशुपाल वध टीका—सर्ग ११ श्लोक १।

अब षोडशमी है वाद बुद्धि, वहु वाद करन आवे त्रिशुद्धि।
ते इन्द्र आदि विद्या प्रमान, इक उत्तर सबको मद गलान ॥२२३
बुध प्रज्ञा सत्रमि सुनहु तग्य, सब तत्त्व अरथ संजम सुतग्य।
तिनि भेद थूल सूक्षम अनंत, विन द्वादशांग वाणी कहंत ॥२२४॥
अट्टारम बुधि नैमित्त अन्न, तिनके गुण आठ प्रकार भन्न।
स्वर अन्तरीक्ष भू मंड छिन्न, व्यंजन लक्षण अरु सुपन भिन्न ॥२२५
खग चौपदकी भाषा अजीत, प्रगटै मुनि हिय धर सहज प्रीत।
तिनकी जो कछु भावीय काल, दुख सुख वरनै स्वर अंग भाल २२६
ग्रह भान सोम आदिक प्रशस्त, शुभ अशुभ आदि फल उदय अस्त।
तहँ तीता नागत वर्तमान, वरनै जु. अंतरिछ अंगवान ॥२२७॥
पिछली सुवस्त कछु भू मँझार, द्रव्यादिक सब नानाप्रकार।
अरु भूम कप वरतै जु सोइ, वरनै भू अंगहि तृतिय जोइ॥२२८॥
नर पशु दुख सुख सबको जनाय, वैद्यक सामुद्रिक सब सुभाय।
करुणा जुत भाषै मुनि प्रसंग, प्रगटै उपकार जु मंड अंग ॥२२९॥
तह वस्त्र शस्त्र सेनादि छत्र, आसन अवस्त्र कंटक अशस्त्र।
एकस सुरनर मुख अंसझार, गोमय अरु अगनि विनाशहार ॥२३०॥
शुभ अशुभ उपावत फलजु सोय, प्रगटै वखान संशय न कोय।
यह छिन्न अंग पंचम गनंत, बुधि नैमित्तिक मुनिवर भनंत ॥२३१॥
तिल मसे जु लहसन इनहि आदि, हैं सामुद्रिकतें जुद अनादि।

१—स्वर, अन्तरीक्ष, भौम, अंग (मट), छिन्न, व्यंजन, लक्षण और स्वप्न ये निमित्त ज्ञानके ८ भेद है। २—पक्षी। ३—अतीत-भूतकाल। ४—अनागत—भविष्यत्काल।

तिनके फल वरनै पूर्व ज्ञान, यह व्यंजन अंगहि गुणनिधान ॥२३२॥
लक्षण श्रीवृक्षादिक भनीक, अष्टोत्तर शत तिनको जु ठीक।
कर पगतर शुभ अरु अशुभ जेम, वरनै सो लक्षण अंग तेम ॥२३३॥
जगमांहि पदारथ सकल होंय, ते सुपन विषैं जो लखहि कोय।
तिनको फल कहि संशय मिटाय, यह सुपन अंग आठम सुभाय २३४*

दोहा—यह अष्टादश भेद युत, बुद्धि ऋद्धि गुण गेह।
विमल रूप प्रगटै सदा, आय तपोधन देह ॥२३५॥

इति बुद्धिऋद्धि वर्णन।

दोहा—ऋद्धि औषधी भेद वसु, विटमल आम उजल्ल।
छुल्ल सर्व दृष्टी विषा—नाशन विष गुण मल्ल ॥२३६॥

गीतिका।

विटऋद्धि मुनि विष्टा जु लेपहि, सकल रोगनको हरै।
निर्मल निरोग शरीर निवसे, अंग परतापहि धरै॥
लहि मैल दांत जु कान नासा, रोग तस देखत डरैं।
धातु सकल कल्याणकारी, मलऋद्धि यह गुण विस्तरै ॥२३७।
रोगसौं ग्रसि और दारिद भाग हीन जु चितवै।
तह हाथ छुवतन सकल साता आमर्श अंगहि गुण सवै॥

---

*बुद्धिऋद्धिके अवान्तर भेद—

१ केवल ज्ञान, २ मन पर्यय ज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ बीजबुद्धि, ५ कोष्ठबुद्धि, ६ संभिन्नश्रोतृत्व, ७ पदानुसारित्व, ८ दूरस्पर्श, ९ दूररसन, १० दूराघ्राण ११ दूरश्रवण, १२ दूरावलोकन, १३ दशपूर्वित्व, १४ चतुर्दशपूर्वित्व, १५ प्रत्येकबुद्धता, १६ वादित्व, १७ प्रज्ञा, १८ निमित्तज्ञान।

१—आमर्श—आमर्शनम् आमर्शः स्पर्श इत्यर्थः।

मुनि श्रम जलहि लै तन लगावत होय सुख दुख ही चमै।
नासै असाता देह परसत अंग उज्जल[1] यह नमै ॥२३८॥
मूत्र थूक खंकार मुनिको व्याधि हर धातुहि रचै।
मनके मनोरथ पूर राखै +छुल्ल गुण सब भ्रम खुचै॥
मुनि अंग परस जु पवन आवै करहि सुख तन दुख हरै।
नाशै जु अघ आताप जियके सर्व अंग जु यह टरै ॥२३९॥
मुनि सर्प काट्यौ होई कोई तथा काहू विष पियौ।
दृष्टि परत आताप नाहीं दृष्टि विष गुण पहिलयौ॥
[दुष्ट[2] जन मुनिराजको विष मिश्र भोजन देवहीं।
तो होय अमृत छिनकमें ही, विष तनें परभाव ही* ॥२४०॥]

इति औषधि ऋद्धि वर्णन।

दोहा—अब सुन क्षेत्र जु ऋद्धिको, वरनौं शाखा दोय।
प्रथम[3] अधिन महानसी, क्षेत्र महालय होय ॥२४१॥

गीतिका छन्द।

जाकै जु मुनि जब होय भोजन; दीन वह फल यह लहै।
चूक दल जु रसोई खातहि, तासतें अधिकी रहै॥
क्षय भई प्रकृति लभान्तरायी, तथा उपशमके उदै।

१—शुद्धनाम 'जल्ल' है। + शुद्धनाम 'क्षेत्र' है। २—मूलग्रन्थमें पाठ छूट जानेसे छन्द पूर्तिके लिये ये २ पाद नवीन जोड दिये गये है। * औषधिऋद्धिके ८ भेद हैं:—१—विटौषधि, २—मलौषधि, ३—आम (आमर्षौषधि) ४—उजल्ल (जल्लौषधि), ५—खुल्ल (क्ष्वेलौषधि) ६—सर्वौषधि, ७—दृष्टिविषनाशन ८ और विष (आस्यविषनाशन)।

३—क्षेत्रऋद्धिके दो भेद है—१ अक्षीण महानस और २ अक्षीणमहालय।

तप बलहि प्रगटै गुणहि ऐसो नाम अच्छिन्न महान है ॥२४२॥
जहां मुनिवर कर्म नाशहिं, चार हाथ जु भुवि परै।
कोटि नर सुर पशुन बल तहँ, निराबाधक तनु धरै॥
कष्ट मुनिको कबहुं नांही, यह प्रभावहि थल वही।
अब छिन महालय अंग दूजौ, कह्यौ आगम लहि सही॥२४३॥
दोहा—क्षेत्र ऋद्धिगृह विमल गुण, सोहै तप मुनि ईश।
देवनको दुर्लभ सदा, भाषी श्री जगदीश।२४४॥

इति क्षेत्रऋद्धि वर्णन।

चौपाई।

अब तुम सुनौ ऋद्धि बलसार, मन वच काय त्रिविध परकार।
भिन्न भिन्न तिनक गुण कह्यौ, जैसे जिनशासनमें लह्यो॥२४३॥
श्रुत आवरणी कर्म प्रधान, ताके क्षय उपशम तैं जान।
अन्तमुहूरत विषैं समर्थ, द्वादशांग वाणीको अर्थ॥२४६॥
तिनको मनमें करै विलास, यह कहिये मन बल परकास।
द्वादशांग वाणी आधीन, कहत महासुख उपजै चैन॥२४७॥
तिनको कष्ट न होय लगार, वचन अतुल बलके अनुसार।
वाणी पढ़त देह श्रम नांही, पढ़ै सु अन्त मुहूरत मांही॥२४८॥
काय अखंडित बलको करै, अतुल अखंड महाबल धरै।
सोहै जिनको सुभग शरीर, काय अंग जानो वर वीर॥२४९॥
दोहा—यह बल ऋद्धि गँभीर गुण, प्रगट बखानी देव।
उदय होय तप योगमें, जिनवाणी लहि भेव॥२५०॥

इति बलऋद्धि वर्णन।

१—अक्षीण महानस, २—अक्षीण महालय, ३—बलऋद्धिके ३ भेद है—१ मनोबलऋद्धि, २ वचनबलऋद्धि और ३ कायबलऋद्धि।

पद्धड़ि छन्द।

अेव सुनहु भव्य तप ऋद्धि सार, तामें गुण वरनौं सप्त धार।
ते घोर महत उग्रह अनंत, अतिदीप्त तप्त घोरह गुनंत॥२५१॥
पुन ब्रह्म घोर सप्तम वखान, अव तिनकै गुण सुन भविसुजान।
नव भूमि समान जु जहां होय, जोगासन रुचि सौ करैं जोय॥२५२॥
तहँ सहहिं उपद्रव कठिन अंग, याही सो कहिये घोर अंग।
सिंहविक्रीडन व्रत आदि नाम, अष्टोत्तर शत क्रम क्रम वखान॥२५३
सो करैं उपास जु सदा काल, अरु मौन सहित अंतराय पाल।
जो या विधिसौं तप तपहिं त्रास, सो महत अंग जानों प्रकाश॥२५४
पुन वेद काय वसु वास मास, यह आदि करहि वहुते उपास।
निर्वाह तहां वहु जोग रूढ़, यह उग्र अंगको गुण अगूढ़॥२५५॥
कर घोर वीर तप वहुत भांति, तिन घटै न कवहूं अंग कांति।
उपजै नहिं दुर्गंध मुनि शरीर, यह दीप्त अंगको गुण गहीर॥२५६॥
सो कर अहार नहि है निहार, ज्यों तपत लोह पर नीर डार।
सोखै सुनीर नहि सहैं पीर, वह तप्त अंग जानो जु वीर॥२५७॥
ते अतीचार विन मुनि रहाय, वह घोर गुणं तप मुनि कहाय।
दुख कामादिक मुनि नहि धरेय, सो घोर ब्रह्मचारी कहेय॥२५८॥
दोहा—तप जु ऋद्धिके सात गुण, अभ्यासैं मुनिराज।
अनुक्रम तातैं जानिये, केवल ज्ञान समाज॥२५९॥

इति तप ऋद्धि वर्णन।

१—तप ऋद्धिके सात भेद है—उग्र, दीप्त, तप्त, महाघोर, तपोघोर, पराक्रमघोर और ब्रह्मचर्य।

दोहा—षटगुण बरनौं ऋद्धि रस, आसन विष विष दृष्ट ।
घृत पय मधु अमृत स्रवहि, जुदे जुदे कर तिष्ट ॥२६०॥

पद्धड़ि छन्द ।

तपके बलतें यह पद लहाय, सो मरण समय जब होय आय ।
तहँ निसंदेह प्राननि विनाश, यह आसन विषगुणको प्रकाश ॥२६१
चितवें जाही तन क्रोध होय, जो प्राणी ततछिन मरहि सोय ।
यह यद्यपि मुनि है दयासिन्ध, यह दृष्ट विषपर ताप लिंध ॥२६२॥
कोई भोजन मुनिको रूक्ष देय, धर कर पर सौं आहार लेय ।
पर सत स्वहस्त घृत चुँवत जाय, यह घृत स्रावक गुणको सुभाय ।२६३
अरु दुग्ध चुँवै वाही प्रकार, पय स्रावक अंग प्रताप धार ।
यह पर्व रीतसम मधुर जान, सो मधुर स्रावनिको फल बखान ॥२६४॥
अति अमृत मुनि कर स्रवै सोय, तद क्षुधा तृषाको हरण होय ।
इहि भांति मुनिहि आहार देय, यह अमृतस्रावि जुफल कहेय ॥२६५
दोहा—यह बरनी रस ऋद्धिकी, दशा पुनीत अनूप ।
तिनकै प्रगटत है सदा, जे मुनि मुक्ति सरूप ॥२६६॥

इति रसऋद्धि वर्णन ।

दोहा—कहौं विक्रिया ऋद्धिके, एकादश गुण सोय ।
अणिमा महिमा, लघिमा, गरिमा प्रापति होय ॥२६७॥

१—रस ऋद्धिके ६ भेद हैं—आसन विष (आस्यविष) दृष्टिविष, घृतस्रावि, पय(क्षीर)स्रावी, मधुस्रावी और अमृतस्रावी। २—विक्रिया ऋद्धिके ११ भेद हैं—अणिमा, महिमा, लघिमा; गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्वता, वशिता, अप्रतिघात और कामरूपित्व।

प्रकामित्व ईशित्वंता, वशिता अघ्रघ ताप ।
अंतर ध्यान जु दशम है, कामरुपित्व तथाप ॥२६८॥

चौपाई ।

एक एकको वरणन करौं, सुखसौं भवसागर उद्धरौं ।
अणूमात्र कर देही भेप, कमल नालके छिद्र प्रवेश ॥२६९॥
सोइ तहां चित पूरे स्रुत, चक्रवर्ति तब रहै विभूत ।
सो सब निज वपुमें ले धरै, अणिमा प्रथम चरित यह करै ॥२७०॥
जोजन एक लाख जो तुंग, मेरु समान शरीर अभंग ।
जब चाहै तब रचै बनाय, महिमा तैं यह गुण अधिकाय ॥२७१॥
पवन समान देख सब ठौर, यह जगमें हलको नहिं और ।
ताही तैं लघु धरै शरीर, लघिमा गुण ऐसो गंभीर ॥२७२॥
वज्र कहावै भारी यहां, यह तै और वखानौ कहा ।
ताही सम तन धारै सोइ. गरिमाको गुण ऐसो होइ ॥२७३॥
बैठो आप धरापर लसै, मेरु अंग अंगुलसौं धसै ।
सूरज आदि ज्योतिषी देव, सबको परसै प्रापति एव ॥२७४॥
जलपर गमन भूमिवत करै, भूतैं अन्तरीक्ष पग धरै ।
निज तनतैं सेनादिक रचै, प्रकामित्व यह गुणको खचै ॥२७५॥
जब जियमें कर विविध हुलाश, जगकी प्रभुताको परकाश ।
तीन लोकपति माने आप, यह ईशित्व तनौ परताप ॥२७६॥
नर तिर्यञ्च अमर दे आदि, सकल जीव वरतैं जु अनादि ।
सबको निज वश कर मुनिराव, यहै वशित्व अमल परभाव ॥२७७॥
दुर्गम विषम पहार उतंग, जिन पै चलिवैंको मन पंग ।

तिन गिरि गमन अकाश समान, अप्रतिघात सुगुन औ जान॥२७८

सबको देखै वह न लखाय, अदरश रूप सदा हो जाय।

अन्तरध्यान तनों बल जोइ, तप बल कहूं न परगट होय ॥२७९॥

सुर नर खग तिर्यञ्च विचार, तिनको रूप विविध परकार।

धरै जासको चाहै रूप, कामरूपि गुण यही अनूप ॥२८०॥

दोहा—बरनी विक्रिय ऋद्धि यह, एकादश गुणवान।

गूढ़ केवलीको सुगम, भाषी श्री भगवान ॥२८१॥

इति विक्रिया ऋद्धि वर्णन।

दोहा—क्रिया ऋद्धि[1] अन्तिम सुनो, बरनौं शाखा दोय।

चारण मुनि नभगामिनी, ताके गुण अवलोय॥२८२॥

चारण ऋद्धी[2] आठ गुण, जल जँघ पहु फल पत्त।

श्रेणि तन्तु अग्नी शिखा, कहौं सबनको जत्त॥२८३॥

अडिल्ल।

भूव्रत करैं विहार मुनी तप जोय हैं।

होइ न जलहि लगार सु जलचारी कहै॥

धरती तैं चतुरंगुल पद्मासन चलै।

जंघाचारी अंग प्रगट तपबल भलै॥ २८४॥

पहुपचारि मुनिराज फूल पै गमन है।

फलचारी फल उपरि चलै अति अपु नहै॥

१—क्रियाऋद्धिके २ भेद हैं—१ चारणत्व और २ आकाशगामित्व।

२—चारणऋद्धिके आठ भेद हैं १—जलगमन, २—जंघागमन, ३—पुष्पगमन, ४ फलगमन, ५ पत्रगमन, ६—श्रेणिगमन, ७—तन्तुगमन और ८ अग्निशिखागमन।

पत्र चारको गमन पात हालै नहीं।
चलै बेलि पर सोय श्रेणि चारी सही॥ २८५॥
सूक्षम कला जु टार तन्तुचारी यहै।
अग्निशिखा पर शंक न चित्त न वंक है॥
देह न परसै अगिन अग्र शिखचारिको।
यह तपसा परभाव ऋद्धि वसुधारिको॥ २८६॥
अब अकाश कर गमन चलै धरि ध्यान जो।
गगन गमन वह ऋद्धि करहि मुनि मान जो॥
नभगामी यह अंग दुतिय पूरौ भयौ।
क्रिया ऋद्धि मुनिराज गमन सूरौ थयौ॥ २८७॥

दोहा—क्रिया ऋद्धि दो गुण कहे, हिंसा रहित सदीव।
सोहै श्री मुनिराजको, ज्ञान शुद्धकी सीव॥२८८॥

इति क्रिया ऋद्धि वर्णन—

दोहा—सप्त ऋद्धि अठताल गुण, विक्रिय ग्यारह अंग।
क्रिया ऋद्धि गर्भित जुगम, संतावन सरवंग॥२८९॥
आठ ऋद्धि उत्तम विमल, वसु मलहारी जोर।
सिद्धि भई जिनराजको, करत तपस्या घोर॥२९०॥
समभावन वरतैं सदा, एकाकी वन ठौर।
सहैं परीषह वीस द्वै, ते वरनौं कछु और॥२९१॥

अथ बाईस परीषह वर्णन—

सवैया इकतीसा।

क्षुधा तृषा शीत उष्ण दंशमशक नग्नार-
ति स्त्री चरजा निषद्य शय्या क्रोश कहिये।

बंधन याचन अलाभ रोग तृण स्पर्श-
मल सत्कार पुरस्कार प्रज्ञा ज्ञान सहिये ॥
अदर्शन युक्त सब बाईस परीषह जान,
ताके भेद भिन्न भिन्न जथाशक्ति लहिये ।
मुनिके शरीर आय अति ही कलेश दाय,
"क्षमाभाव सों विलाय मोक्षपंथ गहिये ॥२९२॥

क्षुधा परीषह वर्णन—

गीतिका छंद।

पाख मास उपास साधत, ध्यान धरि कालहि हनै ।
जाहि भोजन निमित ग्रामहि, तहां विधि कछु नहि बनै ॥
खेद उर तस करत नाही, परम समता थिर रहैं ।
क्षुधा इहि विधि सहत जे मुनि, तिनहुके हम पद गहैं ॥२९३॥

तृषा परीषह वर्णन—

बढ़त प्यास अवास अति ही, त्रास उर व्यापै घनौ ।
कंठ मुख जब सूख आवै, पित्त ज्वर कोप्यौ मनौ ॥
ध्यान अमृत सींचके जब, तृषा तीक्षण नाशही ।
चलै चित्त न किमपि मुनिको, चरण नितिके लागही ॥२९४॥

शीत परीषह वर्णन—

शीत सौं कँपत जग जन, तरु तुषारहिसों डहै ।
वहत झंझा पवन निशदिन, मेघ वर्षा ऋतु गहै ॥
तहँ धीर तटिनी तट जु चौहट, ताल पालन तरु तलैं ।
सहत शीत मुनीश उत्तम, तरन तारन है भले ॥२९५॥

उष्ण परीषह वर्णन—

अगिन सम है धूप ग्रीपम, तपत अति ज्वाला घनी।
तपत प्रबल पहार आदिक, नीर सर सूखत गनी॥
नरहि सुवसन छांह, विलमत कुटे लोचन जाय हैं।
धरत मुनि तव ध्यान गिरि शिर, उष्ण परिषह जय यहै॥२९६॥

दंशमशक परीषह वर्णन—

काटत जु तनमें डांस माखी, व्याल विच्छू विषभरे।
पुनि सिंह वाघ सु स्याल शुंडले, रीछ पीडत अति खरे॥
कष्ट इहि विधि सहत जे मुनि, भाव समता उर लिये।
डंशमशक परीषह जयी, वसहु ते मेरे हिये॥२९७॥

नग्न परीषह वर्णन—

लोक लाज न भय तिन्हैं कछु, नगन तन विहरत मही।
पुनि धर दिगम्बर जैन मुद्रा, ध्यान उर धारत सही॥
शीलव्रत दृढ़ धरैं तन मन, निरविकार सुहावने।
महा मुनिपद नगन विजयी, नमहुं त्रिभुवन भावने॥२९८॥

अरति परीषह वर्णन—

देशमें कहु काल उपजहिं, अधिक सबको दुख तहां।
क्षीण तन जन होंहि विह्वल, धरत धीरज नहि जहां॥
करत कोलाहल घने सो, अरति अति उपजावही।
साधु धीरज गहत उन ही, अरति विजय कहावही॥२९९॥

स्त्री परिषह वर्णन—

ते शूर हैं परधान बहुविध, पकर केहरिको रहैं।
देखि जिनकी भोंह वांकी, कोट जोधा भय गहैं॥

१—कुट-घडा, प्यासके कारण आंखे जलसे भरे हुए घडेपर जाती है। २—हाथी।

रूप सुन्दर जोषिता जुत, करत क्रीड़ा मन रमै।
ते साधु मेरु समान निवसैं, सदा तिनके पद नमै ॥२००॥

चर्या परिग्रह वर्णन—

चार हाथ प्रमाण शोधत, दृष्टि इत उत नहि करैं।
चलत कोमल पाय तिनकै, कठिन धरती पर धरैं ॥
चढ़त थे गज पालकी पर, तास याद न आनही।
सहहिं चर्या दुःख जे मुनि, तिनहिं पद पर नामही ॥२०१॥

निषद्या परिषह वर्णन—

शैल शीस मसान कानन, गुफा विवर बसैं सदा।
तहै आन उपजहु कष्ट कौनहु, कर्मजोगन तैं सदा ॥
मनुष सुर पशु अर अचेतन, विपत आन सतावहीं।
ठौर तज नहि भजहि थिर पद, निषध विजय कहावहीं ॥२०२॥

शय्या परिषह वर्णन—

हेम महलन चित्र सारी, सेज कोमल सोवते।
विकट वनमें एकले है, कठिन भुवि तहां जोवते ॥
गड़त पांहन खंड अति ही, तासको कायर नहीं।
ऐसो परीषह शयन जीतत, नमौं तिनके पद तहीं ॥२०२॥

आक्रोश परिषह वर्णन—

जगत जिय मुनि देखि कोई, कहत दुठ दुर वचन जै।
पाखण्डि ठग यह चोर कोई, मार मार जु कहत जै ॥
वचन ऐसे सुनत जिनके, क्षमा ढाल जु ओढई।
सो अक्रोश, परीष विजयी, तिनहि पदकर जोड़ई ॥२०४॥

वध परीषह वर्णन—

सदा समता गहैं सब सों, दुष्ट मिलि तिन मारहीं।
खेंच बांधै खम्भ सों पुनि, अगनि तनपर जारहीं॥
कोप तहँ मुनि करत नाहीं, पूर्व कर्म विचारहीं।
सहैं वध बन्धन परीषह, तिनहिं पद शिर धारहीं॥२०५॥

याचना परिषह वर्णन—

भयौ जो कछु रोग आदी, देह अति विह्वल भई।
नशा जाल जु रुधिर सूख्यौ, अस्थि चाम विला गई॥
सहत अति ही क्लेश दारुण, महा दुर्धर व्रत धरैं।
अशन औषधि पान आदिक, याचना मुनि नहिं करैं॥२०६॥

अलाभ परीषह वर्णन—

एकबार अहार बिरियां, मौन ले वसती धसै।
जोग भिक्षा बनहि जो नहि, खेद तो उर नहि वसै॥
इमि भ्रमत बहु दिन बीत जाहीं, विरत भावन भावहीं।
सो अलाभ परीष विजयी, साधु गुण तसु गावहीं॥२०७॥

रोग परीषह वर्णन—

वात पित कफ और शोणित, चार ए जब तन बढ़ैं।
रोग शोक अनेक इहि विधि, जीव कायरता चढ़ै॥
सहै वेदन व्याधि दारुण, चाह नहि उपचारकी।
आतपा थिर देह विरकत, जैन मुद्रा धारकी॥२०८॥

तृण स्पर्श परिषह वर्णन—

लगत कांटे गडत कंकरा, पांय अति छिदना भये;

[*पवन प्रेरित धूलि कण उड़ि, जुगम लोचनमें गये।
परकी सहाय न तहू वांछत, भावना सम धरतहीं,]
साधु तृण विजयी परीषह, कृपा हमपर करत ही ॥३०९॥

मान परिषह वर्णन—

चलत अतिहि पसेव ग्रीषम, धूलि उड़ि आंखिन परै।
मलिन देह जु देख मुनिवर, मलिनता नहि उर धरै॥
चारित्र दर्शन ज्ञान जलकर, पाल मल तहँ धोवहीं।
जनित मल परिषह निवारन, साधु ते हम जोवहीं ॥३१०॥

सत्कार पुरस्कार परीषह वर्णन—

महाविद्या निधि मनोहर, परम तपसी गुण गुरू।
वचन हित मित कहत सब सौं, आतमा पद थिर धरू॥
विनय कोय न करत तिनकी, अरु प्रणाम न भापई।
खेद मुनि कछु करत नांही, भाव समता राखई ॥३११॥

प्रज्ञा परीषह वर्णन—

तर्क छन्द जु व्याकरण गुण, कला आगम तव पढ्यौ।
देखि जाकी सुमति वादी, लाज अति उरमें बढ़यो॥
सुनत जैसे नाद केहरि, वन गयंद जु भाजई।
महामुनि इमि प्रज्ञ भाजन, रंच मद नहि छाजई ॥३१२॥

अज्ञान परीषह वर्णन—

कर्‌यौ दीरघ काल मैं तप, कष्ट वहुविध तन सह्यौ।
तीन गुप्ति सम्हार निश दिन, चित्त इत उत नहि रह्यौ॥

---

* कोष्ठकके भीतरका पाठ ऊपरसे जोड़ा गया है। मूल प्रतिमे पाठ छूट गया है।

अवधि मन परजय जु केवलज्ञान, अजहू नहि जग्यौ।
तजैं इहि विधि साधु विकलप, सो अज्ञानी पर ठग्यौ॥

अदर्शन परीषह वर्णन—

काल बहु संयम जु पाल्यौ, नियम व्रत कीनै घने।
होइ तपसौं सिद्धि शिवकी, झूठसी लागत मने॥
जो भाव ये उरमें न आनै, परम समता थिर रमैं।
साधु सोइ अधर्म विजयी, 'नवल' तिनके पद नमैं॥२१४॥

परिषहोंके निमित्त-कारणका वर्णन—
सवैया इकतीसा।

ज्ञानावरणी कर्म उदय प्रज्ञा अज्ञान दोइ,
दरशनावरण तें अदर्शन बखानिये।
अन्तरायके परकाश उपजै अलाभ जास,
बरनौं चरित्र मोह सातौं ठीक ठानिये॥
नगन निषद्या रति अस्त्री क्रोश जाचना जु,
सतकार पुरस्कार ग्यारा अब जानिये।
ग्यारा और बांकी रही वेदनी उदोत कही,
बाईस परीषा सब ऐसी विधि मानिये॥२१५॥

१—ज्ञानावरण कर्मके उदयसे प्रज्ञा और अज्ञान, दर्शन मोहके उदयसे अदर्शन, अन्तरायके उदयसे अलाभ, चारित्रमोहके उदयसे नग्न, निषद्या, अरति, स्त्री, आक्रोश, याचना और सत्कार पुरस्कार तथा वेदनीयके उदयसे क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, चर्या, शय्या, वध, रोग, तृणस्पर्श और मल ये ११ परीषह होते हैं।

किस अवस्थामे कितने परीषह उदय आवें? इसका उत्तर—

वीतराग देव छद्मस्थ पनैं जोग और,
सूक्ष्म सांपराय और गुणस्थान जहीं हैं।
क्षुधा तृषा शीत उष्ण दंश मशक चरजा,
सेज्या सन बंध रु अलाभ रोग सही हैं॥
तृणस्पर्श मल स्पर्श प्रज्ञा एहि चतुर्दश,
परीषह कहूं करम जोगतैं लही हैं।
सबै मुनि उपशम गुणस्थान ताही लग,
बाईस परीषा उदै चारिततैं कही हैं॥३१६॥

एक मुनिके एक कालमे कितने परीषह होसकते है? इसका उत्तर—

दोहा—जो काहू मुनिराजको, उदय होंय सब आय।
तामें तीन न पाइये, उनविंशति दुखदाय॥३१७॥
शीत होय तो उष्ण न, उष्ण होय तो शीत।
चर्या शयन निषद्य त्रय, तिनमें दोय सहीत॥३१८॥

व्रत तथा उत्तरगुणोंका वर्णन—

चौपाई।

पंच महाव्रत भावैं जहां, अतीचार सब नाशैं तहां।
पंच समिति पालैं निरदोष, तीन गुप्तिको कीनौ पोष॥३१९॥

चौरासी लाख उत्तरगुणोका वर्णन—

उत्तरगुण साधैं निरभंग, लख चौरासी ताके अंग।
पांचों अव्रत चार कषाय, रति आरति विदगंछा पाय॥३२०॥
भय मद मिथ्या तह अज्ञान, मन वच काय दुष्ट अर आन।
धरै पिशुनता और प्रमाद, ये इकवीस धरैं मन ल्हाद॥३२१॥

अतिक्रम व्यतिक्रम अरु अतिचार, अनाचार इन चौगुन सार।
भये भेद चौरासी यही, काम विकृति दश सुनिये सही ॥३२२॥
चिन्ता प्रथम प्रवर्तै भारी, दूजै दर्शन वांछाकारी।
दीर्घ उसास कामज्वर चार, दहै देह भोजन रुचिमार ॥३२३॥
प्रसन्न मूरछा काम जु अंध, अष्टम क्रीडा हास्य प्रबंध।
प्राण संदेह नवम गुण जान, मोचन शुक्र दशम पहिचान ॥३२४॥
एव सुगुन वसु सम चालीस, अब विराधना दशविध दीस।
प्रथमहि अस्त्रीको सनसर्ग, अरु शरीर मंडन दुरवर्ग ॥३२५॥
रागी सेवा सहस सुखार, सेवैं सतत परम दुखकार।
लैन सुगन्ध संचरै रैन, अर्थ ग्रहन पुन कोमल शैन ॥३२६॥
दशम कुलीन संसरण थये, आठ सहस अरु चय सम भये।
कृत क्रमके दशभेद * जु पोष, प्रथम अकंपित सूक्षम दोष ॥३२७॥

१—क्षति मन शुद्धिविधेरतिक्रम, व्यतिक्रम शीलव्रतेर्विलघनम्।
प्रभोऽतिचार विषयेषु वर्तन, वदन्त्यनाचारमिहातिसक्तताम् ॥
द्वात्रिंशतिव्य ॥ ९ ॥
—अमितगति आचार्य।

"मनकी शुद्धिके नाशको **अतिक्रम**, शीलवृत्तिके उलंघनको **व्यतिक्रम**, विषयोमे प्रवृत्तिको **अतिचार** और अत्यन्त आसक्तिको **अनाचार** कहते है।" २—आठसौ चालीस। ३—कृति कर्म—आलोचना,

* आकम्पिय अणुमाणिय ज दिट्ठ बादर च सुहुम च।
छण्ण सद्दाउलय बहुजण अव्वत्त तस्सेवी ॥
अर्थ—आकंपित, २—अनुमानित, दृष्ट, बादर, सूक्ष्म, प्रच्छन्न, शब्दाकुलित, बहुजन अव्यक्त और तत्सेवी।

त्रय अविक्त¹ अनुमानित चार, [प्र]छन्न दोष पंचम अवधार।
दृष्ट दोष षष्ठम जानिये, बादर दोष सप्तम मानिये ॥३२८॥
शब्दाकुलित अष्टमौ कौप, बहुगम पूर्वभोग चितौन।
इन दशसों गुनिये सब जान, सहस चुरासी भये प्रमान ॥३२९॥
अब संजम दश सुनौ प्रकाश, प्रथम भेद आलोचन जास।
प्रतिक्रमण द्वै तदुभय तीन, चदु विवेक उत्सग पन लीन ॥३३०॥
तप छेदन मूलहिं परिहार, उपस्थान नवमौं अवधार।
इष्टच्छेद दशहि गुण सार, आठ लाख चालीस हजार ॥३३१॥
अब दश धर्महिको सुन भेव, उत्तम क्षम आदिक गन लेव।
इनि दश गुन चौरासी लाख卐, जब पालै उत्तर गुण भाख ॥३३२॥

१—अव्यक्त।

चौरासी लाख उत्तरगुणोंका स्पष्ट वर्णन—

卐 हिंसा, झूठ, चोरी कुशील और परिग्रह ये पांच अव्रत। क्रोध, मान, माया, लोभ ये चार कषाय। रति, अरति, जुगुप्सा, भय, मद, मिथ्यात्व, अज्ञान, मनोदुष्टता, वचन दुष्टता, काय दुष्टता, पिशुनता और प्रमाद... ये २१ मुख्य दुर्गुण है। इनमे अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, और अनाचार रूपसे प्रवृत्ति होती है। इसलिये २१ मे ४ का गुणा करनेपर ८४ भेद हुए। ये ८४ भेद नीचे लिखी हुई कामकी १० अवस्थाओसे होते है—[चिन्ता (१), दर्शनवांछा (२), दीर्घश्वास (३), कामज्वर (४), शरीर दाह (५), भोजनकी इच्छा नष्ट होना (६), मूर्च्छा (७), कामसे अन्ध होकर हास्य मजाक करना [उन्माद] (८), प्राण सन्देह (९), और वीर्यक्षरण (मरण)।] (१०) इसलिये ८४ मे १० का गुणा करनेपर ८४० भेद हुए। इन भेदोंमे नीचे लिखी हुई १० प्रकारकी विराधना होती है—[स्त्री संसर्ग (१), शरीर मण्डन (२), दुष्ट वर्णकी सेवा (३), रागियोंकी सेवा (४), रसायन वगैरह उद्दीपक पदार्थोंका

अरु अठवीस मूलगुण लहै, ते प्रमत्त गुण थानक कहे।
ईहि विधि गुण धारैं निज काय, वीरनाथ प्रभु भवि सुखदाय ॥३३३॥
इत्यादिक आचार सहीत, विहरैं देश ग्राम जग वीत।
रहैं मौन सों सदा समेत, तोहू वपु दरशावें हेत ॥३३४॥
नगर उज्जैन बसै शुभ थान, [म]शान भूमि बन निकट प्रमान।
तहां जाय प्रभु दीनौं ध्यान, चित अडोल प्रतिमा जिम जान ॥३३५॥
मेरु शिखर सम मनों अनूप, उरमें जपैं आतमा रूप।
पुत्र सात्यकि अन्तिम रुद्र, स्थाणु नाम है पाप समुद्र ॥३३६॥

सेवन (५), सुगधित द्रव्य ग्रहण (६), रात्रिमे यहां वहां घूमना (७), विषयोमे प्रवृत्ति करनेके लिये धनका सचय करना (८), कोमल शय्यापर सोना (९), और नीच मनुष्योकी सगति करना (१०)।] इसलिये ८४० मे १० का गुणा करनेपर ८४०० भेद हुए। इन भेदोमे नीचे लिखे हुए १० कृतिक्रम-आलोचनाके दोष लगते है—[आकम्पित (१), सूक्ष्म (२), अव्यक्त (३), अनुमानित (४), प्रच्छन्न (५), दृष्ट (६), बादर (७), शब्दाकुलित (८) बहुगम-बहुजन (९), और पूर्वभोग चितवन-तत्सेवी (१०)।] इसलिये ८४०० मे १० का गुणा करनेपर ८४००० भेद हुए। इन भेदोकी साधना नीचे लिखे हुए १० प्रकारके संयमोसे होती है—[आलोचना (१), प्रतिक्रमण (२), तदुभय (३), विवेक (४), व्युत्सर्ग (५), तप (६), छेद (७), परिहार (८), उपस्थापन (९) और इष्टच्छेद (१०)।] इसलिये ८४००० मे १० का गुणा करनेपर ८४०००० भेद हुए। ये भेद, उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, सयम, तप, त्याग, आकिचन्य और ब्रह्मचर्य, इन १० धर्मो द्वारा पूर्णताको प्राप्त होते है। इसलिये ८४०००० मे १० का गुणा करनेपर ८४००००० चौरासी लाख भेद होते है। ये भेद ग्रन्थकर्ताद्वारा बतलाई पद्धतिके अनुसार स्पष्ट किये गये है।

प्रभुको देख वैर निज जान, किय उपसर्ग ततक्षण आन।
चलविद्या आरंभन कियौ, अति विकराल रूप धर लियौ ॥३३७॥
छिनक थूल छिन सूक्षम होय, छिन रोवै छिन गावै सोय।
नख अरु दन्त बढ़ाये घने, मुख ज्वाला नहि देखत बने ॥३३८॥
वीरनाथ जिन मेरु समान, चित अडोल अति धीरजवान।
तब शठ और उपद्रव ठान, धरौ सिंह सम रूप भयान ॥३३९॥
तरतराय गरजै अधिकार, निज निज हस्त शस्त्र विकरार।
फिर फणीन्द्रको रूप कराय, जित तित व्याल रहै फन छाय ॥३४०
पुनि कीनी सेना अधिकार, निज आयुध धारी रनसार।
मारु मारु मुखतैं उच्चरै, कायर नर देखत ही मरैं ॥३४१॥
प्रभु निज आतममें लवलीन, पापी पाप आपको कीन।
प्रलय पवन जो अतिबल करै, मेरु मही नहि टारे टरै ॥३४२॥
दोहा—धन्य वीर जिनराज जग, तन मन चलउ न रंच।
अचल ध्यान धर मेरु सम, जीती इंद्रिय पंच ॥३४३॥
चल्यौ न बाकौ चाल कछु, लंपट भयौ मलीन।
चरण कमल प्रभुके प्रणमि, पुनि बहुविधि थुति कीन ॥३४४

चौपाई।

तुम प्रभु जगमें सुगुरु सुजान, तुम वीरनमें वीर महान।
तुम सम तेज न जगमें और, जीती दुसह परीषह ठौर ॥३४५॥
संग रहित विहरत जिमि वाऊ, अचल मनों पर्वतके राऊ।
क्षमावंत पृथिवी सम देव, गुण गहीर सागर जिमि एव ॥३४६॥
भव उपदेशक सुधा समान, कर्म महावन अगिन प्रमान।

वर्धमान जय वर्धक बांन. सन्मति शुभमति दाता जान ॥३४७॥
नमौं मेरु सम अचल जिनेश, नमौं आत्मा थिति परमेश।
नमौं जोग प्रतिमा सम चित्त, नमौं एक सम अरि अरु मित्त ॥३४८॥

दोहा—यह प्रकार थुति कीन बहु, पुनि पुनि प्रनमैं पाय।
क्षमा करो मो दीनपर, महावीर जिनराय ॥३४९॥
उमा सहित नृत्तत भयौ, अति आनंद उर नेह।
चारित हीन जु रुद्र यह, गयौ आपने गेह ॥३५०॥
धीरजको धर सत पुरुष, टरै विपत अंकूर।
सन्मति प्रभु उपसर्ग सह, दुर्जनके मुख धूर ॥३५१॥
पाप कियौ शठ आपको, प्रभु बाधा नहि लेश।
सो श्री सन्मति प्रभु हमहि, भव भव शरण महेश ॥३५२॥

अडिल्ल—हुंडासर्पिणी दोष, आप अप्रिय करै।
तीर्थंकर उपसर्ग, मान चक्री हरै॥
त्रेशठ पद जु महान, जीव उनसठ धरै।
होंहि पांच पाखण्ड, विप्र कुल आदरै॥ ३५३॥

चन्दना सतीकी कथा—

चौपाई।

वनवासी विहरत भगवान, कथा और अब सुनहु सुजान।
[1]सिद्ध देश विशाल पुर सार, चेटक नाम नृपति गुण भार ॥३५४॥
तिनके सात सुता ऊपनी, प्रथमहि त्रिशला मात जिन तनी।
दूजी ज्येष्ठा रुद्रहि माय, तृतिय चेलना श्रेणिक लाय ॥३५५॥

१—सिन्धदेश।

चौथी मशक पूर्व जननीय, पंचमि सुता चन्दना प्रीय।
रूपवंत रतितैं अधिकार, शील शिरोमणि गुण अविकार ॥३५६॥
सो सब जो मैं वर्णन करौं, होय अवार पार नहिं धरौं।
एक समय वन क्रीड़ा गई, कामातुर खगपति हर लई ॥३५७॥
ता पीछे चित्यौ सब सोइ, निज त्रियकी भय कंपित होइ।
ताको छोड़ महा उद्यान, खगपति गयौ आपने थान ॥३५८॥
वनमें सो सुन्दरि एकली, पूरब करम भजै मन रली।
मनमें पंच परम गुरु आन, धरम ध्यान निहचै परवान ॥३५९॥
इह अवसर इक वनचर आय, अवलोकी सुंदरिको जाय।
रूपवंत लक्षण संजुत्त, ले आयो सो ताहि तुरंत ॥३६०॥
कौशाम्बी पुर नगर महान, वृषभसेन तहं सेठ सुजान।
तिहिको आनि दई नर ताहि, अति प्रमोद कर लीनी वाहि ॥३६१॥
ताके गेह सुभद्रा नार, देखि चन्दना मनहिं विचार।
रूपवंत नवजोबन जान, मनमें सौत शंक अतिमान ॥३६२॥
रूप हननको उद्यम कियौ, कष्ट चन्दनाको तिहि दियौ।
अधिक पुराने कोदौं बीज, स्वाद रहित मनमें सो खीज ॥३६३॥
तक्र सहित मृत[1] भाजन मांहि, सो दीनौ दुरबुद्धिनि ताहि।
खाय नहीं रोवै जब खरी, पापिनि और उपाय जु करी ॥३६४॥
बन्धन बांधि आखैननि[2] धरी, बहुत भांति बहु संकट परी।
भुगतै पूरब करम जु धीर, धर्मध्यान नहि तजै शरीर ॥३६५॥
तिहि अवसर वाही पुर पाय, चैरजा[3] हित आये जिनराय।

१—मिट्टीके वर्तनमे, २—तलघरामें, ३—चर्याके लिये—अहारके लिये।

देख चन्दना प्रभुको सबै, बन्धन टूट गये वपु सबै ॥३६६॥
तनके सकल शोक नश गये, परम हुलास चित्तमें भये।
सन्मति प्रभु पद प्रनमैं आय, हस्त जोर भुवि शीस लगाय ॥३६७॥
पडगाहै विधिपूर्वक सोइ, भक्तिभाव अति उरमें जोइ।
शील महत्व सबै यह जान, पाये प्रभुको कृपानिधान ॥३६८।
सो वह तक्र कोदवन वोद, तंदुल खीर भयौ अनुमोद।
माटी पात्र हेम मय सोय, धरम तनैं फल कहा न होय ॥३६९॥
वही अन्त प्रासुक विधि सार, दीनौ प्रभुको परम अहार।
भक्तिभाव ताके उर भयौ, नवप्रकार विधि पुण्य जु लयौ ॥३७०॥
पंचाश्चर्य किये सुर छाय, रतनादिक वरषा अधिकाय।
ले अहार प्रभु वनको गये, ध्यानारूढ़ आतमा नये ॥३७१॥
वृषभसेन प्रनमैं पद आय, तुम हो सती शिरोमणि माय।
अरु बहु अस्तुति कीनी सबै, मो अपराध क्षमा कर अबै ॥३७२॥
होइ दानसों सुख अधिकाय, संकट विकट सबै मिट जाय।
क्षणभंगुर जाने संसार, प्रभु पद लयौ महाव्रत धार ॥३७३॥
दोहा- लहो चन्दना दान फल, जगमें जस अधिकाय।
शील सहित दीक्षा लई, भई अर्जिका जाय ॥३७४॥

वर्धमानस्वामीकी तपस्या तथा कर्मक्षय निरूपण—

छन्द चाल।

प्रभु विहरै वन बहु ग्रामा, उर ध्यान धरैं अभिरामा।
मौनी छद्मस्थ महाना, रहै द्वादश वर्ष प्रमाना ॥३७५॥
अब चंवक ग्राम सुथाना, बाहिर वन सुभग महाना।
ऋजुकूला सरिता नीरा, तहँ रतन-शीला गम्भीरा ॥३७६॥

ऊपर तरु 'साल बखानौ, शाखा गम्भीर सुजानौ।
श्री सन्मति प्रभु तहँ आई, प्रतिमा सम ध्यान धराई ॥३७७॥
प्रभु जिहि वन धारै जोगा, षट ऋतु फल फूल मनोगा।
गो सिंह रहैं इक थाना, सब मैत्री भाव निदाना ॥३७८॥
शील सहस्र अठारह जानौ, ताको तन बखतर मानौ।
ताके अब सुनियो भेदा, जातें सब नाशै खेदा ॥३७९॥

शीलके अठारह हजार भेदोंका वर्णन—

दोहा—देव मनुष तिरजंचिनी, नारी तीन विनोद।
त्यागौ मन वच कायसौ, कृत कारित अनुमोद ॥३८०॥
पांचौं इंद्रिय सौ गुणैं, संज्ञा चार बखान।
दर्वित भावित दोय गुण, षोड कषाय प्रमान ॥३८१॥
सत्रह सहस जु दोयसै, ऊपर असी निदान।
अब अजीव त्रिय भेद सुन, चित्र काठ पाषान ॥३८२॥
मन वच त्यागौ दोय गुण, कृत कारित अनुहर्ष।
पांचौं इन्द्रिय संज्ञ चहु, दर्वित भावित पर्ष ॥३८३॥
सातसै वीस जु जोरकै, ए सब देव मिलाय।
शील अठारह सहस गनि, भेद कहे जिनराय ॥३८४॥*

---

*शीलके अठारह हजार भेदोंका स्पष्ट निरूपण।

देव, मनुष्य और तिर्यञ्च इन तीन प्रकारकी चेतन स्त्रियोंका मन, वचन, काय तथा कृत, कारित और अनुमोदनासे त्याग करने पर ३×३=९×३=२७ भेद हुए। इन सत्ताईस भेदोंका द्रव्य और भावरूप पांच पांच इन्द्रियोंसे त्याग हुआ इसलिये २७×१०=२७० भेद हुए। २७० भेदोंका आहार, भय, मैथुन और परिग्रह रूप चार संज्ञाओंसे त्याग हुआ अत: २७०×४=१०८० भेद हुए। १०८० भेदोंका अनन्तानु-

पद्धड़ि छन्द।

सम्यक्त्व महागज पर अरूढ़, वैराग तनी नर भूमि गूढ़।

बन्धी-क्रोध, मान, माया, लोभ आदि १६ कषायोसे त्याग हुआ अतः १०८०×१६=१७२८० भेद हुए।

काष्ठ, पाषाण और चित्रकी अपेक्षा अचेतन स्त्रीके भेद ३ है। इन ३ भेदोका मन, वचन, काय तथा कृत कारित और अनुमोदनासे त्याग होनेपर ३×२=६×३=१८ भेद हुए। इन भेदोका द्रव्य तथा भाव रूप दश इन्द्रियोसे त्याग हुआ अतः १८×१०=१८० भेद हुए। इन १८० भेदोका आहार, भय, मैथुन तथा परिग्रह रूप ४ सज्ञाओसे त्याग हुआ अत. १८०×४=७२० भेद हुए। चेतन स्त्रीके १७२८० भेदोमे अचेतन स्त्रीके ७२० भेद मिला देने पर १७२८०×७२०=१८००० अठारह हजार शीलके भेद होते है।

ये भेद ग्रन्थकर्ताके मतानुसार स्पष्ट किये है। अन्य ग्रन्थोमे अन्य प्रकारसे भी शीलके १८००० भेद बतलाये है। जैसे—१-विषयाभिलाषा, २-वस्तिविमोक्ष, ३-प्रणीतरससेवन, ४-ससक्त द्रव्यसेवन, ५-शरीराङ्गोपाङ्ग अवलोकन, ६-प्रेमीसत्कार पुरस्कार, ७-शरीरसस्कार, ८-अतीत भोगस्मरण, ९-अनागत भोगाकांक्षा, १०-इष्टविषय सेवन, ये दश तरहकी प्रवृत्तियां १-चिन्ता, २-दर्शनेच्छा, ३-दीर्घनिश्वास, ४-ज्वर, ५-दाह, ६-भोजन रुचित्याग, ७-मूर्च्छा, ८-उन्माद, ९-जीवन सन्देह और १०-मरण=इन दश प्रकारकी प्रवृत्तियोसे होती है अतः १०×१०=१०० भेद हुए। ये १०० भेद स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु और श्रोत इन पांच इन्द्रियोसे हुए अतः १००×५=५०० भेद हुए ये ५०० भेद मन, वचन, काय तथा कृत कारित और अनुमोदनासे होते है अतः ५००×३=१५००×३=४५०० भेद हुए। ये ४५०० भेद जागृत और स्वप्न अवस्थाके भेदसे दो प्रकारके होते है अतः ४५००×२=९००० भेद हुए। ये ९००० भेद चेतन तथा अचेतनकी अपेक्षा दो तरहके होते है अतः ९०००×२=१८००० अठारह हजार भेद हुए।

तप चाप लियौ करमें महान, पुनि दर्शन ज्ञान जु तीक्ष्णवान ॥३८५॥
अब पंच महाव्रत समिति पंच, अरु तीन गुप्ति सब सेन संच।
इहि विधि आलंकृत सुभट वीर, है सबै एकतैं एक धीर ॥३८६॥
उन कर्मशत्रु मन दमन साथ, आरत्य रौद्र किय जब्र हाथ।
इन ही को जीतें सिद्धि होय, गुण अष्ट जीवतहि लहइ सोय ॥३८७॥
प्रभु निरमल चित अति अचल होय, मन धर्मध्यान उत्कृष्ट सोय।
जिन चौथे गुणथानक अगार, क्षय करी प्रकृति सातों सँवार॥३८८॥
सो क्रोध मान माया रु लोभ, ए अनंतानुबन्धी अछोभ।
मिथ्यात समय मिथ्यात जान, पुनिसमय प्रकृति मिथ्यात हान३८९॥
जब सात प्रकृति इन घात होय, तब क्षायिक समकित शुद्ध होय।
प्रभु तप बल सातम गुणस्थान, तहँ तीन प्रकृति चूरी महान ॥३९०॥
तिरजंच आयु अर देव आयु, पुन नरक आयु ये तीन भाव।
अब मोह भूप दल डगमगान, प्रभु जीत लये जोधा महान॥३९१॥

चौपाई।

सप्त अष्ट नवमे गुण थान, तीनँ[2] करण कीने भगवान।
प्रथम जघन मध्यम उत्कृष्ट, चारित करत यही त्रय सृष्ट॥३९२॥

पद्धड़ि छन्द।

अब शुकल ध्यान आयुद्धँ[3] लीन, अष्टम गुणथानक पाँय दीन।
तहँ क्षपकश्रेणि आरूढ़ होय, ए करम शत्रु क्षय करहिं सोय॥३९३॥
नवमैं गुणथानक चढ़िव जोर, छत्तीस प्रकृति खिपि दई घोर।

१—तपरूपी धनुष। २—अधःकरण, अपूर्व करण, अनिवृत्ति करण।
३—शुक्लध्यान रूपी हथियार।

सो प्रथम भाग सोरह क्षिपाय, प्रचला प्रचला नहिं उर सुहाय॥३९४
निद्रा निद्रा अस्त्यानगृद्धि, बादर सूक्ष्म उद्योत वृद्धि।
साधारण अरु आताप भांति, एकेन्द्रिय द्वय त्रय चतुरजाति॥३९५
गति नरक और तिरजंच होइ, इन सहित पूरवी कही दोय।
तिहि दूजे भाग सु खिपा आठ, प्रत्याख्यानअप्रत्याख्यान गांठ३९६
जुत क्रोध मान माया रु लोभ, तीजे जु नपुंसकवेद भोभ।
चौथे खिपि अस्त्री वेद जोग, पांचमैं हास्य रति अरति जोग॥३९७॥
भय सहित दुगंछा छहौं जोइ, षष्ठमैं भाग पुंवेद सोइ।
सप्तमैं संज्वलन क्रोध जान, अष्टमैं भाग संज्वलन थान॥३९८॥
नवमैं जु भाग माया विनास, ए कहीं प्रकृति छत्तीस भास।
दशमैं गुणथानक सूक्ष्म लोभ, इहि विधि अरि घाते हृदय क्षोभ।३९९
प्रभु पूर्यौ दूजौ शुकलध्यान, तब चढ़ै बारहैं गुणस्थान।
तब चूरी सोरह प्रकृति भाग, निद्रा प्रचला दुइ प्रथम भाग॥४००॥
अब दुतिय भाग चौवीस नास, हनि ज्ञानावरणी पंच भास।
मतिश्रुत जु अवधि ये तीन जान, मनपर्यय केवलज्ञान चान॥४०१॥
अब दरशन वरनी प्रकृति चार, चखु अचखु अवधि केवल विचार।
खिपि अन्तराय वीरज सजोग, अरु दान लाभ भोगोपभोग॥४०२

अडिल्ल।

ज्ञानावरनी पंच प्रकृति जुत सो हनी,
दरशनकी नव घात अठाइस मोहनी।
अन्तराय है पंच सबै सैंताल ये,
आयु करमके तीन नाम तेरह गये॥ ४०३ ॥

दोहा—ए सब त्रेशठ प्रकृति हनि, प्रबल घातिया कर्म ।
रही अघातिनि चारकी, प्रकृति पचासी नर्म ॥४०४॥

गीतिका ।

इहि भांति उर संवेग धर, प्रभुराज सुख त्यागे घनै ।
पुन बाल दीक्षा आदरी जिन, विविध तप लाग्यौ भनै ॥
जीती परीषह सहिउ उपसृग, घातिकर्म विनाशियौ ।
यह जगत कर्म निवारिये, मुहि 'नवलशाह' प्रनामियौ ॥४०५॥

दोहा—वीर करम हनि वीर प्रभु, वीर नमौं वर वीर ।
वीर शकति परगट करी, तुम गुण साहस धीर ॥४०६॥

इति कविरत्न श्री नवलशाहजी विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमे
भगवानके दीक्षा कल्याणकका वर्णन करनेवाला
दशम अधिकार पूर्ण हुआ ।

एकादश अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा—श्री सन्मति प्रभु गुन गरुव, केवलज्ञान सुभान।
मिथ्यातम हर जग दरश, वन्दौं शिरधर पान॥ १॥
तेरहमें गुण प्रभु चढ़े, उपजो पंचम ज्ञान।
लोकालोक प्रकाशियो, वस्तु चराचर जान॥ २॥

उत्तम मास नाम वैशाख, शुकलपक्ष दशमी तिथि भाष।
हस्त उत्तरा नखतहि वीच, चंद्र जोग शुभ लगन गनीच॥ ३॥
प्रभु तव केवललब्धि सहाय, तिनके नाम सुनो समुदाय।
क्षायिक सम्यक दायक मोख, यथाख्यात चारित सुख पोख॥ ४॥
दान लाभ भोगौ उपभोग, वीरज केवल दरशन जोग।
केवलज्ञान अनन्त प्रकाश, ये ही नव लब्धी सम भास॥ ५॥
लोकालोक चराचर भाव, वहु परजय विधिवंत सुहाव।
ते सब आन एक ही वार, झलकें केवल[1] मुकुर मझार॥ ६॥
अनंत चतुष्टय सजि संयुक्त, तिनके नाम लिखौं श्रुत उक्त।
दरशन वरनी कीनी क्षीन, अनंत दरशन प्रापति लीन॥ ७॥
ज्ञानावरणी कर्म निवार, ज्ञान अनन्त लह्यौ गुणभार।
मोह करमको कीनौ नाश, सुख अनन्त तिष्ठै नभ वास॥ ८॥
अन्तरायको क्षय कर धीर, वीर्य अनन्त भये वर वीर।
दिव्य परम औदारिक देह, कोटि भानु द्युति जीती तेह॥ ९॥

१—केवलज्ञानरूपी दर्पण।

और अनेक संपदा सार, वरणत होय बहुत विस्तार।
पंच हजार धनुष परवाँन, अन्तरीक्ष प्रभु उपजत ज्ञान ॥१०॥
ज्यों शशि सोहै अम्बर थान, तैसे ही प्रभु वीर महान।
निर्मल गगन भयौ जु अनूप, दिशि विदिशा सब अमल सरूप ॥११॥
पहुप अंजली क्षिपहिं जु देव, गन्धोदक बरषै बहु भेव।
रत्न धूलि दश दिशि पूरन्त, मन्द मन्द अति वायु बहंत ॥१२॥
कल्प लोक अनहद रव भयौ, घंटा शब्द मनोहर ठयौ।
होय मधुर ध्वनि अति गंभीर, मनौं सिन्धु यह गर्जत नीर ॥१३॥
सिंहासन हरि कंपित भयौ, सकल मान तनतै गल गयौ।
नम्रीभूत मौलि निज जान, देखौ सो आश्चर्य महान ॥१४॥
इन्द्र अवधि कर जान्यौ जास, केवलज्ञान भयौ जिन तास।
सिंहासन तजि चलि पद सात, नमें जु चरण शीस धर हात ॥१५॥
तब इन्द्राणी पूँछे एव, कारण कौन कहो भो देव।
वीर नाथ जिन अतिशय सबै, सकल सभा प्रभु भाषौ तबै ॥१६॥
ज्योतिषवासी देव जु इन्द्र, आसन कंप भये सब वृन्द।
सुरगण सरव सु पूरव रीत, सिंहनाद रव अनहद प्रीत ॥१७॥
भवनपती आश्चर्य लहेइ, मुकुट नमित आसन कंपेय।
शंखध्वनि अनहद भई तबै, जान्यौ केवल अतिशय सबै ॥१८॥
व्यंतर सकल भयौ कहराव, भेरी अनहद पूर रहाव।
नम्रीभूत भये तज ठौर, अब वरणन आगे कछु और ॥१९॥
बहु प्रकार अतिशय जु लहेव, केवलज्ञान चिह्न चहुं देव।

वन्दन काज कल्प धिपराज, घंट बजाय चलैं करिगाज ॥२०॥
आज्ञा दई चलाहक देव, सकल विभूति रचौ बहु भेव।
शीस नाय आदिश तिहि लयौ, बहु परकार विक्रिया ठयौ ॥२१॥
प्रथम विमान रच्यौ रमणीक, जोजन एक लाखको ठीक।
मुक्तालय बत शोभत जास, दिव्य रत्न तिहि तेज प्रकाश ॥२२॥
फिर ऐरावत गज मद भरै, उज्वल मनौं फटिक गिरि धरै।
जम्बूद्वीप प्रमाणहि अंग, मस्तक सोहै अती उत्तंग ॥२३॥
दीरघ शुंड करौ भमांहि, अति बलवंत जु बरनौं काहि।
कामरूप छवि अंग रसाल, व्यंजन लक्षण सहित विशाल ॥२४॥
दीरघ ओंठ बनैं अति अरुन, सैन बरण सोहैं ता दशन।
घंटा घनैं ग्रीवमें माल, मानों नरपन उदय किय हाल ॥२५॥
दीरघ श्वाॅस लेत अति सोय, मनों दुन्दुभी शब्द जु होय।
अति आनंद पंक्ति रमणीय, कर्ण चंवर सोहैं कमनीय ॥२६॥
मद निरझरत लिप्त अति अंग, पर्वत सम चालैं मन रंग।
किंकिणि शब्द होय अधिकाय, दीपति रही दशों दिश छाय ॥२७॥
ताके मुख बत्तीस बखान, मुख प्रति दशन अष्ट उनमान।
दंत दंत सर एकहि भर्यौ, जलकर चहूं ओर लह रह्यौ ॥२८॥
सर प्रति कमलिनिको है वास, मिति बत्तीस पृथक कर जास।
कमलिनि प्रति हैं कमल बतीस, दल बत्तीस कमल प्रति शीस ॥२९॥
दलदल प्रति अपछरा प्रचान, हैं बत्तिस बत्तिस परमान।
दिव्यरूप मन हरैं सु एव, नृत्यत सकल सुरेशहि सेव ॥३०॥

१–स्वर्गके इन्द्र सामक्र सौधर्मेन्द्र।

छत्तीस कोटि चौरासी लाख, अड़तिस सहस छसै तह भाख।
छप्पन अधिक सबै कौमार. यह सौधर्म इन्द्र वर नार ॥३१॥
मुख विकसत इन्दीवर जास, ताल मृदंग गीत रस रास।
इहि प्रकार शोभित गजराज तापर इन्द्र लियै सब साज ॥३२॥
शची सहित अति पुण्य उपाय, बहु आभरण अंग पहिराय।
वर्धमान जिन केवलज्ञान, करन महोत्सव चलै महान ॥३३॥
अरु प्रतीन्द्र निज वाहन रूढ़, सब परिवार सहित मन गूढ़।
सज सामानिक देव प्रमान, सहस चौरासी इन्द्र समान ॥३४॥
हैं तेतीस पुरोहित देव, तितने मंत्री इन्द्रहि देव।
बारह सहस प्रथम मन लाई, इन्द्र नजीक परिधि सम थाई ॥३५॥
चौदा सहस देव मधि नमैं, दूजी परिधि जुक्तकर नमैं।
निर्जर सहस जु षोडश लीन, तीजी परिधि इन्द्र कह दीन ॥३६॥
सुरपति निज रक्षक हैं सार, तीन लाख छत्तीस हजार।
लोकपाल चारों सम चेत, धरैं शक्र आज्ञा निज हेत ॥३७॥
दुर्गपाल नभपाल विशाल, लोकपाल लौकांतिक पाल।
दश दिक पाल दशौं दिश जोय, आज्ञा इन्द्र धरैं सुर सोय ॥३८॥
पुरजन भृत्य समान जु होय, किल्विष देव नीच तहँ होय।
दश प्रकार यह सभा प्रमान, शक्र संग सो कियो पयान ॥३९॥
दल सप्तांग संग सुरराज, सब उनचास अनीका साज।
प्रथम वृषभ दल संख्या जान, सो वरनौं आगम परमान ॥४०॥
दिव्यरूप है बल अति सक्त, सात अनीजुत धर वृषयुक्त।
प्रथमहिं चौरासी लख ठीक, तातैं दुगुण दुतिय रमणीक ॥४१॥

तातें दुगुण तृतिय देखना, ऐसे दुगुण दुगुण लेखना।
सप्त अनीका यहै प्रमान, नानावरण वृषभके थान॥४२॥
एक अरव छह कोड़ वखान, ऊपर अड़सट लाख प्रमान।
यह सब सात वृषभ दल जोर, यह विधि लीजौ और वहोर॥४३॥
अब तुरंग दल ऐमहि जान, सात अनीक तास वाखान।
रथ मणिमय अति तेज प्रकास, सप्त अनीका कीनौ जास॥४४॥
याही विधि गज मत्त वखान, सात अनीका है परवान।
ऐसे ही पयदल जुगवत्त, सात अनीका है हिरवत्त॥४५॥
दिव्य गीत गावें गन्धर्व, सात अनीका करके सर्व।
नर्तक सुर वादित्र बजाय, सात अनीका जानो भाय॥४६॥
दोहा—वृषभ आदि सप्तांग दल, दुगुण दुगुण विस्तार।
एक एक प्रति सात भन, सब उनचास प्रकार॥४७॥
सात अरब पहिचानिये, और छियालिस कोड।
लाख छिहंतर अधिक सब, उनंचास दल जोड़॥४८॥
बहुविध सुर साजी विभव, को बुध बरननहार।
हरपभाव सब ही चढ़े, जय जय करत अपार॥४९॥

चौपाई।

सो सौधर्म इन्द्र मन रंग, सकल विभूति लई निज संग।
ईशाने सुरधिप धर धर्म, अश्वारूढ़ भयौ गुण पर्म॥५०॥
है मृगेन्द्र वाहन सुरराज, सनत्कुमार सकल करि साज।
वृषभ महेन्द्र कल्पके थान, चढ़ि चाल्यौ परिवार महान॥५१॥
ब्रह्म स्वर्गपति सारस रूढ़, हंस चढ्यौ लान्तवधिप गूढ़।

शुक्रहि इन्द्र गरुड़ असवार, सामानिक सँग सब परिवार ॥५२॥
स्वर्ग शतार ताहि आधीश, चढ़ि मयूर वाहन नम शीस।
आनत आदि इन्द्र चत्वार, पुष्प विमान भये असवार ॥५३॥
इहि प्रकार द्वादश सुरराज, सब विभूति लीनी दल साज।
अरु प्रतीन्द्र बारह सम उक्त, अपने अपने वाहन जुक्त ॥५४॥
पटह बजैं अति शब्द गँभीर, दशदिशि ध्वनि पूरित वर वीर।
छत्र ध्वजा छायौ नभ भाग, स्वर्ग विभव जिमि आयौ जाग ॥५५॥
गीत नृत्य वाद्यादिक करैं, जिनवर ज्ञान महोत्सव धरैं।
मानों ऋतु वसंत शोभंत, कोकिल मधुर वचन घोषंत ॥५६॥
ज्योतिष पटल देव सब भार, चन्द्र सूर्य ग्रह नखत जु तार।
अपनै अपनै वाहन साज, मंडित सकल विभूति विराज ॥५७॥
असंख्यात सब सहित जु देव, धर्मराग रस अंकित सेव।
जिनवर कल्याणक वंदना, चले देव अरु देवांगना ॥५८॥
भवनासुर अति आतुर चले, दशहि दिशन दल साज जु मिले।
असुरकुमार इन्द्र दो ठान, चामर और विरोचन जान ॥५९॥
नागकुमार दोय गुण धाम, धरणेन्द्र हि अरु आनंद नाम।
विद्युतकुंवर दोय वितपन्न, हरिसिंह हरिकान्ता जुवरत्न ॥६०॥
सुपर्णकुमार दोय स्वामीश, वेणुसिन्धु वेणुतालीस।
अग्निकुमार इन्द्र है जुग्म, अग्निवाह पितृवाहन जुग्म ॥६१॥
वातकुमार इन्द्र दुइ होय, बालअंजन प्रभअंजन दोय।
स्तनितकुमार भवनके राज, घोष महाघोष दुइ साज ॥६२॥

उदधिकुमार इन्द्र दो जान, जलकान्ता जलप्रभा वखान।
द्वीपकुमार इन्द्र है सोय, पूरण प्रथम विशिष्ट जु दोय ॥६३॥
दिक्कुमार है इन्द्र महान, अमितगति अमितवाहन ठान।
ए दश भवन इन्द्र गन वीस, अरु प्रतीन्द्र गन सब चालीस ॥६४॥
श्री जिन ज्ञान कल्याणक सेव, देवनि सहित साज सब देव।
हर्ष सहित मन वच तन प्रीत, करें महोत्सव धर्म सुरीत ॥६५॥
व्यन्तर देव अष्ट परकार, तिनकौ भेद कहौं कछु सार।
किन्नर प्रथम इन्द्र हैं दोय, किनर प्रभ किन्नरमति जोय ॥६६॥
अरु किम्पुरुष इन्द्र दो जान, महापुरुष सतपुरुष प्रमान।
महोरग इन्द्र जाति दो सही, अतीकाय महकाया यही ॥६७॥
गंधर्वहि दो इन्द्र महान, गीत रती जस गीत सुजान।
यक्ष इन्द्र दो नाम प्रताप, पूर्णभद्र मणिभद्र मिलाप ॥६८॥
राक्षस इन्द्र कहे जु वखान, भीम प्रथम मह भीम प्रवांन।
भूतदेव हैं इन्द्र सु दोइ, अप्रतिरूप प्रतिरूप जु होइ ॥६९॥
पिशाच अष्टमें इन्द्र महान, काल प्रथम महकाल वखान।
ए व्यन्तर हैं षोडश इन्द्र, अरु प्रतीन्द्र मिलि बत्तिस वृन्द ॥७०॥
अपनी सब सामग्री जोय, केवलज्ञान जान प्रभु सोय।
पूजाके उर भाव बढ़ाय, चलैं भवनतें अति हरषाय ॥७१॥

दोहा—इहि प्रकार बहु देवपति, शची सहित आनंद।
जिनपूजा अस्तुति करन, वाढ्यौ आनंद कंद ॥ ७२ ॥
नर नारी जुत नरपती, अरु मृगेन्द्र पशु एव।
सब शतेन्द्र निज विभव लै, आये जिनवर सेव ॥ ७३ ॥

अथ समवसरण रचना वर्णन—

चौपाई।

सुरपति लीनौ धनद बुलाय, केवल उत्सव सफल सुनाय।
आरजखण्ड जाउ अब वेग, समोशरण विधि रचो अनेग ॥७४॥
हर्षवंत हो नायो माथ, आयौ जहां त्रिलोकी नाथ।
प्रथमहिं नमस्कार प्रभु कियौ, समाधान कर अपनौ हियौ ॥७५॥
समोशरण रचियौ जु अपार, को बुधवंत लहै कहि पार।
अवसर पाय धर्म मन ध्यान, किमपि लिखौं आनँद उर आन ॥७६॥
कोश अढ़ाई ऊर्ध्व अकास, पृथ्वीतैं जहँ लौं प्रभुवास।
इन्द्रनील मणिमय पीठिका, तीनलोककी उपमानिका ॥७७॥
जोजन एक ताहि विस्तार, आठों दिश सो गिरदाकार।
जाकौ चहुँदिश मणिमय सार, लगी पैड़िका बीसहजार ॥७८॥
हाथ हाथ पै ऊँची लसै, भूमि भाग तैं प्रभु तहं वसै।
वही पीठके ऊपर अन्त, धूलीसाल कोट शोभंत ॥७९॥
पंच रतनमय रेंज सरवंग, विविध वर्ण शोभै मन रंग।
अति उतंग सो वलयाकार, फैल रही किरणावलि सार ॥८०॥
कहुँ विद्रुमवत दीसै सोय, कहुँ कंचनमय आभा होय।
कहुँ अंजनमय शोभा जान, कहुँ उज्वल कहुँ हरित प्रमान ॥८१॥
समोशरण लक्ष्मीको घेर, मनोज्ञ एक कुंडली फेर।
चारौं दिश दरवाजे चार, धरैं कंगूरा रतन सुढार ॥८२॥
तहँ तैं चारों दिशको गली, गमन हेतु भीतरको चली।

१—धूलि, २—मूंगाके समान।

ताके अन्तर कछू प्रमान, मानभूमि सोहत तिहि थान ॥८३॥
तिनकी प्रथम पीठिका जान, सौरह पैंडी संयुत मान।
इक संबंधी तीन जु कोट, चार चार दरवाजे ओट ॥८४॥
भीतर पीठ त्रिमेखल जान, तापर मानस्थंभ परिमान।
कंचनमय शोभैं उत्तंग, मध्य भाग महिमा निरभंग ॥८५॥
ध्वजा छत्र ता ऊपर सोहि, जगत जीव मन लेतै मोहि।
मानी करैं मान वहु कोय, देखै मान थंभ मद खोय ॥८६॥
मूलभाग जिन प्रतिमा धरी, छत्रचमरजुत राजै वरी।
इन्द्रादिक आनन्द बढ़ाय, पूजा तहां करहिं मन लाय ॥८७॥
और अनंग शोभ तिस थान, रत्नद्वीप्ति लाजै सम भान।
विधि समान थंभ ये चार, सकल विभूति एकसी वार ॥८८॥
थंभ एकदिश चारौं जान, सजल वापिका कमल निधान।
नन्दादिक तिनकौ है नाम, चारौं दिश सोहै सुखधाम ॥८९॥
तिनके तट इक कुंड महान, चारहुं दिश चारों परवान।
पग प्रक्षाल कैं भविजन जहां, आगे गमन करैं चलि तहां ॥९०॥
तहँ तै वीथी चार जु चली, कछु अन्तर इक शोभा भली।
खाई गिरदाकारहि खरी, अति गभीर जल निर्मल भरी ॥९१॥
कमल सहित भ्रमरा गुंजरैं, हंस कलापि[1] शोर बहु करैं।
मणिमय तट दोऊ राजंत, गंगावत शोभा परजंत ॥९२॥
आगे ताहि पहुपको बाग, महा सुगंध मधुर अनुराग।
सघन छांह षट ऋतु फलफूल, विहरैं देव जोपिता कूल ॥९३॥

१—मयर।

वनके मध्य शिला रमणीक, चन्द्रकान्त मणि आभा ठीक।
तहँ सुरपति कीनै विश्राम, शीतल छाया सुखको धाम ॥९४॥
तहँ तैं कछु अन्तर द्यति धार, कंचन कोट जु वलयाकार।
मानुषोत्र परवत यह मनौं, अति उतंग बहु बांतिक बनौं ॥९५॥
चारौं दिश गोपुर हैं चार, रजतमई तिखनै[1] आगार।
रतनमयी कलशा जगमगै, लाल वरण अति सुन्दर लगै ॥९६॥
अरुण हाथ ऊँचे कर सोय, जगलक्ष्मी यह नाचै कोय।
जहां रहें नवनिधि कर वास, पिंगलादि तिन नाम विलास ॥९७॥
प्रभुके मन कछु चाह न आय, बेमन चलि सेवैं जिनपाय।
मंगल द्रव्य मनोहर ठाठ, गोपुर प्रतिहि एकसौ आठ ॥९८॥
गावैं गीत सुरनकी तिया, जिनगुण लीन हरष कर हिया।
व्यन्तर देव जु गावैं खड़े, विनयहीनको रोकत अड़े ॥९९॥
यह शोभा पहले गढ़ जान, और सुनों आगे परवांन।
गोपुरतैं बीथी दिश चार, चली फेर भीतर विस्तार ॥१००॥
चहूं ओर नृतशाला तास, चारहुं दिशकी बीथी पास।
कंचन थंभ रतन कर खचे, ध्वजा छत्र ता ऊपर रचे ॥१०१॥
नाचैं देवकुमारी एम, मानों उदधि तरंगिन जेम।
मंद मंद मुख विकसै जबै, जिनगुण गीत उच्चरैं सबै १०२॥
बाजै मधुर बीन बांसुरी, ताल मृदंग मधुर ध्वनि जुरी।
अब कछु बीथी अन्तर जान, धरै धूप घट चहुं दिश मान॥१०३॥

१–तीन खण्डके।

दोहा–धूप धुआं नभको चलौ, श्यामवरन अति जान।
मानों पातक भग चले, पुण्यतनों डर मान ॥१०४॥

चौपाई।

विदिशन और सुनो भवि सार, बाग चार नन्दनवन वार।
प्रथम अशोक सप्तपरनाहि, चम्पक आम्र मही रुह जाहि॥१०५॥
सब ऋतुके फल फूल अपार, विरख वेल सौं मण्डित सार।
चार चार वापी जु मनोग, सोहै नंदादिक जल जोग ॥१०६॥
हैं त्रिकोण कोई चऊकौन, कोई गिरदाकारहि जौन।
तहँ आवैं भविजन मन हर्ष, कारण धर्म मनोगहि पर्ष ॥१०७॥
कोई करने क्रीड़ा आय, कोई अंग प्रछालन जाय।
अशोक बागके मध्यम भाग, पीठ त्रिमेखल है बड़भाग ॥१०८॥
जुदे जुदे तापर सु उतंग, तीन कोट हाटकमय रंग।
चारौं दिश गोपुर संबंध, चमर छत्र ध्वज मंडित रंध्र ॥१०९।
मंगल द्रव्य धरी समुदाय, अरु तहँ रहै देव बहु आय।
चैत्य वृक्ष तिहि मध्य प्रवांन जम्बूवृक्ष तलैं उनमान ॥११०॥
ताके मूल चहूं दिश चार, श्री जिनवर प्रतिमा भवतार।
बाग मध्य चारौं दिश जान, वन वेदी हैं चार महान ॥१११॥
कनकमयी मणिखचित प्रवास, दरवाजे उन्नत चौ पास।
ता ऊपर जिन प्रतिमा राज, छत्र चमर आदी सब साज ॥११२॥
तहां इन्द्र पूजा विस्तरै, महापुण्यको परगट करै।
ऐसे हो सब वन वन मांहि, सबै विभूति चैत्यद्रुम पाहि ॥११३॥
अब वन वेदीतैं कछु मही, रजत कोट लौं जानो सही।

तहँ तैं ध्वजा पांति फहराइ, कंचन खम्भ लगी लहराइ ॥११४॥
दश प्रकार है तिन आकार, ताके भेद सुनो निरधार ।
माला शुक मयूर अरविंद, हंस गरुड मृगपति जुगयंद ॥११५॥
वृषभ चक्रदश चिह्न मनोग, ध्वजा दुकूलनकी संजोय ।
एक जातिकी सौ अरु आठ, दशसै असी सबै हैं ठाठ ॥११६॥
चारौं दिशकी सब परवांन, सत तेताल वीस अधिकान ।
ध्वजा पवन वश हालैं सबै, जिन पूजन भवि आये सबै ॥११७॥
पंथ खेद भवि जीव न धरैं, सुश्रूषा धौं[1] तिनकी करैं ।
ध्वजा बखानी परिणति यही, नानारंग शोभा अति लही ॥११८॥
आगे रजत मयी है कोट, धवल महा अति उन्नत मोट ।
श्वेत सुजस प्रभुको वह पास, फेरी देकर रहिउ प्रकास ॥११९॥
पूरव वत दरवाजे चार, नानावर्ण रतन छवि सार ।
नवनिधि मंगल दरव समेत, तोरन प्रमुख सफल शोभंत ॥१२०॥
हेम कोट वत वर्णन सबै, भवनपती दरवानी तबै ।
दरवाजन तैं वीथी चली, चारों तरफ एकसी भली ॥१२१॥
दो दो धूप तनैं घट तहां, पूरववत वर्णन सब जहां ।
इहि विधि चारौं दिश जे सही, नाट्यशाल पूरववत कही ॥१२२॥
नाट्यशाल दोई दिश जान, गीत नृत्य सुर करैं प्रमान ।
तहँ तैं कछु अंतर बन लह्यौ, कल्पवृक्ष नामांकित कह्यौ ॥१२३॥
दश विधि तहां कल्पतरु ठीक, अति उतंग छाया रमणीक ।
फूले फले अधिक मनरंग, वस्त्राभूषण आदिक रंग ॥१२४॥

१–मानों (उत्प्रेक्षा वाचक अव्यय)।

दश विध दान देन संजोग, मनवांछित पुरवैं सब भोग।
पूरव वत चउ बापी दीठ, वनके मध्य त्रिमेखल पीठ॥१२५॥
तीन कोट हैं गिरदाकार, कोट कोट प्रति गोपुर चार।
मुक्ता वन्दनवार अपार, घंटा तोरन शोभित सार॥१२६॥
मध्यभाग सिद्धारथ वृक्ष, ताकी शोभा सुनो प्रतक्ष।
चारों दिशा वृक्षके मूल, सिद्ध समान बिम्ब जिन थूल॥१२७॥
छत्र चमर ध्वज मंडित सोय, पूजा इन्द्र करै तहँ जोय।
और सकल शोभाको जान, चैत्य वृक्ष पूरववत मान॥१२८॥
बन प्रति वन वेदी हैं चार, चामीकर मय बनी सुठार।
तामैं रतन खचै चहुँ फेर, मानौं नखत उवे शशि घेर॥१२९॥
ता ऊपर प्रतिमा जिनराय, सुरपति पूजैं उर हरषाय।
इहि विधि चहुँ विदिशा परमान, पूरववत सब वर्णन जान॥१३०॥
फिर ध्वज थंभीयँत जु सार, पूरववत जानौ सविचार।
सकल संपदाको है वास, को बुध कहइ लहै ना सांस॥१३१॥
अब तिनके कछु आगे जान, फटिक कोट लौं कहै प्रमान।
अति विचित्र है महल मनोग, रतन कूट तापैं है जोग॥१३२॥
चंद्रकान्त मणि आभा कह्यौ, सुवरणमयी थंभ तहँ लह्यौ।
बीथी अन्तर सुभग सरूप, पद्मराग मणिमय वन रूप॥१३३॥
ध्वजा छत्र घण्टा छविधार, निज मुद्रा सौं मन अविकार।
बाजै साढ़े बारह कोट, बजैं मधुर ध्वनि दुंदुभि जोट॥१३४॥
दोहा—मानथंभ ध्वज थंभ गढ़, वेदी तोरन तूप।
जिन तन तैं बारह गुनै, महल वृक्ष जुत रूप॥१३५॥

चौपाई।

आगे तृतिय कोट अवधार, फटक मई निर्मल नभवार।
अति उतंग सो गिरदाकार, अरुन वरन मन निर्मल द्वार ॥१३६॥
चारौं दिश गोपुर बन रहे, चमर छत्र घण्टा जुत कहे।
सब शोभा पूरववत जान, ठाडे सुरग देव दरवान ॥१३७॥
देखत ताहि सफल द्रग जबै, उपमा रहित जु दीसैं सबै।
अब सुन मध्य भूमिकी कथा, फटिक कोटके भीतर जथा ॥१३८॥
गढ़ तैं प्रथम पीठ सौं लगी, फटिक भींत सोलहि जगमगी।
रतन थंभ तिहिपर छबि वान, तिनकी दीपति तैं तम हान ॥१३९॥
तिहि पर श्री मंडप सुर रचौ, फटिक मई मानौं नभ खचौ।
भींतन बीच जु कोठा जेह, बारह सभा तहां सुन लेह ॥१४०॥
चहुं दिश दरवाजे पथ रहै, बीच बीच त्रय त्रय तहँ कहै।
कोठा प्रथम मुनीश्वर सेव, दूजै कल्पवासिनी देव ॥१४१॥
तीजै अर्जिका श्रावक जान, चौथे ज्योतिष त्रिया बखान।
पंचम व्यन्तरनी तिय कही, भवनवासिनी छटमें लही ॥१४२॥
सातम भवनपती सुर लेख, आठम व्यन्तर कहे विशेख।
नवमें कोठा ज्योतिष देव, दशमें कलपवासि सुर तेव ॥१४३॥
एकादशम मनुष परवांन, द्वादशमें पशु सकल बखान।
निराबाध तिहुं जगके जीव, भीर नहीं तहँ होय अतीव ॥१४४॥
त्रिभुवन पति अतिशय यह जान, आगे और सुनों मतिवान।
तिनतैं प्रथम पीठ गुनधार, वैडूरज मणिमय अविकार ॥१४५॥
नील वरण मणिमयी विशाल, सोलह पैंडि चहूंदिश साल।
बारह सभा गली जे चार, तिनको ये सोलह पथ धार ॥१४६॥

तहां भरी वसु मंगल दर्व, सेवक जक्ष देव हैं सर्व।
धर्म चक्र निज माथै लियैं, देखि भानु द्युति लाजै हियैं॥१४७॥
तहँ तैं द्वितिय पीठिका दीस, हेममई शोभा जिहि सीस।
मेरु शिखर मानों उत्तंग, जगमगाय सूरज सम रंग॥१४८॥
आठ ध्वजा आठौं दिश जान, तिनकी शोभा अधिक वखान।
तिनमें आठ चिह्न वरनये, चक्र गयंद वृषभ पुनि ठये॥१४९॥
कमल वसन मृगपति जु सरूप, गरुड़ माल वसु चिह्न अनूप।
सूक्षम पाटंवर संजुक्त, मन्द पवन हालै अघ मुक्त॥१५०॥
तृतिय पीठ अति शोभा लसै, तीन मेखला कर मन वसै।
पंच वरण मणिमय झलकंत, किरण ज्योति दश दिशि फैलंत॥१५१॥
ता पर गंधकुटी निरमई, सर्व रतनकी छवि वरनई।
चहुँ दिश चार दुवार अनूप, अरुण वरण मणिमय तिहि रूप॥१५२॥
तीन पीठपर शोभा लसै, कै धौं तीन जगत शिर वसै।
परम सुगंध वहै जहँ वाय, शिखर मनोज्ञ ध्वजा फहराय॥१५३॥
तहां हेम सिंहासन धर्यौ, तिहि प्रकाश कर अन्ध तम हर्यौ।
वहुविधि रतन ज्योति झलमलै, मानो जग लक्ष्मी मन रलै॥१५४॥

दोहा—चतुरंगल तहँ तैं रहें, अन्तरीक्ष भगवान।
त्रिभुवन पूजित वीर जिन, जग शिर सिद्ध समान॥१५५॥
समोशरण महिमा अगम, रचना बहु विस्तार।
तीन लोककी संपदा, को कहि पावे पार॥१५६॥
मुनि विहंग उद्यम करैं, पै उड़ पार न लीन।
श्री जिन नभ शोभा कथन, कौन कहे नर दीन॥१५७॥

अथ अष्ट प्रातिहार्य वर्णन।

पद्धड़ि छन्द।

राजत अशोक तरुवर उतंग, सो मन्द पवन थरहरत अंग।
प्रभु पाँय निकट नाटक करंत, तहँ पहुप गन्ध षटपद[1] रमंत ॥ १५८॥

प्रभु अंग देखि डरप्यौ सुकाम, जग ढूंढ्यौ शरण न राख ताम।
फिरि आय गिर्‌यौ प्रभु शरण पाद, बरषै जु पहुप होकर अल्हाद १५९

प्रभुकौ तन हिमवन गिरि सरीस, मुख वचन गंग निकसी गरीस।
श्रुतज्ञान उदधिमें मिली आय, सप्तांग भंग लहरन समाय ॥ १६०॥

प्रभु ऊपर चौंसट चमर सार, ढारंत यक्ष नायक अपार।
जिम क्षीरसमुद जल कलश लेइ, शिरधार प्रवाही धविधरेइ॥ १६१॥

चामीकर रतननि खचित जास, सिंहासन उन्नत अति प्रकास।
तापर प्रभु राजत उदित भान, विकसावत भविजन कमल ज्ञान १६२

प्रभु दिव्यौदारिक तन मनोग, तहँ कोट भानु द्युति लहिय जोग।
शशितैं अति शीतल शान्त रूप, भामंडल छवि कहिये अनूप ।१६३

है मोह जगत जोधा अमान, प्रभु जीत्यौ शुकल कृपाण ठान।
तस विजय बजैं पटहा निशान, तह सकल दुंदुभी मधुर गान ॥ १६४

प्रभु छत्र तीन त्रिभुवन उदेत, सो धवल वर्ण मुक्ता समेत।
सोहै शिर ऊपर अति अनूप, शशि नखत सहित मनु त्रिविध रूप १६५

दोहा—इहि प्रकार रचना विविध, किय कुबेर मन लाय।
लोकोत्तम लक्ष्मी सकल, समोसरण रहि छाय ॥ १६६॥

१—भ्रमर।

चौपाई।

अब सब देव आगमन भयौ, जय जय घोष हरष उर ठयौ।
वरषा पहुपनकी बहु करैं, अति प्रसन्नता मनमें धरैं ॥१६७॥
तीन प्रदक्षिण दीनी सबै, धूलीसाल प्रवेशै तबै।
समोशरणकी रचना देख, चक्रत भयौ इन्द्र मन पेख ॥१६८॥
मानथंभ चैत्य द्रुम तूप, जहां जिनेश्वर बिम्ब अनूप।
पूजा तहां करी मन लाय, अष्ट द्रव्य जुत हर्ष बढ़ाय ॥१६९॥
फिर सुरेश सब देवहि साथ, आयौ जहां त्रिलोकी नाथ।
वर्धमान जिन देगमर देख, अपनौ जनम सफल कर लेख ॥१७०॥
अति उतंग सिंहासन दीस, तुंग काय राजत जगदीश।
चार वदन चहुँदिश परकाश, चतुरंगुल अंबर नभ वास ॥१७ ॥
फैल रह्यौ तन किरण प्रकास, कोट भानु द्युति लाजै जास।
तीन प्रदक्षिण दे शिरनाई, भक्ति भाव नहि अंग समाई ॥१७२॥
शची आदि सब देवी संग, और अपछरा बहुविध रंग।
अमर समूह सबै समुदाय, तन पंचांग भूमि शिरनाय ॥१७३॥

दोहा—रतन जड़ित सुरपति मुकुट, जिनपति नख द्युति देत।
नमितमौलि छवि लजित अति, ज्यों रविग्रह शशिहेत ॥१७४॥
तहँ सुरेश जिन भक्तिवश, अस्तुति करत अलाप।
ज्यो नभ घनके हेत कर, बोलै वचन कलाप ॥१७५॥

चौपाई।

जय जय समोशरण आधीश, जय जय चतुरानन जगदीश।
जय जय मुकति कामिनी कन्त, जय जय नंत चतुष्टयवंत ॥१७६॥

जय जय तीर्थंकर भुवनेश, जय जय धरम ध्वजा धरणेश ।
जय जय सुरग मुकति दातार, जय जय रत्नत्रय भंडार ॥१७७॥
जय जय गुण अनन्त परधान, जय जय निरविकार भगवान ।
जय जय कर्म कुलाचल चूर, जय जय शिव तरुवर अंकूर ॥१७८॥
जय जज जगन्नाथ तुम देव, जय जय सुर असुराधिप सेव ।
जय जय महागुरुन गुरुराज, पूज्य पुरुष पूजित जिनराज ॥१७९॥
तुम जोगिनमें जोगी जान, महाव्रतिनमें व्रती महान ।
तुम ध्यानिनमें ध्यानी महा, तुम ज्ञानिनमें ज्ञानी कहा ॥१८०॥
जतिन विषैं तुम जतिवर सोय, स्वामी परम स्वामि अवलोय ।
तुम जिन उत्तम मुनिगण ईश, ध्यानवंत ध्यावहिं निशदीश ॥१८१॥
धर्मवंतमें धर्म निधान, हितकारिन हो तुम हितवान ।
तुम त्राता भव भंजनहार, हंता स्वपर कर्म दुठ भार ॥१८२॥
तुम प्रभु अशरण शरण अतीव, सारथवाही शिरपद सीव ।
तुम जग बांधव तुम जग तात, तुम करुणानिधि हो विख्यात ॥१८३
तुम लोभी प्रभु हूं अधिकार, तीन लोकके राज्य हि धार ।
तुम रागी उर परम विवेक, मुक्ति वधूकी लागी टेक ॥१८४॥
जीत पात्र भए जीतैं कर्म, तीन जगतमें जोधा पर्म ।
तीन जगत लक्ष्मीपति सेव, अरु अतिशय अलंकृत देव ॥१८५॥
कीरति वेलि बड़ी तुम तनी, छाई जग मंडपमें घनी ।
और कुदेव जसहि कौ चाहि, तुम निरीक्ष सेवैं सुर पाहि ॥१८६॥
कलपतरू वर चित्रावेल, कामधेनु चिंतामणि खेल ।
ए सब एक जनम सुखदाय, तुम सेवा सौं भवदुख जाय ॥१८७॥

आज धन्य वासर यह भयौ, जीवन सफल दरश जिन लयौ।
आज पाय हम भये पवित्त, प्रभु यात्रा कीनी इक चित्त ॥१८८॥
सफल हस्त हमरे अब भये, तुमरे चरण कमलको नये।
नेत्र सफल मानै हम आज, दरशे आप जबहि जिनराज ॥१८९॥
अरु पवित्र भयौ मेरो गात, तुम चरणाम्बुज सेवत तात।
वाणी सफल भई मुहि आज, तुम गुण भाषे जलधि जहाज ॥१९०॥
मेरो मन सफलीकृत भयौ, प्रभुकी भक्ति हृदय भर लयौ।
चार ज्ञान धारी तुम राय, तुम गुण पार न अन्त लहाय ॥१९१॥
हमरी शक्ति रनहितैं लेश, तुमरी भक्ति करत उपदेश।
जैसे आम्रकली परभाव, कोकिल शब्द करै कहराव ॥१९२।

गीतिका छन्द।

नमौं वीर जिनेश अन्तिम, सकल मंगल कारनै।
नमौं सन्मति करौं शुभमति, वर्धमान प्रनामनै॥
नमौं तीन जगत्र नायक, परम स्वामि वखानिभे।
नमौं अतिशय दिव्य तनमय, पाप मेरे हानिये ॥१९३॥
नमौं तारन तरन जिनवर, नमौं गुन वारिधि सही।
नमौं विश्व विभूति मण्डित, नमौं गुरु सेवत मही॥
नमौं परमातम विराजत, नमौं लोकोत्तम सदा।
नमौं केवलज्ञान लक्ष्मी, अङ्ग भूषित है तदा ॥१९४॥

दोहा—यह विधि बहु अस्तुति करी, नमौं भक्ति उर लाय।
तुम प्रसाद प्रभु पाइयौ, धर्म सकल सुखदाय ॥१९५॥
काल लबधि नियडी नहीं, भवगत लह्यौ न अंत।
तौलौं प्रभु मोहि दीजिये, अपनी भगति अनंत ॥१९६॥

शची रत्न पांचों वरण, निज कर चुटकी चूर।
भक्ति सहित प्रभुके निकट, चौक विचित्रहि पूर ॥१९७॥
तहँ सुरेश पूजा विविध, आरम्भी हरषाय।
अष्ट द्रव्य संजुक्त कर, जिन चरनन चित लाय ॥१९८॥

पूजाष्टक—

त्रिभंगी छन्द।

कंचनमय झारी रतननि जारी, क्षीर समुद्र जल सुख भरियं।
शीतल हिमकारं पूजित सारं, ढारत अनुपम धार त्रयं॥
पूजत सुरराजं हर्ष समाजं, जिनवर चरणं कमल जुगं।
जग दुःख निवारं सब सुखकारं, दायक सो शिवसुख परमं॥१९९॥
जलम्।

केशर करपूरं अगरं तगरं, घसि मलयागिर सुरभि शुभं।
सुरगन्ध मनोगं उपमा जोगं, तास विलेपन करत प्रभं॥
पूजत सुरराजं० ॥२००॥ चन्दनम्।

अक्षत गुण मंडित धवल अखंडित, मुक्ताफल छवि अधिक धरं।
तिहि पंच हि पूजं करत संजूतं, मानहु रत्न उदोत भरं॥
पूजत सुरराजं० ॥२०१॥ अक्षतम्।

मालति अरविन्दं चंपक कुन्दं, वेल गुलाब सिंगार हरं।
केवर करनारं केतकि भारं, पूजौं पांडरि जुही भरं॥
पूजत सुरराजं० ॥२०२॥ पुष्पम्।

नाना पकवानं घेवर सातं, मोदक लाडू सद्य वरं।
रतनमय थारी शोभित भारी, उपमाहारी अग्र धरं॥
पूजत सुरराजं० ॥२०३॥ नैवेद्यम्।

रतनन मय दीपं धरत समीपं, अति उद्योत न जाय कहं।
सब जगत प्रकाशं अघ तम नाशं, धूम रहित छवि ताहि लहं॥
पूजत सुरराजं० ॥२०४॥ दीपम्।

कृष्णागर पूरं तगर कपूरं, केशर चूरं मलय गिरं।
इहि आदि दशांगं धूप तरांगं, खेवत धूप अकाश भरं॥
पूजत सुरराजं० ॥२०५॥ धूपम्।

दाडिम नारंगी केला पुंगी, आम्र बिजौरे निंबु वनं।
नारीयर भारं एला सारं, इत्यादिक फल शुद्धयनं॥
पूजत सुरराजं० ॥२०६॥ फलम्।

जल गंध सुमारं अक्षत भारं, पुष्प सहित नैवेद्य भरं।
दीपादि अपारं धूप सँवारं, फल कल्पद्रुम शुद्ध धरं॥
कंचनमय थारी स्वस्तिक धारी, ले सुरनायक नृत्य करं।
पहुपांजलि छीपही कर्मन खिपही, जिनपद आगे अर्घ धरं॥२०७॥
अर्घ्यम्।

दोहा—इमि पूजा स्तुति बहु करी, प्रनम्यौ वारंवार।
अमर सहित अमरेश जहँ, धर्म उपायौं भार॥२०८॥
वर्धमान भगवानके, सन्मुख दृष्टि लगाय।
इन्द्र आदि द्वादश सभा, बैठी निज निज थाय॥२०९॥

गीतिका छन्द।

श्रीवीर नाथ जिनेश अन्तिम, चरन वंदित मुनि गनी।
परम पावन बुध नमित प्रभु, जजहु जग चूडामनी॥
सुर असुर जिनकी भक्ति आगे, गुण अनंत सुजानिये।
सो समोशरण विभूति निरुपम, अधिक कहा बखानिये॥२१०॥

जो त्रिजग भवि जीवन सु तारक, कर्म अरिनाशन कही।
द्वादश सभातैं अग्र थिर हो, धर्म उपदेशक सही॥
विश्व जनकी हरी बाधा, ज्ञान अमृत चाखियौ।
प्रनमौं अनन्त चतुष्ट नायक, भक्ति मुहि निज दीजियौ॥२११॥

असम गुनन निधान हो प्रभु, ज्ञान केवल दृग मही।
तीन भुवपति करत सेवा, विश्व लक्ष्मी पद गही॥
सकल दोष विध्वंस कीनौ, धर्म तीरथ भीजिये।
'नवलशाह' विचार विनवै, मोहि शिवपद दीजिये॥२१२॥

इति कविरत्न श्री नवलशाहजी विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमे भगवानके केवलज्ञानोत्पत्ति, समवसरण रचना, देवागमन आदिका वर्णन करनेवाला एकादश अधिकार पूर्ण हुआ।

द्वादश अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा- प्रणमौं श्री अरहंत जिन, केवल ज्ञानधिराज।
भव्यन प्रति उपदेशियो, धर्म तीर्थ हित काज ॥ १ ॥

गौतम गणधरका समवसरणमें आगमन—

चौपाई।

अब श्री जिनवर मुख उच्चार, वाणी खिरै विविध परकार।
अविरल शब्द अनक्षर सोय, गणधर तहां न तिष्ठै कोय ॥ २ ॥
तब सौधर्म सुरेश विचार, अवधिज्ञान कर चित अवधार।
बैठे निज कोठा मुनिवृन्द, तिनमें कोई नहीं गणीन्द्र ॥ ३ ॥
अर्हंतमुख वाणी बहु होइ, गणधर विना न समरथ कोई।
यह चिंतत जानी बल ज्ञान, गौतम विप्र बुद्धि बलवान ॥ ४ ॥
द्वादशांग वाणी द्विज जोय, गणधर प्रथम होयगो सोय।
किहि उपाय वह आवै यहां, यह चिंता कीनी उर तहां ॥ ५ ॥
मिथ्यामति धारै अघ दैन, रचे शास्त्र बहु परमत ऐन।
कोई न जीतै तिहिसों बाद, जग जिय वादहि लहैं विषाद ॥ ६ ॥
विद्या गर्व धरै वह घनो, प्रेक्षा कर कछु मद तिहि हनो।
रच्यो काव्य इक अरथ गंभीर, तब विकलप हूहै द्विजवीर ॥ ७ ॥
शब्द अर्थ शंका जब होइ, मेरे संग आय है सोइ।
यही विचार विक्रिया शेष, कीनो वृद्ध विप्रको भेष ॥ ८ ॥
हाथ जष्टिका टेकत जाय, पहुँचै तुरत विप्र ढिग आय।
भो गौतम ! तू विद्यावीर, आयौ नाम सुनै तुम तीर ॥ ९ ॥

सो गुरु वर्धमान जिनराय, तिनकी काव्य जु मोहि पढ़ाय।
वे तो मौन भये अब सही, काव्य अर्थ किहि पूछौं यही ॥१०॥
सो मुहि दीजै आप बताय, तिहि कारण आयौ तुम पाय।
काव्य अर्थ नहि धारो मोहि, तो मेरो जीवौ नहि होहि ॥११॥
तुम तो भव्य परम गुणलीन, पर उपकार करन परवीन।
तुम हो देव व्यास जगतात, तुमरो गुण पूरण विख्यात ॥१२॥
ऋग पुनि यजुर साम भणि तीन, और अथर्वन गयौ प्रवीन।
चार वेद ये थापै नए, जग जन पूज्य व्यास तुम भए ॥१३॥
अरु अष्टादश कथे पुरान, तिनहि नाम संक्षेप बखान।
मत्स्य पुराण प्रथम अवधार, चौदा सहस श्लोक विस्तार ॥१४॥
कूर्म द्वितीय पुराण कहेव, सत्रह सहस श्लोक गनेव।
पुनः वराह तृत्रियको नाम, नव हजार सो हे अभिराम ॥१५॥
फिर नरसिंह चतुर्थम भनौ, सत्रह सहस श्लोकहि गनौ।
बलि वामन पंचम हि पुरान, दश हजार ताको उन मान ॥१६॥
पदमपुराण छठम कहि वीर, पचवन सहस श्लोक गंभीर।
विष्णु सातमौ कहौ पुरान, पन्द्रह सहस तास परवान ॥१७॥
पुन ब्रह्मांड अष्टमौ सोय, बारह सहस कहौ अवलोय।
ब्रह्म विवर्त नवम गुणधार, दश हजार श्लोक निरधार ॥१८॥
ब्रह्म नारदी दशमौ तेव, तेइस सहस श्लोक कहेव।
गरुडपुराण ग्यारमौं जोय, सहस उनीस श्लोक कही सोय ॥१९॥
शिवलिङ्गी द्वादशमो लसै, एकादश सहस्र तिहि वसै।
भविषोत्तर तेरम जु बखान, पन्द्रह सहस श्लोक परवांन ॥२०॥

मारकांडे चौदमो होय, नव सहस्र श्लोक गिन सोय।
अगनिपुराण पंद्रमौ नाम, तीन सहस शोभै अभिराम ॥२१॥
सोरहमो कहिये असकन्ध, सहस अठारह तास प्रबन्ध।
तिनके तीन काण्ड कर भेव, जिनके नाम सुनो भो देव ॥२२॥
रेवी प्रथम जानिये वीर, उत्तर दूजौ अति गम्भीर।
काशी कांड तीसरो जान, अब सत्रह भरता ही पुरान ॥२३॥
सवालाख श्लोक प्रमान, तिनके पर्व अठारह धार।
आदिपर्व पुन सभा द्वितीय, अरु आरण्य कहौ जु तृतीय॥२४॥
विराट पर्व चौथो जानिये, उद्वेगम पंचम मानिये।
भीषम छठम सप्तम द्रोन, अष्टम कर्ण नवम सल्योन ॥२५॥
जुद्ध दशम अस्त्री गेरमौ, सूतिक पर्व कहौ बारमौ।
शांति तेरमो कहौ बखान, अश्वमेध पुन चौदम जान ॥२६॥
अनुशासन पन्द्रमो जु लीन, व्यासाश्रम षोडश परवीन।
मुसल सत्रमो कहिये सोय, दिवाधि रोह अष्टदश होय ॥२७॥
अब भागवत कहौ अनॅद, हैं तिनके बारह असकन्द।
अठारम है शास्त्र प्रधान, सहस अठारह श्लोक प्रमान ॥२८॥
इतनी काव्य करी तुम देख, एक काव्य हम अर्थ विशेख।
तुम हो शांतरूप गुणवान, वड़े पुरुष जगमें बलवान ॥२९॥
यह वच सुन बोलौ द्विज तबै, अपनो काव्य पढ़ो तुम अबै।
जो मैं ठीक अरथ कर देव, तो तुम कहा करौ हम सेव ॥३०॥
तब सुरपति बोल्यौ यह सोय, जो तुम काव्य अरथ शुभ होय।
तो तुमरो मैं शिष्य प्रमान, तुम हो मेरे गुरु परधान ॥३१॥

गौतम तनैं पंचशत शिष्य, सो बोले इमि कहैं भविष्य।
भो गुरु ! यह वादी है कोय, मेरे वचन मन दृढ़ सोय ॥३२॥
एक काव्य हम कहैं प्रतक्ष, तिनिको अरथ करै ये दक्ष।
तो ये ही हमरे गुरु होय, हम इनके सेवक पद जोय ॥३३॥
तबहि इन्द्र बोल्यौ इम बैन, शांतरूप हो धर मन चैन।
जो एती बुधि हमरी होइ, तो गौतमके पद किम जोइ ॥३४॥
तुम पुर बालक हो मद भरे, विनय न जानो मन अति खरे।
तब गौतम शिष्यनि वरजियौ, हरको समाधान कर हियौ ॥३५॥
वृद्ध विप्र तुम हम वच सुनौ, अपनो काव्य जथा प्रति भनौं।
तब सुरपति मन मनहि विचार, त्रैकाल्यादिक पढ़ि गुणधार ॥३६॥

उक्तं च काव्यम्।

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपद सहितं जीव षट्काय लेश्याः।
पञ्चान्ये चास्ति काया, व्रतसमितिगतिज्ञानचारित्रभेदाः॥
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्धधाति स्पृशति च मतिमान् यः सवै शुद्धदृष्टिः॥

चौपाई।

काव्य रूप गौतम जब देख, अति अचम्भ मनहीमें पेख।
मान भंग मेरौ अब भयौ, काव्य अर्थ कर विकलप लयौ ॥३७॥
दुर्धर काव्य कहो यह देव, इत्य अरथ धारै नहि भेव।
त्रैकाल्यं यह अर्थ अपार, तीन काल दिन मांहि विचार ॥३९॥
तीन काल इक वर्ष मझार, भूत भविष्यत वर्तनहार।
षटद्रव्यहि किं कहिये भाख, कौन ग्रंथकी दीजै साख ॥३९॥

कहा सकल गति कहिये भेद, अरु तिनके लक्षण कर खेद।
पादारथ श्रुत पूर्वक घनै, ताको भेद कहत नहि बनै ॥४०॥
विश्व कौन कहिये अवभास, तीन लोक अरु पूर्ण प्रकास।
पंचास्तिकाय कहिये किम भास, कौन पंचव्रत कौ समझास ॥४१॥
पंच समिति पुन कहिसौ कहौं, पंच ज्ञान सो क्यों सरदहौं।
सप्त तत्व कहिये क्यों भेद, धर्म कौन विधि है बहु खेद ॥४२॥
सिद्धि निरूप वरणको सकै, मारग विधि अनेक कहि थकै।
कौन सरूप कहनकी नाहि, किहिकौ भेद अनेक लखाहि ॥४३॥
तास जनित फल कहिये कौन, षट्कायी जीवन बहु जौन।
षट लेश्याकी अधिकी रीत, श्रुतज्ञानकी है मो भीत ॥४४॥
इहि प्रकार लख नहि जब जान, मनमें गौतम भय तब मान।
जो कहूं अर्थ संभवै नाहि, तो मुहि मान जाय छिन माहि ॥४५॥
वीरनाथ सर्वज्ञ सुजान, विश्व तत्वके वेदक वान।
तिनकर कथित काव्य गंभीर, तास अर्थकौ समरथ धीर ॥४६॥
यह द्विज सौं जो कीजे वाद, हारैं जीतैं होय विषाद।
बुध सामान्य याहिको जान, मानभंग ही लहौं निदान ॥४७॥
अबही चलो वनै उन पास, वादविवाद करै नहि हास।
वे त्रिलोक स्वामी जिनराज, तिन समीप आवै नहि लाज ॥४८॥
वे पुरुषोत्तम ज्ञान भंडार, सब जग जानै तिन गुण सार।
हारजीत शोभा दुहु ओर, मान भंग नहि हू है मोर ॥४९॥
इहै प्रकार मन-मांहि विचार, विप्रहि प्रति वच ये उचार।
तुम सौ काव्य अर्थ नहि कहौं, तुमरे गुरु प्रति उत्तर लहौं ॥५०॥

या कहि अपनी सभा मझार, शिष्य पंचसै सहित सिधार।
चारौं भ्रांत संग मद मोर, चाले सन्मति प्रभुकी ओर ॥५१॥
गौतमके भ्राता द्वै और, वायुभूति अग्निभूति जु ठौर।
पञ्च पञ्चसै शिष्यहि थाय, तीनों द्विज कोविद अधिकाय ॥५२॥
क्रम क्रम पथ चालें गुणवंत, तह मनमें विकलप जु करंत।
द्विज आगे हम अर्थ न लहै, सो गुरु निकट सु किम हम कहैं ॥५३॥
यह चिंता कर कंप्यौ गात, समाधान फिर कीनौ भ्रात।
वर्धमान गुरुके पद जोय, हानि वृद्धि हमको नहि होय ॥५४॥
तौलौं समोशरण बहु रंग, दीठ्यौ मानथंभ उत्तंग।
गलित भई चिन्ता जु अपार, मान पहार भयौ सुर छार ॥५५॥
भये भाव शुभ सुखको धाम, अति कोमल मार्दव परनाम।
कीनों तहां प्रवेश जु आय, दिव्य विभूति देख द्विजराय ॥५६॥
दोहा—श्री जिनवरके दरशतैं, कहा न प्रापति होय।
गौतम मिथ्या मत वम्यौ, पियौ सुधारस सोय ॥५७॥
द्विज गौतम प्रभु गुण गरुव, सिंहासन पर देखि।
चार ज्ञान झलकै तुरत, ज्यों दर्पण मुख देखि ॥५८॥
तीन प्रदक्षिण दे प्रभुहि, निजकर मस्तक धार।
चरण कमलको प्रणमि कर, अष्ट अंग भुवि भार ॥५९॥
भक्ति सहित अस्तुति करी, तुम जग गुरुगण पाठ।
सार्थ नाम भूपित सदा, सहस एक अरु आठ ॥६०॥

चौपाई।

धर्मराज तुम चक्री धर्म, धर्मी महाधर्म किय धर्म।
धर्म तीर्थ अरु कर्त्ता धर्म, धर्म वेद उपदेशक धर्म ॥६१॥

धर्म करावन धर्म सहीत, स्वामी धर्म धर्म वित नित।
धर्म अराधित धर्म सु ईश, धर्म मेंड बंधन धर्मीश ॥६२॥
धर्म ज्येष्ठ धर्मातम नीत, धर्म भ्रात अरु धर्म सुमीत।
धर्म भाग्य धर्मज्ञ सुजान, धर्माधिप धी-धर्म बखान ॥६३॥
महा धर्म तुम महा सुदेव, महानन्द मह ईश्वर भेव।
महा तेज अरु मानी महा, महापवित्र महातप लहा ॥६४॥
महा आतमा दानी महा, जोगी महा, महाव्रत लहा।
महाज्ञान महाध्यानी सोय, महाकरुण मह कोविद जोय ॥६५॥
महाधीर महावीर सुजान, आर्य महा मह ईश बखान।
महा दातृ महा रक्षक कह्यौ, महाशर्म्म माहीधर लह्यौ ॥६६॥
जगन्नाथ जगकरता देव, जगभर्ता जगपति गुण सेव।
जगत जेष्ठ जगमान्य जु सवै, जगतसेव्य जग नम्रत तवै ॥६७॥
जगत पूज्य जग स्वामी धार, जगवासी जग गुरु अविकार।
जग बांधव जगजीत अपार, जगनेता जग प्रभु अवधार ॥६८॥
तीरथ कृत तीरथ भूतमा, तीरथ नाथ तीर्थ वित पमा।
तीर्थंकर तीरथ आतमा, तीर्थ ईश तीरथ कर नमा ॥६९॥
तीरथ नेत सु तीरथ ज्ञान, तीर्थ हृदय तीरथपति जान।
तीर्थराज तीर्थांकित सार, बांधव तीर्थ, तीर्थ करतार ॥७०॥
तुम विश्वज्ञ विश्व तत्वज्ञ, व्यापी विश्व, विश्ववित यज्ञ।
विश्व अराध्य विश्वके ईश, विश्वलोक सु पितामह धीश ॥७१॥
विश्वाग्रणी विश्व आतमा, विश्व अर्च्य विश्वहि पति नमा।
विश्वनाथ विश्वाढ्य बखान, विश्वभ्रत विश्वकृत जान ॥७२॥

हौ सर्वज्ञ सर्व लोकज्ञ, दरशी सर्व, सर्व व्युत्पज्ञ ।
सर्व आतमा सब घर वेष, सर्वहि सर्व बुद्ध उपदेश ॥७३॥
सर्व देव धिप सब लोकीश, सर्व कर्महत हैं जगदीश ।
सब विद्याके ईश्वर पर्म, सर्व धर्मकृत सर्व सुशर्म ॥७४॥
दोहा—इत्यादिक तुम नाम शुभ, कहे मनोज्ञ बखान ।
सो वांछा नामावली, दीजै मुहि गुण खान ॥७५॥

चौपाई ।

भो प्रभु ! तुम प्रतिबिम्ब सु थान, कृत्रिम और अकृत्रिम जान ।
हेम रतनमय त्रय जग माहि, नमौं चरण अघ मूल नशाहि ॥७६॥
तुम प्रतिमा भो जिनवर देव, जे पूजैं थुतिकर नित सेव ।
भक्ति सहित प्रनमैं शिरनाय, ते त्रिलोक अधिपति पद पाय ॥७७॥
तुम प्रतच्छ पाय भो देव, पूजा थुति नुति कर नित सेव ।
निश दिन जो प्रनमैं तुम पाय, लहि असंख्य फल कही न जाय ॥७८
तुम तन निरुपम राजत सार, तीन जगत जन प्रिय करतार ।
कोटि भानुतैं द्युति अति होय, व्यापित भई दशौं दिश सोय ॥७९॥
हे प्रभु ! दीपति समित सरूप, विक्रिय रहित चतुर्मुख रूप ।
अन्त रहित गुण निरमल शोध, वाणी खिरै सभा संबोध ॥८०॥
तुमरै चरण परैं जिहि थान, सोई सफल भूमि परवान ।
जगमें तीरथ उत्तम सोय, वंदनीक मुनि सुर नर होय ॥८१॥
गर्भजन्म दीक्षा कल्यान, जहां होय प्रभु निर्मल थान ।
पूजनीक सो क्षेत्र पवित्र, तीरथ जगत परममें मित्र ॥८२॥
केवलज्ञान अनंत प्रकाश, विश्व द्वीप उद्योतहि जास ।
लोकालोक जु व्यापित लहौ, अरु भव्यनि प्रति मुखतैं कहौं ॥८३॥

तुम प्रभु तीन जगतके स्वामि, सर्व तत्व वेदित शिवगामि।
विश्व व्याप्त जगनायक देव, प्रनमैं पद सुर असुर जु सेव ॥८४॥
केवल दर्शन व्यापित भयौ, अन्तातीत जगन्नुत जयौ।
लोकालोक देख निज नैन, भावै सकल प्रजापति बैन ॥८५॥
तुम अनंत वीरज भगवान, अन्त रहितको लहै प्रवांन।
सकल दोष कर रहित जु ठए, उपमातीत विराजत भए ॥८६॥
सुख अनंत प्रभु प्रापत भयौ, निराबाध तन निर्मल ठयौ।
नर सुर असुर प्रगट नहि होय, सो समर्थ अक्षय तुम जोय ॥८७॥
जे दुख विषय हते जगमांहि, सो तुमको अतिशय भय नांहि।
अरु प्रतिहार्य जु अष्ट सहीत, सो है प्रभु तन परम प्रवीत ॥८८॥
इत्यादिक तुम गुण अधिकार, बुधजन वरन न पावै पार।
तुम अस्तुति जु कथा मैं कहौ, हौ अशक्य उपमा नहि लहौ ॥८९॥
भो प्रभु! नमौं जोर जुग पान, नमौं दिव्य मूरति गुन भान।
जिन सर्वज्ञ नमौं शिर नाय, नमौं अनंत गुननके राय ॥९०॥
नमौं दोष हरता जिनदेव, नमौं जगत बांधव कर सेव।
मंगलभूत नमौं पद दोय, लोकोत्तम प्रनमौं पुन सोय ॥९१॥
नमौं विश्व शरणादिक ईश, नमौं विश्वमूरति जगदीश।
प्रनमौं वर्धमान जिनराय, प्रनमौं वीर स्वामि गुन गाय ॥९२॥
प्रनमौं सन्मति मति दातार, नमौं विश्व हित करता सार।
नमौं त्रिजग गुरु चरण महेश, नमौं नंत गुण वारिधि तेश ॥९३॥
यहि विधि तुव अस्तवन वखान, कीनौं भक्ति राग उर आन।
तुम सुखदायक श्रीपति सेव, जाचैं तीन लोक भवि जीव ॥९४॥

एक जनम सुख कैतिक कह्यौ, सदा शासतौ पद तुम लह्यौ।
सुख अनन्त प्रापत भए आय, तीन जगत जिय प्रणमैं पाय॥९५॥

गीतिका छन्द।

त्रिदशपति तुम चरण पूजत, धर्म तीरथ उद्धरै।
कर्म अरि जब नाश कीनौं, सुभट पद तब सुद्धरैं॥
तुम प्रवीण त्रिलोक करता, गुणन निधि कर लेखिये।
संसारसागर रुलत जे जिय, तुम जहाज विशेखिये॥ ९६ ॥
ज्ञान दर्शन रतन पायौ, विबुध पति सेवा करैं।
कुमति शत्रु निवारकैं, प्रभु धर्म मारगको धरैं।
कह्यौ गौतम स्तवन जिनवर चरण कमलनिकौ नयौ।
'नवल' इमि कर जोर विनवै, भक्ति तव भव भव लयौ॥ ९७॥

दोहा—इत्यादिक प्रभु अस्तवन, पूजा वसुविध धार।
निज कोठामें थिर भये, सन्मुख जिनहि निहार॥ ९८॥

चौपाई।

अब श्री गौतम प्रश्न करेव, प्रभुको फेर नमौ कर सेव।
भो स्वामी तुम जगत महेश, कहिये सभा धर्म उपदेश॥
जीव तत्त्व कहिये प्रभु आदि, ताके लक्षण कहा अनादि।
कहा अवस्था कहिये सोय, गुण अरु भेद बताओ दोय॥१००॥
तिनकी कहा कही परजाय, थिति संसार मोक्षको पाय।

१—वीतराग-सर्वज्ञकी वाणी प्रश्नोत्तर रूपसे नहीं खिरती। उनकी वाणी खिरती है जिससे श्रोताओंके प्रश्नका उत्तर स्वयमेव होता जाता है। जहां कहीं प्रश्नोत्तरकी बात लिखी गई है वह कवि कल्पित है और विषय निरूपण करनेका एक प्रकार मात्र है।

अजीव तत्व है कै परकार, सबके गुण कहिये विस्तार ॥१०१॥
आस्रव आदि तत्वके और, कै सुख करता कै दुख ठौर।
कौन तत्वफल लक्षण कौन, करता कौन कहो प्रभु तौन ॥१०२॥
कौन तत्वकौ साधै मोख, कौन करम नारक दुख पोख।
कौन करम तिर्यंच जु होय, कौन क्रिया कर स्वर्ग संजोय ॥१०३॥
कि शुभ कर्म मनुषगति लहै, कौन दानतैं भोग भोगहै।
अस्त्रीलिंग क्षीण किम होइ, सो आचरण बताओ मोइ ॥१०४॥
पुरुषवेदतैं नारी होइ, दुराचार भाषो प्रभु सोय।
पंगु अन्ध बहिरौ पुनि कोइ, विकल मूर्ति मूका जिम होइ ॥१०५॥
रोगी कोइ निरोगी जीव, रूपवंत विन रूप अतीव।
दुर्भग सुभग कौन विधि जान, सुधी कुधी मूरख किम मान ॥१०६॥
अशुभ चित्त शुभ चित्ती केम, क्यों भोगी अनभोगी जेम।
धर्मवंत अरु पापी कहौ, धनी निर्धनी किहि विधि लहौ ॥१०७॥
कौन कर्म जिय लहै वियोग, कौन धर्मतैं सुजन संयोग।
कि दाता कि कृपण जु होय, कि गुणवन्त विना गुण कोय ॥१०८॥
पर चाकर नर किहि विधि होय, अरु स्वामित्व लहै किम कोय।
कौन पापतिहिं पुत्र न जिये, अरु वन्ध्या नारीका किये ॥१०९॥
कैसे पुत्र होय चिरजीव, किम कातर किम धीर अतीव।
कौन कर्म तैं निन्द्य अपार, किम आचरण लहै जस भार ॥११०॥
शीलवंत नर कैसे होइ, अरु कुशील किम पावै सोइ।
क्यों कर सत संगतिको पाय, लहै कुसंगति किहि विधि आय ॥१११
होय विवेकी किहि परकार, मूढ़ होय नर किहि संसार।

लहैं श्रेष्ठ कुल किहि कर जीव, कौन पाप कुल निंद्य अतीव ॥११२॥
मिथ्या मारगमें अनुराग, जिनवर धरम रहित गुण त्याग।
दुष्ट काय आसक्ति कहेव, कौन करम यह कहिये देव ॥११३॥
मोक्षमार्गको फल प्रभु कहो, कौन वास कह लक्षण लहो।
जती धर्म कहिये उत्कृष्ट, श्रावक तनैं भाषिये इष्ट ॥११४॥
सर्पिणी[1] उत्सर्पिणी[2] षट काल, ताकौ भेद कह्यौ सब हाल।
तीनलोक विवरण अवभास, और शलाका पुरुष प्रकास ॥११५॥
भूत भविष्यत वर्त जु मान, तीन काल कहिये भगवान।
बहुत उक्तिकौ कहै बढ़ाय, द्वादशांग सब भेद कहाय ॥११६॥
सो सब कृपा नाथ उच्चार, दिव्यध्वनि वाणी सुखकार।
भव्यनिको उपकारक सोय, स्वर्ग मुकति पद प्रापत होय ॥११७॥

गीतिका छन्द।

यह भांति गौतम प्रश्न कर, बहु तत्त्व आदि अनेक ही।
सभा द्वादश हर्ष उपज्यौ, रंक मानौं निधि लही॥
कहत भवि धन धन्य व्यासहि, तुमहि उत्तम जस लयौ।
विश्व हित उपकार करता, वचन अमृत पर ठयो ॥११८॥

इति कविरत्न श्रीनवलशाहजी विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्धमानपुराणमे गौतम-आगमन, स्तुतिकरण, प्रश्नकरण, आदि कथाका वर्णन करनेवाला द्वादश अधिकार पूर्ण हुआ।

१-अवसर्पिणी-जिसमें विद्या बल आदिकी हीनता होती जाती है।
२-उत्सर्पिणी-जिसमें विद्या बल आदिकी वृद्धि होती जाती है।

त्रयोदश अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा—श्री सन्मति केवल उदय, नास्यौ तम अज्ञान।
विश्वनाथ प्रणमौ सदा, विश्व प्रकाशक भान॥ १॥
अब प्रभु दिव्य ध्वनि भई, स्वर्ग मुकति सुखदाय।
चतुर वदन आरम्भ किय, सप्तभंग समुदाय॥ २॥
तालु ओंठ सपरस विना, अक्षर रहित गम्भीर।
सर्व भाषमय मधुर ध्वनि, सिंह गरज सम धीर॥ ३॥

चौपाई।

* प्रथमहि स्यात् अस्ति जानिये, दूजै स्यात् नास्ति मानिये।
तीजे स्यात् अस्ति अरु नास्ति, चौथे स्यात् अव्यक्त प्रशस्ति॥४॥
पंचम स्यात् अस्ति अव्यक्त, छठम स्यात् नास्ति अव्यक्त।
स्यात् जु अस्ति नास्ति जुत जान, अवक्तव्य सातम परवान॥ ५॥
अब इनको कछु निर्णय कहौं, जथा शक्ति आगम बुध लहौं।
स्यात् कथंचित् कहिये सोय, आप चतुष्टयको अवलोय॥ ६॥

---

* दर्व खेत काल भाव अपनै चतुष्टै अस्त,
परके चतुष्टै सें न नासत दरव है।
आपसे है परसैं न एक समै अस्त नास,
ज्यौंके त्यौ न कहे जाहि अस्त अवतव है॥
अस्त कहै नासका अभाव अस्त अव तव,
नास्त कहै अस्त नाहिं नास अव तव है।
एकठे कहे न जाहिं अस्त नास अवतव,
स्यादवाद सेती सात भंग सधै सब है॥ १॥
—चरचाशतक, पं० द्यानतरायजी।

द्रव्यक्षेत्र अरु काल जु भाव, तिनके भेद सुनो ठहराव।
जो कछु वस्तु द्रव्य सो जान, द्रव्यवगाहन क्षेत्र प्रमान ॥ ७ ॥
द्रव्य परजाय काल मरजाद, द्रव्य रूप भाव उनमाद।
सो यह आप चतुष्टय धार, घट दृष्टांत अस्ति है सार ॥ ८ ॥
जो पर चतुक अपेक्षा जान, स्यात नास्ति ताको परमान।
जैसे घट परघटको धार, घटकी नास्ति होइ तिहि वार ॥ ९ ॥
जो घटरूप घटहिमें देखि, घट पट एक हि व्यक्त जु लेखि।
पर अर अपर चतुष्टय साथ, अस्ति नास्ति तीजौ श्रुत गाथ ॥१०॥
अस्ति नास्ति यौ वचन क्रमंत, कह्यौ न जाय द्रव्य परजंत।
अवक्तव्य है चौथो भेद, ऐसे ही त्रय और निवेद ॥११॥
अस्ति अवक्तव पंचम जान, नास्ति अवक्तव छटम प्रमान।
अस्ति नास्ति अव्यक्त सातमा, स्यात सवहि थानक प्रवर्तमा ॥१२॥
यह संक्षेप कहे गुण जास, अब कछु भेद धरौ यह पास।
है शब्दहि प्रथमहि जानिये, नाही द्वितिय भेद ठानिये ॥१३॥
है नाही तीजौ सुन मेव, है नहि अवक्तव्य चौथेव।
है कर है है नाहीं कर है. अवक्तव्य पंचम गुणधर है ॥१४॥
नाही करना ही है नाही, करना ही अव्यक्त छटा ही।
है कर है नाही है नाही, है नाही है अवेतव्या हि ॥१५॥
दोहा—इहि विधि सातौं भंग यह, एक एक भ्रम हर्न।
स्याद्वाद कलशा किरन, जगतम नाशन किर्न ॥१६॥

१—अवक्तव्य, २—अवक्तव्य।

चौपाई।

सुन गौतम अब मन वच काय, प्रश्न तनौं उत्तर सुखदाय।
सप्त तत्व सब वरनौं भेद, जातैं तुम मन नाशै खेद ॥१७॥
जीव अजीव आस्रव अरु बंध, संवर निर्जर मोक्ष प्रबन्ध।
एही सप्त तत्व पहिचान, पाप पुण्य मिलि नौ पद जान ॥१८॥

जीव तत्त्वनिरूपण—

अब सुन जीव तत्व विस्तार, ताके हैं नव भेद अपार।
जीव अपर उपजोग प्रमान, मूरतविन करता पुन जान ॥१९॥[1]
भुंगता देह प्रमानी सवै, थिति संसार माहि है जबै।
ऊरधगामी सिद्ध सरूप, सुन तिनको वर्णन गुण रूप ॥२०॥

जीव भेद निरूपण—

दोहा—चार[2] प्राण व्यौहार नय, निहचै चेतन एक।
इन सौं जो जीवत रहै, सो ही जीव विवेक ॥ २१ ॥

चौपाई।

इन्द्रिय प्रथम प्राण अवधार, वल दूजो जानो निरधार।
आयु तीसरो कहिये प्रान, सांस[3] उसास तुर्य[4] पहिचान ॥२२॥
मूल प्राण ये चारों जान, एकेन्द्रियके कहे समान।

१—जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता ससारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढ गई ॥ २ ॥
—द्रव्यसंग्रहे नेमिचन्द्राचार्य।

२—तिक्काले चदु पाणा इन्दिय वलमाउ आणपाणो य।
ववहारा सों जीवो, णिच्चयणयदो दु चेदणा जस्स ॥ ३ ॥
द्रव्यसंग्रहे नेमिचन्द्राचार्य।

३—श्वासोच्छ्वास, ४—चौथा।

जिह्वा भाष दोय जुत सोय, दो इन्द्रिय षट प्रान जु होय ॥२३॥
नासा मिले सात ये प्रान, ते इन्द्रियको लहौ सुजान।
चक्षु सहित आठौं गन लेव, चौ इन्द्रियको प्राण कहेव ॥२४॥
कानन जुत नव प्राण विशेख, पंचेन्द्रीय असैनी लेख।
मन जु सहित हैं सब दश मान, सैनी पंचेन्द्रिय परवान ॥२५॥
दोहा—पांच प्राण इन्द्रिय जनित, मन वच बल ये तीन।
आयु श्वास उच्छ्वास गन, ये दश सुनहु प्रवीन ॥२६॥
सोरठा—यहि विधि जीवै जीव, तीन काल जगमें प्रगट।
जब शिव लहै सदीव, सुख शक्त्याचित बोधमय ॥२७॥

अथ-उपयोग भेद निरूपण—

पद्धड़ि छन्द।

उपजोग भेद दो विध वखान, है दरशन चारौं आठ ज्ञान।
चक्षु अचक्षू अर अवधि धार, केवल जुत दरशन इहि प्रकार ॥२८॥
मति श्रुत अवधी पुन त्रय अज्ञान, मनपरजय केवल अष्ट णान।
मति श्रुत ये दोय परोक्ष भेस, अवधी मनपर्जय प्रतछ देश ॥२९॥
अब केवलज्ञान प्रतक्ष सर्व, सो लोकालोक विलोक दर्व।
जहँ नंत द्रव्य परजाय होय झलकैं सब एकहि वार सोय ॥३०॥

१—अनन्त बलसे सहित।
२—उवओगो दुवियप्पो, दसणणाणं च दसण च्चदुधा।
चक्खु अचक्खु ओही, दंसणमध केवल णेयं ॥ ४ ॥
—द्रव्यसंग्रहे नेमिचन्द्राचार्य।
३—ज्ञान, ४—देशप्रत्यक्ष।

दोहा—दर्शन चहु वसु ज्ञान सब, ये व्यौहार सरूप।
निहचै चेतन शुद्ध नय, दर्शन ज्ञान अनूप॥ ३१॥

अथ अमूर्तिक भेद निरूपण—

चौपाई।

वैरण पंच रस पंच दुगन्ध, आठ फास गुण वीस प्रबंध।
पुद्गलीक गुण सबै अतीव, इनमें मूरतिवंत जु जीव॥३२॥
यह व्यवहार रूप मानिये, निहचै और भेद जानिये।
जब इनहीको त्याग जु करै, अमूर्तीक पद तब जिय धरै॥३३॥

कर्तृत्व भेद निरूपण—

पुद्गल सम्बन्धी जब जीव, कर्म कर्मको करै सदीव।
यह अशुद्ध नयको व्यवहार, रागद्वेष उपजावनहार॥३४॥
दोहा—निश्चय करके जीव यह, धरै शुद्ध जब भाव।
चेतन पद प्रगटै जबै, मुक्त होय शिव ठाव॥ ३५॥

१—अट्ठ चदु णाण दसण, सामण्ण जीवलक्खण भणिय।
ववहारा सुद्धणया, सुद्ध पुण दसण णाण॥ ६॥
—द्रव्यसंग्रहे।

२—वण्णरस पञ्च गधा, दो फासा अट्ठ णिच्चया जीवे।
णो सति अमुत्ति तदो, ववहारा मुत्तिवधादो॥ ७॥
द्रव्यसंग्रहे।

३—पुग्गलकम्मादीण, कत्ता ववहारदोदु णिच्चयदो।
चेदणकम्माणादा, सुद्धणया सुद्ध भावाण॥ ८॥

अथ भोक्तृत्व भेद निरूपण—

चौपाई।

प्राणी सुख दुख या जग मांहि, भुगतै आप कर्म फल पांहि।
सो व्यौहार कह्यौ परवांन, निश्चय सुख भुगतै शिव थान ॥३६॥

देहप्रमाण निरूपण—

दोहा—देहमात्र व्यौहारनय, कह्यौ वीर जिनराय।
निश्चयनयकी दृष्टि सौं, लोकप्रदेशी थाय ॥३७॥

चौपाई।

धरै थूल जब यही शरीर, तब विस्तार करै गुणधीर।
सूक्षम देह पाय कर जीव, संकोच न तिहि होय सदीव ॥३८॥
जैसे दीप अधिक छवि धरै, भाजन मान उदोत न सरै[3]।
समुद्घात बिन यह परवान, ताकौ भेद सुनो गुण खान ॥३९॥

समुद्घात वर्णन—

दोहा—कार्माण तैजस दुविध, बाहर निकस प्रदेश।
आवैं वे ही मूलतन, समुद्घात इहि वेष ॥४०॥
सात भेद ताके कहे, प्रथम वेदना नाम।

१—ववहारा सुहदुक्ख, पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदी।
आदा णिच्चयणयदो, चेदणभाव खु आदस्स ॥ ९ ॥
द्रव्यसंग्रह।

२—अणुगुरुदेहपमाणो, उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा, णिच्चयणयदो असंखदेसो वा ॥ १० ॥
द्रव्यसंग्रहे।

३—निकले, ४—मूल शरीरको नहीं छोडकर आत्माके प्रदेशोंका शरीरसे बाहर निकलना समुद्घात कहलाता है ५—वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहारक और केवल, ये ७ समुद्घात हैं।

दुतिय कषाय विकुर्व त्रय, मारणान्त अभिराम ॥४१॥
पंचम तैजस छटम पुनि, आहारक गुण धाम।
केवलि जुत सातौं कहै, समुद्धातके नाम ॥४२॥

वेदना समुद्घात—

अडिल्ल।

दुसह वेदना पीर होय, कहुँ आयकैं।
कढ़हिं जीव परदेश मनहिं अकुलायकैं॥
औषध ततछिन परम फेर तन आवही।
समुद्घात यह प्रथम वेदना नाम ही॥ ४३॥

कषाय समुद्धात—

काहू रिपुको करै विध्वंसन जायकै।
बाहिर निकसे अंश, जीवके आयकैं॥
अति कषाय बल होइ, अशुभ भावन वहै।
समुद्घात यह दुतिय, कुगतिको पद गहै॥ ४४॥

वैक्रियिक समुद्धात—

धरै विक्रिया रूप, विविध परकार सौं।
निकसैं ब्रह्म प्रदेश, सचेतन भाव सौं॥
देव नारकी मनुष्य लहैं, पशु नाहि हैं।
समुद्धात यह तृतिय भेद, पहिचान है॥ ४५॥

मारणान्तिक समुद्धात—

काहू जीवकै मरण समय, उपजै सही।
बाहिर निकसै आय, जीव परदेश ही॥

१—आत्माके प्रदेश।

बांधी गतिको परस आय, निज थान ही।
समुद्घात यह कहौ, तुरिय तस जान ही ॥ ४६ ॥

तैजस समुद्घात—

काहू मुनिको आइ, क्रोध उपजौ घनौं।
प्रगटै बॉयें कन्ध पुतर[1] तैजस तनौं॥
ज्वाल ताहि विकराल, सिंदूर प्रकार है।
बारह जोजन दीर्घ, नवजु विस्तार है॥ ४७ ॥
द्वारावति सम प्रलय, भसम मुनि जुत करै।
तैजस अशुभ प्रवांन, कषायन विस्तरै॥
शुभ तैजस सुन भेद, दया मुनिवर बढ़ै।
दुर्भिक्षादिक मेंट, शुभहि आकृति चढ़ै॥ ४८ ॥
कंध दाहिने निकस, पूर्व जब पोतरा[2]।
रोग शोक दुख सकल, निवार सुखोत्तरा॥
फिर निज थानक आय, अङ्ग मुनि सुख करै।
समुद्घात दुय भेद, पंचमौ अनुसरै॥ ४९ ॥

आहारक समुद्घात—

करत साधु श्रुत अर्थ, विचार न आवही।
तहं संशय अति होय, चित चित लावही॥
निकट भूमिके मांहि, केवली है नहीं।
कीजै कौन उपाय, भर्म नाशै कही॥ ५० ॥
तब मुनि मस्तक प्रगट अहारक तनु धरौ।
एक हाथ उनमान, जिनेश्वर उच्चरौ॥

१–२ पुतला।

फटिक वरन मन हरन, जाय जहँ केवली।
सब संदेह मिटाय, थान आवे वली ॥ ५१ ॥

केवलि समुद्घात—

तेरम गुनके अन्त, केवलि नाहिंकौ।
रह्यौ पूर्व संसार भ्रमण, कछु ताहिकौ ॥
बाहिर निकस प्रदेश अलख सो जानिये।
दंड कपाट समान त्रिलोक प्रमानिये ॥ ५२ ॥

दोहा—प्रथम समयमें दंड कर दूजै करै कपाट।
तीजै प्रतर चतुर्थ भर-पूर लोक संपाट ॥ ५३ ॥
पंचम समय विवर्त[2] कर, षटमं थान वतेह।
कपाट सप्तमै अष्टमै, दंड प्रथम तन जेह ॥ ५४ ॥

समुद्घातमें दिशाओंका नियम।

मारणांत आहार पुन, एक दिशा गमनेह।
समुद्घात पांचौ अवर, दशहू दिश गत तेह ॥ ५५ ॥

[3]चौवीस स्थान भ्रमण वर्णन—

भ्रमत जीव संसारमें, चौबिस थानक मांहि।
तै वरनौं संक्षेप कर, श्री जिन आगम पाहि ॥ ५६ ॥

१—केवलिनाथ, २—लौटकर, ३—१ गति, २ इन्द्रिय, ३ काय, ४ योग, ५ वेद, ६ कषाय, ७ ज्ञान, ८ सयम, ९ दर्शन, १० लेश्या, ११ भव्यत्व, १२ सम्यक्त्व, १३ संज्ञित्व, १४ आहार (ये चौदह मार्गणा), १५ गुणस्थान, १६ जीवसमास, १७ पर्याप्ति, १८ प्राण, १९ सज्ञा, २० उपयोग, २१ ध्यान, २२ प्रत्यय, २३ जाति और २४ कुल ये चौवीस स्थान कहलाते हैं।

गति इन्द्रिय अरु काय पुनि, जोग हि वेद कषाय ।
ज्ञान सु संजम दरशनौ, लेश्या भवि दुविधाय ॥ ५७ ॥
समकित सैनि अहार ए, मारगणा दश चार ।
गुणस्थान चौदा अवर, जिय समास पुनि धार ॥ ५८ ॥
परजापति[1] प्राणन सहित, संज्ञा अरु उपजोग ।
ध्यान जु प्रत्यय जाति, कुल सब चौवीस नियोग ॥ ५९ ॥

गतिवर्णन—

चौपाई।

चारों गतिमें भटकै जीव, पापकर्म तारक दुख लीव ।
पुनि तिरजंच सु है तृष[2] भूख, मानुषकौ बहु सुख दुख ऊख ॥६०॥
शुभ भावन तैं सुरगति पाय, इहि विधि भ्रमैं जगतमें जाय ।
अब नारक गतिकौ सुन भेद, जिम भविजन नाशै भ्रम खेद ॥६१॥

नरकगति वर्णन—

अधोलोकमें नरक जु सात, तहां नारकी जिय उतपात ।
प्रथमहि काल नरक तन लहै, पौन आठ धनु अंगुल छहै ॥६२॥
सागर एक आयु उतकिष्ट, दश हजार लौं कही कनिष्ट ।
उष्ण स्वभाव रहै तिहि थान, सहैं वेदना वे परमान ॥६३॥
महाकाल दूजौ तब धार, साढ पन्द्र धन अंगुल बार ।
सागर तीन आयु गन लेइ, उष्ण स्वभाव सदा दुख देइ ॥६४॥
रौरव तृतिय नरक दुख एह, सवा अधिक त्रिशत धनु देह ।
सागर सात आयु परवान, उष्ण महा है दुखकी खान ॥६५॥

१—पर्याप्ति। २—प्यास।

तुरिय महारौरव दुख सहै, साढ़े बासट धनु तब लहै।
महाउष्णता कही न जाय, सागर दश थिति है अधिकाय ॥६६॥
शालमीक पंचम दुख घनौं, धनुष सवासै तनु तहँ बनौ।
सत्रह सागरकी थिति लहै, उष्ण शीत दोऊ विध सहै ॥६७॥
असिक पत्र छटम दुख देइ, धनुष अढाईसै तनु लेइ।
बाइस सागर आयु लहाय, शीत तहां व्यापै अधिकाय ॥६८॥

*कुम्भीपाक सप्तमौ भनौ, धनुष पांचसै तनु तहँ बनौ।
तेतिस सागरकी थिति जहां, शीत महा तन पीड़हि तहां ॥६९॥
सप्तम नरक नराकिया जीव, तिनकी संख्यासंख्य गनीव।
तिनतैं छट्टम नरक गनेह, संख्य गुने सब जानहु तेह ॥७०॥
तिनतैं पंचम भूमि प्रमान, संख्य गुनै लीजौ पहिचान।
चौथे दुतिय तृतिय पहलेह, ऐसे ही सब जिय गन नेह ॥७१॥

प्रथम नरकमें जो दुख लहै, तिहितैं दुगुन दुगुन है कहै।
सकल भेद पूरब बरनयौ, पुनर उक्ति तैं नाही भयौ ॥७२॥
दोहा—सात नरकके जानिये, पटल सकल उनचास।
तिनमें उपजैं नारकी, बिले लाख चौरास ॥७३॥

तिर्यञ्चगति वर्णन।

चौपाई।

अब सब पशुगतिको सुन भेव, जो भाष्यौ है श्री जिनदेव।

---

*यहां ग्रन्थकर्त्ताने सात नरकोंके नाम क्रमसे नीचे लिखे अनुसार माने हैं—
१ काल, २ महाकाल, ३ रौरव, ४ महारौरव, ५ शाल्मीक, ६ असिक-पत्र और ७ कुम्भीपाक।

दोऊं[1] समुद कर्म भू[2] माहि, क्षेत्र एकसै सत्तर मांहि ॥७४॥
आधे चरम द्वीपके अन्त, संभू रमण उदधि परजंत।
सैनी पंचेन्द्रिय तिरजंच, और असैनी-मन नहिं रंच ॥७५॥
जलचर थलचर नभचर होइ, अरु विकलत्रय उपजैं सोइ।
पृथिवी पानी तेज सु बाय, वनस्पती दुइ भेद लहाय ॥७६॥
प्रत्येकहि साधारण सोय, प्रत्येकहि वृक्षादिक होइ।
सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जान, सुप्रतिष्ठित उपजैं तिहिथान ॥७७॥
तिनमें राशि निगोद जु होय, सुप्रतिष्ठित जानो तरु सोय।
साधारण निगोद दो जान, इन सूक्षम बादर सब थान ॥७८॥
नित्य निगोद गोलकन पंच, जीवराशि जानो सब संच।
अब सुन भोगभूमि पशु कहौ, और कुभोग भूमिमें लहौ ॥७९॥
पुष्करार्ध तैं बाहिर जान, दीप असंख्य सबै परवांन।
सैनी पंचेन्द्रिय तिरजंच, थलचर नभचर दोय सदंच ॥८०॥
जलचर इन थानक नहि कही, विकलत्रय नहि उपजैं सही।
वनस्पती अप्रतिष्ठित होय, विन निगोद तरु कल्प सँजोय ॥८१॥
सूक्षम पंच थान वरजेइ, तीन लोक सब थानक तेइ।
सबकी थिति उत्कृष्ट बखान, तीन पल्य पंचेन्द्रिय जान ॥८२॥
चौ इन्द्रिय छह मास जु कही, ते इन्द्रिय दिन उनचास ही।
बारह वरष द्विइन्द्रिय लहै, अब एकेन्द्रिय थिति को कहैं ॥८३॥

१–लवण और कालोदधि ये दो समुद्र।

२–पांच मेरु सम्बन्धी १६० विदेह (५×३२=१६०) ५ ऐरावत और ५ भरत, सब मिलाकर १७० कर्मभूमिके क्षेत्र कहलाते है।

बाइस सहस वर्ष पृथिवीय, सात हजार जलहिको लीय।
तीन दिना है अगिन जु आव, तीन हजार वायुको थाव ॥८४॥
वनसपती प्रत्येक बखान, दश हजार वरषैं थिति जान।
यह उत्कृष्ट आयु परमान, अब जघन्य सबको उनमान ॥८५॥
अन्तमुहूरत लौं थिति रंच, पृथिवी चउ साधारण पंच।
बादर सूक्ष्म दशहि परवांन, प्रत्येक हि गेरम पहिचान ॥८६॥
छह हजार बारह धर शीस, छ्यासट सहस इकसै बत्तीस।
विकलत्रय जु असैनी दीस, असी साठ चालिस चौवीस ॥८७॥

शरीरकी अवगाहनाका वर्णन—

छ्यासट सहस त्रयसै छत्तीस, जन्ममरण भाष्यौ जगदीश।
काय भेदु अब सुनहु सुजान, मच्छ सहस जोजन परवांन ॥८८॥
जोजन एक भ्रमर तन कूर, तीन कोशको कानखजूर।
बारह जोजन शंखहि धार, अर एकेन्द्रिय काय विचार ॥८९॥
पृथिवी जल प्रत्येक जु दोय, असंख्यात जोजन अब लोय।
अग्नि पवनकी देह जु कही, किंचित ऊन लोक भर लही ॥९०॥

१—लब्धि अपर्याप्तक जीवोंकी जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त ही है। उस अन्तर्मुहूर्तकी स्थितिमे यह जीव ६६३३६ बार जन्म मरण धारण कर सकता है। उसकी विगत निम्न प्रकार है—

पृथिवी कायिक आदि चार और साधारण वनस्पतिकायिक १ इन पांचके सूक्ष्म तथा बादरकी अपेक्षा १० भेद हुए। उनमे १ भेद प्रत्येक वनस्पतिकायिकका जोडा। इन ११ प्रकारके जीवोंमे प्रत्येकके ६०१२ बार जन्म मरण होते है। इसलिये ६०१२×११=६६१३२ भेद एकेन्द्रिय जीवोंके हुए, उनमे द्वीन्द्रियके ८०, त्रीन्द्रियके ६०, चतुरिन्द्रियके ४० और असैनी पंचेन्द्रियके २४ भेद जोड देनेसे कुल भेद ६६३३६ हो जाते हैं।

यह उत्कृष्ट काय परमान, अब जघन्यको करौं बखान।
शालिसिक्थ मच्छहि लघुरूप, मक्षिकादि चौइन्द्रिय नूप॥९१॥
कुन्थु आदि ते इन्द्रिय जान, अनुंधरिया दो इन्द्रियवान।
अंगुल एक असंख्य जु भाग, पृथिवी चौक वनस्पति साग॥९२॥
पृथ्वी जीव मसूर अकार, जलको रूप बूंद सम धार।
सुईवत तेजहि की है काय, ध्वज आकार शरीर जु वाय॥९३॥
तरु प्रत्येक हि भेद अनेक, साधारण सूक्षम वपु सेक।
अब सब जीवनि संख्या जान, जैसो जिनशासन पहिचान॥९४॥
असंख्यात पंचेन्द्रिय पशू, तिनमें संख्य असैनी लसू।
तिन ही तैं चौइन्द्री जीव, संख्य गुनै ताकरि कर लीव॥९५॥
जिनतैं संख्य गुनै ते अक्ष, तिनतैं संख्य गुणै वे अक्ष।
एकेन्द्रिय कौ पृथिवी चौक, संख्य संख्य गुन क्रम कौ थोक॥९६॥
वनस्पती प्रत्येक बखान, सब देवन सम संख्या जान।
तिनतैं नंत गुनै पहिचान, साधारण ईतर जिय जान॥९७॥
सिद्धा सर्व अनंतानंत, सोहैं तीन लोकके अन्त।
तिनहि अनन्तानन्त गुनेह, नित्य निगोद एक वपु तेह॥९८॥
इक वपुतैं सब गोलक जीव, नन्तानंत तहां जु सदीव।
तिनके भाग अनन्तानन्त, थिर संसार अभव्य वसन्त॥९९॥
तिनहिं अनंत भागमैं जान, भव्यजीव शिव लहैं निदान।
सिद्ध नंतता बढ़ै नहि कदा, राशि निगोद घटै नहि सदा॥१००॥

१–तीन इन्द्रिय जीव। २–दो इन्द्रिय जीव।

मनुष्यगति वर्णन—

नरगति भेद कहौं कछु तेह, द्वीप अढ़ाईमें उपजेह।
भोगभूमि उतकृष्ट बखान, उपजैं जुगल सदा तिहि थान ॥१०१॥
तीन कोशकी काय धरेह, तीन पल्यकी आयु धरेह।
तीन दिवसमें लेइ अहार, बदरी फलवत नहीं निहार ॥१०२॥
मध्यम भोगभूमि नर बसैं, दोय कोशको वपु धर लसैं।
दोय पल्य जीवै तस आव, दोय दिना गत भोजन भाव ॥१०३॥
जघन्य भोगभूमि सब नरा, एक कोशको तन जहँ धरा।
एक पल्यकी थिति है तेह, नितप्रति भोज कलप वृक्षेह ॥१०४॥
और कुभोगभूमि नर कहै, पशुवत मुख सबके सरदहै।
भोग भूमिवत आव रु काय, मृतिका भोजन लहैं सवाय ॥१०५॥
स्वाद शर्करावत तस जान, अविवेकी हिरदैं नहि ज्ञान।
विदेह सबै कर्म भू थान, काय पंचशत धनुष प्रमान ॥१०६॥
सदा शाश्वते मन्दिर बसैं, धन कन पूरन सब सुख लसैं।
दिन प्रति भोजन षटरस बहैं, आयु कोटि पूरवकी लहैं ॥१०७॥

दोहा—सत्तरलाख छप्पन सहस, इतने कोड़ाकोड़ि।
एक कोड़ पूरव वही, अंक इकीसह जोड़ि ॥१०८॥

१—पुव्वस्स दु परिमाण सवरि खलु कोडि सदसहस्साइम्।
छप्पण्ण च सहस्सा बोद्धव्वा रास कोडीणम् ॥

७०५६०००००००००० वर्षोंका एक कोडि पूर्व होता है।

इसका खुलासा—इस प्रकार है—पूर्वाङ्ग वर्षलक्षाणामशीतिश्चतुरुत्तरा।
तद्वर्गित भवेत्पूर्वं तत्कोटी पूर्वकोट्यसौ ॥

अर्थात् ८४०००० लाख वर्षोंका १ पूर्वाङ्ग होता है और पूर्वा-

चौपाई।

आरजखण्ड काल षट वहैं, सुख दुख कर पूरन निर्वहै।
तीन कोश उत्कृष्ट सु देह, एक हाथको जघन भनेह ॥१०९॥
तीन पल्य आयु उतकृष्ट, षोडशं वर्ष हि कही कनिष्ठ।
सकल म्लेच्छनमें नर होइ, धर्म बिना नहि सुख दुख जोइ ॥११०॥
आयु कायकौ यह परवांन, भरतैरावत आर्य समान।
म्लेच्छ विदेहनमें जे लेख, काय आयु उनही सम पेख ॥१११॥

दोहा—भोगभूमि त्रय काल त्रय, चतुरथ काल विदेह।
पंचम काल म्लेच्छ सब, छट्टम नारक तेह ॥ ११२ ॥
आरज दश सब मांहिमें, वरतैं छैहू काल।
घट बढ़ बढ़ घट देहि थिति, लहै बहुत जंजाल ॥११३॥

चौपाई।

[3]संख्या सब नर जीवन सुनौ, गर्भज संमूर्च्छन दुर भनौ।
गर्भज नर सबको परमान, कल्पभाग सौ तिहि उनमान ॥११४॥

ङ्गमे पूर्वाङ्गका गुणा करनेपर जो लब्ध आवे उतना कोटि पूर्व होता है। चौरासीलाखमें चौरासीलाखका गुणा करनेपर ऊपर लिखा प्रमाण निकल आता है। १-२—तीन पल्यकी आयु उत्तम भोगभूमिके मनुष्यकी होती है और १६ वर्षकी आयु छठवे कालके अन्तके मनुष्योंकी होती है। मनुष्योंकी सबसे जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्तकी होती है जो कि लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंकी होती है।

३—गोम्मटसार जीवकाण्डमें मनुष्योंका प्रमाण इस प्रकार बताया है—

सेढी सूई अगुल आदिम तदिय पद भाजिदे गूणा।
सामण्णमणुसरासी पंचम कदि घण समा पुण्णा ॥ १५६ ॥

अर्थ—सूच्यंगुलके प्रथम और तृतीय वर्गमूलका जगच्छ्रेणीमें भाग

ताके अङ्क उंत्तीस हि जोइ, तामें नारी भाग जु दोय।
एक भाग है पुरुष निदान, तेहीमें जुं नपुंसक जान ॥११५॥

उक्तं च गाथा।

सत्तादि णवहि दो दो, अट्ठेकं छक्क दोण्णि पंचेक्कं।
चदु दुग छक्कं चदुरौ, तिय तिय सत्तं तहा पणगं॥
णव तिण्णि पंच चदुरौ, तिण्णि तहा णव य पंच सुण्णं च।
तिय तिय छक्कं च तहा, मणस्सरासीपमाणं तु॥

[७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६]

सन्मूर्च्छन नरको उन्मान, कहै जिनागम संख्य प्रमान।
यह संक्षेप मनुपगति जान, अब देवनका करौं बखान ॥११६॥

देवगति वर्णन—

भवनवासी दश विधि थान, असुर कुमार प्रथम पहिचान।
काय धनुष पचीस उत्तंग, तुर्य नरकलौं विक्रिय अंग ॥११७॥
अब नव भवन तनौं सुन भेव, काय धनुष तन उन्नत लेव।
तीन पल्य सब उतकिठ आव, और जघन्य सहस दश ठाव ॥११८॥
साढ़े बारह दिन जब जांहि, मनसाहार लैहिं सुख चांहि।
नेत्र विषय जोजन इक कोड़, देखै मेरु चूलिका छोड़ ॥११९॥
तिन देवन जिय राशि बखान, असंख्यात गुण को परवांन।
अब व्यन्तर हैं अष्ट प्रकार, [वि]मान असंख्याते निरधार॥१२०॥

देनेसे जो शेष रहे उसमे एक और घटानेपर जो शेष रहे उतना सामान्य मनुष्य राशिका प्रमाण है। इसमेसे द्विरूप वर्गधारामे उत्पन्न पांचमे वर्ग (बादाल) के घन प्रमाण पर्याप्त मनुष्योंका प्रमाण है। पर्याप्त मनुष्योंका स्पष्ट परिमाण आगेकी गाथामे ७९ आदि० २९ अङ्क प्रमाण बताया है।

प्रथम हि शुभ परिणाम हि जान, साढ़े चार जाति परवांन।
किंनर अरु किंपुरुष जु दोय, महोरग गंधर्व हि सोय ॥१२१॥
आधे यक्ष सबै शुभ कहे, अशुभ प्रमाणी आधे लहे।
राक्षस भूत पिशाच य सर्व, यहै अष्टविध व्यन्तर गर्व ॥१२२॥
एक पल्य उत्कृष्टी आव, दश साहस्र जघन्य लखाव।
सब दश धनुषहि व्यन्तर काय, विक्रिय धरैं भवन दश चाव ॥१२३॥
नेत्र विषय जोजन पचीस, साढ़े[1] वसु दिन भोजन कीस।
असंख्यात जियराशि प्रमान, अब जोतिष देवन पहिचान ॥१२४॥
सूर्य चन्द्र ग्रह नखत जु तार, सप्त धनुषकी काय विचार।
आयु पल्य दो है उतकिष्ट, वरष सहस दश कही कनिष्ट ॥१२५॥
साढ़े सात दिवस गत जबै, मनसा हार लेइँ जो सबै।
नेत्र विषय जोजन संख्यात, अध ऊरध सब देखै गात ॥१२६॥
ज्योतिष देव जीवकी राशि, असंख्यात गुण जिनवर भासि।
देविन सहित भोगवैं भोग, भवनत्रिकको यह संजोग ॥१२७॥

कल्पवासी देव वर्णन—

सौधर्मा ईशान जु दोय, काय प्रमान सप्त कर होय।
आयु दोय सागर उतकृष्ट, सागर एक कही जु कनिष्ट ॥१२८॥
काया सौं सुख भुगतैं जास, दोय पक्ष गत लेय उसास।
दोयँ[2] सहस बरषैं जब जाहिं, मानसीक आहार कराहिं ॥१२९॥

१—साढे आठ दिन।

२—इन देवोमे श्वासोच्छ्वास और आहारका नियम इस प्रकार है—
"जिस देवके जितने सागरकी आयु हो उसके उतने पक्षमे श्वासोच्छ्वास और उतने ही हजार वर्षोंमे आहार होता है।" देवोंका आहार

प्रथम नरक लौ विक्रिय लहैं, तहां प्रमाण अवधि सरदहै।
सनत्कुमार महेन्द्र वखान, छै कर उन्नत तन उन्मान ॥१३०॥
सागर सात जु आयु लहेव, असपरशत सुख काम भनेव।
सात पक्ष बीते उच्छ्वास, सात हजार वर्ष गत जास ॥१३१॥
मानसीक तब लेइ अहार, तीजे नरक विक्रिया धार।
ब्रह्म और ब्रह्मोत्तर देव, दश सागरकी थिति लै तेव ॥१३२॥
साढ़े पांच हाथकी देह, रूप देख मानैं सुख नेह।
पांच मास पर लेह उसास, वर्ष सहस दश भोजन आस ॥१३३॥
चौथे नरक विक्रिया गहैं, उनहीलौं जु अवधिको लहैं।
लान्तव अरु कापिष्ठहि अंत, चौदह सागर आयु धरंत ॥१३४॥
पांच हाथको धरैं शरीर, रूप देख सुख मानैं वीर।
सात मास गत लैहिं उसास, चौदह वरष सहस छह जास ॥१३५॥
पंचम भूमि अवधि कर शेष, धरैं विक्रिया ताहि विशेष।
शुक्र महाशुक्र सुर ईश, सोरह सागर आयु सरीश ॥१३६॥
साढ़े चार हाथ तनु धार, शब्द शब्द कर सुख अनुसार।
सोरा पक्ष उसासहि धार, सोरा सहस्र वर्ष आहार ॥१३७॥
पंचम नरक तनैं विक्रिया, तितही लौं जु अवधि धर लिया।
शतार सहस्रार द्वै जान, अष्टादश सागर थिति मान ॥१३८॥
शब्द सुख्यकौ सदा लहेव, चार हाथ तनु धरैं जु देव।
नमै मास उच्छ्वासहि धार, सहस अठारा वर्ष अहार ॥१३९॥

मानसिक होता है—इच्छा होते ही कण्ठमे अमृत झड़ जाता है उससे उनकी तृप्ति हो जाती है।

अष्टम नरक विक्रिया कही, अवधि सहित देखैं सब सही ।
आनत प्राणत सुर दो सार, सागर बीस आयु तहँ धार ॥१४०॥
साढे तीन हाथ वपु लेह, मनकी उमग सुख्यको नेह ।
बीस पक्षगत स्वासा वहै, बीस सहस ब्दप भोजन लहै ॥१४१॥
षष्ठहि नारक विक्रिया लहै, तहां प्रमान अवधिको गहै ।
आरण अच्युत कल्पहि जान, बाइस सागर आयु प्रमान ॥१४२॥
तीन हाथ वपु सोहै तेह, मनमें सुख्य धरैं अति नेह ।
बाइस पक्ष गहै उच्छ्वास, बाइस सहस वर्ष जब नाश ॥१४३॥
मनसा भोजन लेइ जु सोइ, षष्ठहि नरक विक्रिया जोइ ।
उतही लौं जु अवधिकौ जान, अब देविन थिति सुनौ प्रमान ॥१४४॥
सौधर्म हि देविनकी आव, पंच पल्य उतकृष्ट हि ठाव ।
ईशानहिकी सातौं पल्य, सनत्कुमार मांहि नौ पल्य ॥१४५॥
इहि विधि दो दो बढ़तो लेख, सहस्रार लौं लहै विशेख ।
आनत तें बढ़ सात गनेव, षोडश लौं लीजौ सब भेव ॥१४६॥
पचवन पल्य तहां ठहराव, अब ऊरधकौ सुनिये भाव ।
ग्रैवेयक अध देव अहिंदै, काय अढ़ाई हाथ प्रबन्ध ॥१४७॥
सागर तेइस आयु जघन्य, पच्चीसहि उत्कृष्ट गनिन्य ।
[3]देविनि वर्जित सोहै सोय, सुख्य असंख्य गुनै अवलोय ॥१४८॥
मध्यम ग्रैवक दो कर देह, अट्ठाइस सागर थिति लेह ।
ऊरध ग्रैवक तन कर डेढ़, इकतिस सागर आयु प्रवेद ॥१४९॥
नव नवांतर देव जु काय, सवा हाथ सोहै सुखदाय ।

१–वर्ष । २–अहमिन्द्र । ३–सोलहवं स्वर्गके आगे देवियां नहीं होती ।

बत्तिस सागर आयु प्रमान, अब पंचोत्तर सुनौ बखान ॥१५०॥
एक हाथ उन्नत तन दीस, सागर आयु लहैं तेतीस।
सप्तम भूमि नरककी देख, अवधि विक्रिया तहँ लौं पेख ॥१५१॥
तेतिस पक्ष लहैं उस्वास, तेतिस सहस वर्ष गत जास।
मानसीक सो लैंहि अहार, हैं एका अवतारी सार ॥१५२॥
अहमिन्द्रहके सुख्य जु भनौं, भाग असंख्य कल्प सुर गनौ।
पंचोत्तरके देव विशेख, तिनतें संख्य संख्य गुण लेख ॥१५३॥
सो सौधर्म स्वर्ग परजंत, याही विधि गन लीजो संत।
अब चौदेवन[1] संख्या जोड, साढ़े बारह कोड़ाकोड़ ॥१५४॥
जितने अद्धा पल्य बखान, तिनके नाम गुनो बुधिवान।
तितनै हैं सब देव निशंक, अट्ठानव एकसै अंक ॥१५५॥
इहि विधि चारौं गतिकी सीव, दुःख सुक्ख लह भटकैं जीव।
अब गति बंध तनौं सुन भेद, जिमि नासै भव भव मन खेद ॥१५६॥
जितनी आयु जीवकी परै, पैसटसै इक सब दल करै।
आठ भाग कर गतिको लहै, ताके भेद सुनौ अब यहै ॥१५७॥
दोहा—दोय सहस अरु एकसै, और सतासी लीय।
प्रथम भाग ए दल रहै, तब गति बांधहि जीव ॥१५८॥
दुतिय भागमें सातसै, अर ऊपर उनतीस।
दोसै तेतालिस तृतिय, तुरिय इक्यासी दीस ॥१५९॥
रहे पंचमैं भागमें, दल सत्ताइस आव।
षष्ठम नव सत्तम तृतिय, अष्टम एकहि ठाव ॥१६०॥

१—चार्यो प्रकारके देव।

शुभ भावन शुभ गति बंधै, अशुभहि दुर्गति जाय।
सो भावी छूटै नहीं, कीजै कोट उपाय ॥१६१॥

अथ इन्द्रियमार्गणा—

चौपाई।

अब पंचेन्द्रियको सुन भेव, जुदे जुदे विषयनकी सेव।
चाप चारसै इंद्रिय फरस, चौंसठ जीभ नाकसौ सरस ॥१६२॥
इन तीनौं तैं गुनियौ संत, दुगुनै दुगुन असैनी अन्त।
चतुरिन्द्रियको चक्षु प्रमान, उनतिससै चौवन अधिकान ॥१६३॥
तिनतै दुगुण असैनी चक्षु, आठ सहस धनु श्रवण प्रतच्छु।
अब सैनीको विषय निरभनौ, जिहि विध जिन आगममें सुनौ॥१६४
संपरस प्रथम विषय परवांन, नव जोजन लघु लहै निदान।

१—असैनी जीवोंकी इन्द्रियोंका विषयक्षेत्र—

	स्पर्शन	रसना	घ्राण	चक्षु	वर्ण
एकेन्द्रिय	४०० धनुष	×	×	×	×
द्वीन्द्रिय	८०० धनुष	६४ धनुष	×	×	×
त्रीन्द्रिय	१६०० धनुष	१२८ धनुष	१०० धनुष	×	×
चतुरिन्द्रिय	३२०० धनुष	२५६ धनुष	२०० धनुष	२९५४ धनुष	×
असैनी पंचेन्द्रिय	६४०० धनुष	५१२ धनुष	४०० धनुष	५९०८ धनुष	८००० धनुष

२—सैनी पंचेन्द्रियकी इंद्रियोंका विषयक्षेत्र—

स्पर्शन ९ योजन, रसना ९ योजन, घ्राण ९ योजन, चक्षु ४७२६३$\frac{7}{20}$ योजन, कर्ण १२ योजन।

नव रसना नव घ्राण जु होय, नैन विषय आगे अवलोय ॥१६५॥
सैतालीस सहस शत दोय, जोजन त्रेसठ अधिक जु सोय।
बारह जोजन श्रवणन सुनै, यह मिति क्षेत्र विषयकी गुनै ॥१६६॥

कायमार्गणा—

दोहा—पांचों थावर एक त्रस, ए षट्काय गनेव।
भेदाभेद अनेक विध, ग्रन्थमांहि लहि भेव ॥१६७॥

योगमार्गणा—

चौपाई।

अब सुन पंद्रह जोग जु सोय, मन वच काय त्रिविध संजोय।
मनके चार जोग पहिचान, सत्य असत्य दोय परवांन ॥१६८॥
उभय जोग तीसरौ कह्यौ, अनुभय मन चौथो निरवह्यौ।
वचन जोग चारौं उनमान, सत्य असत्य भेद दो जान ॥१६९॥
उभय वचन अनुभय वच होइ, तिनके भेद सुनो अवलोइ।
सत्य कहावे साची बात, तहां असत्य झूठ विख्यात ॥१७०॥
कछू झूठ कछु सांची कहै, उभय जोगको इहि विधि लहै।
जहां न सांच झूठ परसंग, अनुभय जोग कहावे अङ्ग ॥१७१॥

१—सम्यग्ज्ञानके विषयभूत पदार्थको सत्य कहते है, 'जैसे यह जल है।' मिथ्याज्ञानके विषयभूत पदार्थको असत्य कहते है, जसे 'मरीचिकामे यह जल है'। दोनोके विषयभूत पदाथको उभय कहते है। जसे कमण्डलुमे 'यह घट है'। क्योंकि कमण्डलु घटका काम दे देता है इसलिये सत्य है और घटाकर नहीं है, इसलिये असत्य भी है। जो दोनों ही प्रकारके ज्ञानका विषय न हो उसको अनुभय कहते है। जैसे सामान्य रूपसे यह प्रतिभास होना कि 'यह कुछ है'। यहांपर सत्य असत्यका कुछ भी निर्णय नहीं हो सकता इसलिये सानुभय है। (जीवकाण्ड–भाषाटीका, पृष्ठ ८२)
—पं० खूबचन्द्रजी।

प्रथमहि औदारिक है काय, औदारिक मिश्रित दो थाय।
विक्रिय काय जोग त्रय जान, विक्रिय मिश्र काय जोगान ॥१७२॥
अहरक काय जोग पंचमा, अहरकमिश्र काय छट्टमा।
कार्मण काय जोग ये सात, सब पन्द्रह जानौ उतपात ॥१७३॥
जोलौं जोग गमन लह जीव, कर न सकै सरदहन सुकीव।
जब त्यागौ सत्ता इन तनी, होय अयोगी केवल धनी ॥१७४॥

वेदमार्गणा—

अस्त्री पुरुष नपुंसक जान, ए ही तीन वेद पहिचान।
इन्हें धरै जिय नर्तत फिरै, अपनी सुध नहि कबहूं करै ॥१७५॥

कषायमार्गणा—

चार चौकड़ी सोरह जेह, हास्यादिककी नव गन लेह।
ये सब मिलि पच्चीस कषाय, इनको धर जिय जग भटकाय ॥१७६॥

ज्ञानमार्गणा—

ज्ञान आठ-मति श्रुत दो जान, [अ]वधि मन परजय केवलज्ञान।
तीन कुज्ञान मिलैं सब आठ, ज्ञानमार्गणा इहि विधि ठाठ ॥१७७॥

संयममार्गणा—

संयम और असंयम जान, छेदोपस्थान परवान।
यथाख्यात सामायिक और, सूक्षम सांपराय गुण ठौर ॥१७८॥

१—औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र और आहारक मिश्र ये तीन योग अपर्याप्त अवस्थामे होते हैं। २—अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण और संज्वलन इन चारके क्रोध, मान, माया तथा लोभके भेदसे १६ भेद हुए। [४ × ४=१६] इन सोलह भेदोमे हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसकवेद मिलानेसे कषायके २५ भेद हो जाते है।

अरु कहिये परिहार विशुद्ध, ये ही सातों संयम शुद्ध।
अब इनकौ कछु सुनिये भेव, भाषौ है श्री जिनवर देव ॥१७९॥
पंच महाव्रत समिति लहाय, पंचेन्द्रिय जीतै जु दबाय।
मन वच काय दण्ड कर त्याग, ताको भेद सुनौ बड़भाग ॥१८०॥
प्रथम दण्ड मनको जानिये, त्रिविध रूप ताके मानिये।
रागद्वेष मोह ये तीन, तीनके भेद सुनो परवीन ॥१८१॥
प्रेम हास्यरस माया लोभ, रागतनैं ये जानो क्षोभ।
क्रोध मान भय आरति तेह, शोक ग्लानि द्वेष हैं येह ॥१८२॥
तीन मिथ्यात वेद पुन तीन, मोह तनी रचना परवीन।
इन जीतै उपजै वैराग, तह मन दंड तनौ है त्याग ॥१८३॥
वचन दंडके सात हि भेद, अनृत अरु उपघात निवेद।
पिशुन परोप गनौ अभिसन्न, पर वार्तिक अर होइ हसन्न ॥१८४॥
झूठ कथन तहँ अनृत विख्यात, मारण कहै वहै उपघात।
कपट प्रपंच पिशुनता जान, वचन कठोर परोप बखान ॥१८५॥
जहँ अपनी प्रभुता कहवावै, सो अभिसन्न नाम ठहरावै।
बात कहत सबको दुख होय, सो परवात कहै मुनि लोय ॥१८६॥
दया रहित जो कहिये बात, यह हसन्नताको उतपात।
इतनैं रहित गहै तप जबै, वचन दंड त्यागी मुनि तबै ॥१८७॥
काय दण्ड अब सात प्रकार, प्रान बद्ध चोरजति असार।
मैथुन परिग्रह आरम्भेव, ताड़न उग्र विषय दुख देव ॥१८८॥
प्रान बद्ध है जीव सँहार, चोर जती चोरे निरहार।

शील रहित है मैथुन नाम, परिग्रह बहुत जोरवौ दाम ॥१८९॥
बहु उद्यमको जहँ विस्तार, सो आरंभ तनों अधिकार।
यष्टि मुष्टि कर मारण लहै, ताडन अंग कहावै वहै ॥१९०॥
जो काहू डर पावै सही, तासौ कहि उपग्र विष यही।
इन विन जो तप साधै घनौ, कायदण्डका त्यागी भनौ ॥१९१॥
दुतिय असंयम सुनहु प्रवांन, त्रस रक्षा तैं रहित बखान।
सो ही तीन जोग[1] करि रंभ, सॅरंभ समारम्भ आरम्भ ॥१९२॥
जीववृद्धिको कारण जहां, सो सॅरम्भ कहावै तहां।
जीव वद्धको आयुध आन, समारंभ भासौ पहिचान ॥१९३॥
प्राणी जहां डारिये मार, सो आरम्भ भेद निरधार।
जब मन वरतैं ऐसे भाव, तहीं असंयमको ठहराव ॥१९४॥
संजम धारी समतावंत, आरति रौद्र निकन्दन संत।
श्रावक कर्म जु पहिलैं धरै, सो प्रायश्चित्त बल कर हरै ॥१९५॥
छहौं काल साधै थिर ध्यान, सो सामायिक वंत बखान।
द्वैविध संजमको प्रतिपाल, दयावंत इन्द्रिय नहि चाल ॥१९६॥
जहँ त्रस थावरको संहार, भयौ प्रमादतनौं अधिकार।
अथवा भयो होय व्रत भंग, करै विलाप धरै दुख अंग ॥१९७॥
ता निमित्त सँजम प्रतिपाल, अपने व्रतकी करै सँभाल।
बहुरि न जीव विराधै सोय, यह छेदोपस्थापन होय ॥१९८॥
तीस वरपकौ मुनिवर राय, सेवै तीर्थंकरके पाय।
नवमौ पूरव प्रत्याख्यान, रहित प्रमाद पढ़ै बुधवान ॥१९९॥

१—जोड़ना—इकट्ठा करना।

निरविद उतपति काल प्रवांन, जनम जान अरु देश बखान।
द्रव्य स्वभाव जीव गुण जितै, सो मुनि भेद बतावै तितै ॥२००॥
कर्म निर्जरा बहु विध करै, घोर वीर तपको आदरै।
त्रय संध्याके अन्तर चलै, द्वै गाऊ मारग दल मलै ॥२०१॥
पंच समितिको पालनहार, तीन गुप्तिमें करै विहार।
हिंसा रहित तजैं दुरबुद्ध, यह कहिये परिहारविशुद्ध ॥२०२॥
सूक्षम थूल जीव प्रतिपाल, तप अखंड धारी गुनमाल।
दरशन ज्ञान समीर चलाय, प्रंजुलित करी अग्नि शुभ जाय ॥२०३॥
कर्म रूप सब ईंधन जितौ, दयौ जराय मुनीश्वर तितौ।
ध्यान कुठारहि करसें ल्याय, तरु कषायको दियो ढहाय ॥२०४॥
सूक्षम रहौ मोहको जोर, ता क्षय कारन उद्यम ओर।
जहँ तप कर छीजै मुनि देह, सूक्ष्म सांपराय गुण एह ॥२०५॥
तप कर नाशै सकल कषाय, अंश मात्र कोऊ न दिखाय।
वीतराग चारित रस पियें, आतम अनुभव वरतैं हिये ॥२०६॥
जथाख्यात ताहीको नाम, सातों संजम ये गुणधाम।
जीव धरैं ये सातों रूप, तप संजमधारी जु अनूप ॥२०७॥

दर्शनमार्गणा।

चक्षु अचक्षु अवधि जुत तीन, केवल दर्शन चौथौ लीन।
ये ही चारों दर्शन जान, दरशै वस्तु लोक अस्थान ॥२०८॥

१—गव्यूति—'गव्यूति' का अर्थ कोशकारोंने २ कोश लिखा है। परन्तु यहांपर एक कोशमे विवक्षित किया गया है। २—प्रज्वलित।

लेश्यामार्गणा—

प्रथम कृष्ण धर नरक लहंत, दूजै नील हि थावर जंत ।
तीजै कापोत हि तिरजंच, चौथे पीत मनुष पद संच ॥२०९॥
पंचम पद्म स्वर्गगति लहै, षष्ठम शुकल भाव शिव गहै ।
ये छह लेश्या भेद विचार, सुनहु भव्य मिथ्या निरवार ॥२१०॥
आरत रौद्र न त्यागै कदा, धर्म विवर्जित क्रोधी सदा ।
दया रहित परपंची होय, लेश्या कृष्ण जास अग जोय ॥२११॥
मंदबुद्धि परमादी गुनौ, निडर वचन बौलै बहु घनौ ।
है परपंथी कामी घोर, लेश्या नील तासकी ओर ॥२१२॥
शोक करै अरु दुष्ट स्वभाव, परनिन्द्य निज कहै बढ़ाव ।
इच्छा युद्ध कुगुरुकी सेव, यह कापोत धनीको भेव ॥२१३॥
विद्यावंत दया परिणाम, कार्य अकार्य विचारत जाम ।
लाभ अलाभ समझ आचरै, लेश्या पीत जहां उर धरै ॥२१४॥
क्षमावंत दाता बुधवान, करै देव पूजा थुति ध्यान ।
सब जीवन सों समताभाव, यही पद्मलेश्या ठहराव ॥२१५॥
राग द्वेष निज डारे खोय, निद्रा शोक न दीसै कोय ।
उत्तम भाव धरै जब जीव, ता, सौ लेश्या शुक्ल कहीव ॥२१६॥
सुन इनको दृष्टान्त विचार, गये पुरुष षट बनहि मंझार ।
तहां आम्रतरु फलजुत देख, बैठे निर्मल छाया पेख ॥२१७॥
फल भक्षणकी इच्छा धार, बोलै निज निज भाव सम्हार ।
कृष्ण धनी कहि जर काटिये, पीछे याके फल बांटिये ॥२१८॥
तब बोल्यौ जाके अंग नील, पेडो काटत करो न ढील ।

अब कापोत धनी इम कही, याकी डौंरे काटो सही ॥२१९॥
कहै पीत पति ऐसी भेव, कोंचा कोंचा तोर जु लेव।
बोल्यौ पद्म धनी यह बात, पके पके फल टोरो भ्रात ॥२२०॥
कहै शुक्लचारी यह गाथ, गिरे लेउ, मतै लोवौ हाथ।
धर षटलेश्या संग अनूप, नाचत फिरै जीव चिद्रूप ॥२२१॥

भव्यमार्गणा—

भव्य अभव्य राशि द्वै जान, इनके अब सुन भेद बखान।
गुरु श्रुत देव तनी जु प्रतीति, जाके उर श्रद्धाकी रीति ॥२२२॥
आर्जव परिणामी बुधवान, अरु गनतीमें आपौ जान।
जो कर्मनि वश जाय निगोद, फिर निकसै निज वचन विनोद ॥२२३
काललब्धितैं शिवपुर जाय, भव्य राशिको यही स्वभाय।
जहां न गुरुके वचन प्रतीत, गंहिल रूप नंहि इंद्रिय जीत ॥२२४॥
तप बल जो ग्रीवक लौं जाय, फिर वहँतैं निगोद ठहराय।
सदा काल जग भ्रमतौ रहै, अभवि राशि याही सौं कहैं ॥२२५॥

सम्यक्त्वमार्गणा—

*प्रथम मिथ्यात दुतिय सासान, तीजो सम्यक मिच्छ बखान।
उपशम वेदक क्षायिक एह, तिनको कथन सुनो धर नेह ॥२२६॥

सम्यक्त्वके ९ भेद—

दोहा—क्षय उपशम वरतै त्रिविध, वेदक चार प्रकार।
क्षायिक उपशम जुगल जुत, नवविध समकित धार ॥२२७॥

१—मत तोडो। * सम्यक्त्व मार्गणाके ६ भेद है—१ मिथ्यात्व, २ सासादनसम्यग्दृष्टि, ३ सम्यङ्मिथ्यात्व, ४ औपशमिक सम्यग्दर्शन, ५ क्षायिक सम्यग्दर्शन और क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन।

(१) चार खिपइ त्रय उपशमइ, (२) पन खय उपशम दोय।
(३) क्षय षट उपशम एक जो, क्षय उपशम त्रिक होय ॥२२८॥
(४) जहां चार प्रकृतिन खिपय, दो उपशम इक वेद।
क्षय उपशम वेदक दशा, तास प्रथम यह भेद ॥२२९॥
(५) पंच खिपइ इक उपशमइ, एक वेदै जिहि ठौर।
सो क्षय इक उपवेदकी, दशा दुतिय यह और ॥२३०॥
(६) क्षय षट वेदै एक जो, क्षायिक वेदक जोय।
(७) षट उपशम इक प्रकृति विदि, उपशम वेदक होय ॥२३१॥
(८) षट उपशम या खिपइ जो, उपशम क्षायिक सोय।
सातम प्रकृति उदोत सौं, वेदक समकित होय ॥२३२॥
खय उपशम, वेदक, खइय, उपशम, समकित चार।
तीन, चार, इक, एक, मिले, सब नव भेद विचार ॥२३३॥
सोरठा—अब निश्चै व्यौहार, अरु सामान्य विशेषता।
कह्यौ चार परकार, महिमा समकित रतनकी ॥२३४॥

उक्तं च इकतीसा—

मिथ्यामति गांठ भेद, जागी निर्मल सुजोति।
जोगसौं अतीत सो तौ निश्चय प्रमानिये ॥
वहै दुइ दशा सौ कहावे, जोग मुद्रा धरै।
मति श्रुत ज्ञान भेद व्यवहार मानिये ॥
चेतना चिहन पहिचान आपा पर वेदै।
पौरुष अलप तातैं सामान्य बखानिये ॥
करै भेदाभेदको विचार विसतार रूप।
हेय ज्ञेय उपादेय सो विशेष जानिये ॥

संज्ञीमार्गणा—

चौपाई।

सैनी मनकर सहित बखान, दुतिय असैनी अमना जान।
इहि विध धरै आतमा रूप, करै जगतमें नृत्य अनूप ॥२३५॥

आहारमार्गणा—

आहारक जहँ भोजन धार, अनहारक जहँ प्रकृत अहार।
जो लौं यातैं छूटत नाहि, तौलौं भ्रमण जगतके मांहि ॥२३६॥

गुणस्थान निरूपण—

प्रथम मिथ्यात ससादन जोय, मिश्र बहुर अव्रत पुनि होय।
देशवृत्त पंचम गुणथान, षष्ठ प्रमत्त नाम तिहि जान ॥२३७॥
अप्रमत्त सातम जानिये, अठम अपूर्वकरण मानिये।
अनिवृत्तिकरण नवम पुन सोय, सूक्षम सांपराय दश जोय ॥२३८॥
गेरम है उपशांत कषाय, क्षीण मोह द्वादश गुण थाय।
तेरम कह्यौ सजोग केवली, पुनि अजोग चौदहरौं बली ॥२३९॥

दोहा—वरनै सब गुण थानके, नाम चतुर्दश सार।
अब वरनौं मिथ्यातके, भेद पंच परकार ॥२४०॥
एकान्त हि विपरीत पुन, तीजो विनय विख्यात।
संशय अरु अज्ञान जुत, ए पांचौं मिथ्यात ॥२४१॥

चौपाई।

कर एकांत पक्ष मन सोय, नय अनेकको भेद न कोय।
मृषावंत जे दक्ष कहाय, प्रथम मिथ्यात हि यही सुभाय ॥२४२॥
श्री जिन आगम वाणी सही, गणधर देव प्रगट जग कही।
तिहि उथापि नूतन रचि कहै, ते विपरीती जग दुख लहैं ॥२४३॥

जे नर मन विकलपको गहैं, तत्त्व अरथ नहिं श्रद्धा लहै।
मनमें संशय राखैं घनौ, ते संशय मिथ्याती भनौ ॥२४४॥

निज सुख दुख कारण जे जीव, परको पीड़ा करत अतीव।
अपने स्वारथ औरहि हनैं, ते अज्ञान मिथ्याती भनै ॥२४५॥

सादि मिथ्यादृष्टि—

दोहा—जो मिथ्यातम उपशमै, जिन मारग रत होय।
फिर आवै मिथ्यात्वमें, सादि मिथ्याती जोय ॥२४६॥

अनादि मिथ्यादृष्टि—

दोहा—उपशम भाव नहीं भये, भ्रम्यौ काल अनन्त।
सो अनादि मिथ्यातमें, ममता मगन रहंत ॥२४७॥

सासादन गुणस्थान—

चौपाई।

चढ़ै छठै लौं प्रानी जाय, उपशम चल फिर उदय कराय।
एक समय छह आवलि रहै, तहँ तैं गिर मिथ्यात हि गहै ॥२४८॥

मिश्र गुणस्थान—

*दरशन मोह प्रकृति त्रय सार, अनंतानुबंधीकी चार।
जब ए उपशम कर समभाव, तबहि मिश्रगुणथान लखावै ॥२४९॥

---

* मिश्र गुणस्थानका यह स्वरूप जैन शास्त्रोंके विरुद्ध लिखा गया है।

१—जीवकाण्डमे मिश्र गुणस्थानका स्वरूप इसप्रकार बतलाया है—

सम्मामिच्छुदयेण य जत्ततरसव्वघादिकज्जेण।
णय सम्म मिच्छपिय सम्मिस्सो होदिपरिणामो ॥ २१ ॥

अर्थ—जिमका प्रति-पक्षी आत्माके गुणको सर्वथा घातनेका कार्य

अव्रत सम्यग्दृष्टि—

समकित तनों जहां उद्योत, सात प्रकृतिको नाश जु होत।
व्रत सों रहित भाव उर शुद्ध, सो अव्रत गुणथानक बुद्ध ॥२५०॥

देशव्रत—

त्रेपन विधि व्रत श्रावक तनैं, अरु अखाद्य त्यागी तिहि भनैं।
है गृहस्थ पर मुनिहि समान, देशव्रती कहिये गुणथान ॥२५१॥

प्रमत्तसंयत गुणस्थान—

दोहा—पंच प्रमाद दशा धरै, गुण अट्ठाइस धाम।
थवरकल्प जिनकल्प जुत, पुलाकादि सुन नाम ॥२५२॥
धर्मराग विकथा उच्चरै, निद्रा विषय कषायन धरैं।
ए कहिये पांचों परमाद, इन जुत मुनिवर सहित विषाद॥२५३
पंच महाव्रत पालनहार, पंच समिति गुण साधन धार।
तपकर पांचों इंद्रिय जीत, जाने षट आवश्यक रीत ॥२५४॥
प्रासुक भूमि करै अस्थान, लुञ्चै केश न करै सनान।
वसन रहित दांतौन न करै, ठांडे ग्रास अहार जु धरै ॥२५५॥
एक वेर लघु भोजन करै, ए अठवीस मूलगुण धरै।
मुनिके संग शिष्य जो रहैं, थवरकल्प याही सौं कहैं ॥२५६।
एकाकी मुनि परम प्रधान, तपोधनी जिनकल्पी जान।
पुलाक वकुश कुशील निरग्रंथ, अस्नातक जुत सुन पंथ ॥२५७॥

दूसरी सर्वघाती प्रकृतियोंसे विलक्षण जातिका है, उस जात्यतर सर्वघाति सर्व घाति सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिके उदयसे केवल सम्यक्त्वरूप या मिथ्यात्व रूप परिणाम न होकर जो मिश्ररूप परिणाम होता है उसको तीसरा मिश्र गुणस्थान कहते है। —पं० खूबचन्दजो (टीका)।

जैथा धानके फूला जान, सो पुलाक कहिये परवांन।
धान तुषादिक सब तामाहि, बकुश परिग्रह छूटौ नांहि ॥२५८॥
ग्रही शिष्य राखै निज पास, बगर समान कुशील प्रकाश।
जो निरग्रन्थ तपस्वी घोर, ज्यों चॉवर छर निर्मल जोर ॥२५९॥
जहँ तुष मात्र परिग्रह नहीं, एकाकी वन विहरत मही।
सो अस्नातक मुनिवर संत, रांधे तंदुल सम जु गतंत ॥२६०॥
सहैं परीषह समतावान, है प्रमत्त नामा गुणथान।
जतिकी क्रिया सकल या मांहि, मुनिपद सहित प्रमाद खिपाहि॥२६१॥

अप्रमत्तसंयत गुणस्थान—

जहां अहार निहार न होय, पंच प्रमाद न दीसै कोय।
धर्म ध्यान थिरता अधिकाय, अप्रमत्त गुणथान कहाय ॥२६२॥

१—पुलाकादि मुनियोंके लक्षण अन्य ग्रन्थोमे इस प्रकार बतलाये है—

पुलाक—जो उत्तरगुणोकी भावनासे रहित है तथा जिनके किसी क्षेत्र या कालमे मूलगुणोंमे भी बाधा होजावे वे पुलाक—(तुच्छ धान्यके समान) मुनि कहलाते है।

बकुश—जिनके मूलगुणोंमे कभी बाधा नही आती तथा जो शरीर और उपकरणोंकी विभूषाको पसन्द करते है और शिष्य वगैरह परिवारके इकट्ठे करनेमे लीन रहते है उन्हे बकुश मुनि कहते हैं।

प्रतिसेवन कुशील—जिनके उत्तरगुणोमे कदाचित् बाधा आती हो वे प्रतिसेवना कुशील हैं।

कषाय कुशील—जिन्होने अन्य कषायोंके उदयको जीत लिया है परन्तु सज्वलन कषायके उदयके वशीभूत है वे कषाय कुशील है।

निर्ग्रन्थ—जिनके मोहनीय कर्मका अभाव होगया है तथा केवल ज्ञान प्राप्त करनेके सन्मुख है वे निर्ग्रन्थ कहलाते है।

स्नातक—घातिय कर्मोसे रहित तेरहवे और चौदहवे गुणस्थानवर्ती अरहन्त परमेष्ठी स्नातक कहलाते है।

अपूर्वकरण गुणस्थान—

कछू मोह उपशम जहँ करै, अथवा किंचित क्षय कर धरै।
हौंहि भये कबहूं न प्रैनाम, अपूर्वकरण जानौं गुणधाम ॥२६३

अनिवृत्तिकरण गुणस्थान—

भावतनी थिरता अति होय, चञ्चलता नहिं दीसै कोय।
जहां न उलटै अधिको भाव, सो अनिवृत्तिकरण गुण थाव ॥२६४॥

सूक्ष्मसांपराय गुणस्थान—

सूक्षम लोभ दशा जहँ होय, शिव अभिलाषा छोड़ी सोय।
ऐसे जहां होहिं परिणाम, सूक्षम सांपरायके धाम ॥२६५॥

उपशांतमोह गुणस्थान—

जथाख्यात चारित्र उदोत. मोह वहां लौं उपशम होत।
तहँ तैं गिरै करै गुण हान, यह उपशांतमोह गुणथान ॥२६६॥

क्षीणमोह गुणस्थान—

जथाख्यात चारितके जोर, ताकर मोह क्षीण घनघोर।
केवल ऋद्धि निकट जब आवै, क्षीणमोह गुणथान कहावै ॥२६७॥

सयोगकेवली गुणस्थान—

जहां घातियनकी भई हान. दोष अठारह रहित बखान।
अनंत चतुष्टय प्रगटै सही, संजोगी गुणथानक कही ॥२६८॥

अयोगकेवली गुणस्थान—

पूरन जथाख्यात जहँ होय, कर्म अघाती दीनै खोय।
पंच लघुक्षर तनैं प्रमाण, प्रगट अजोगी यह गुणथाण ॥२६९॥

१—परिणाम।

जीवके भेद—

दोहा—बहिरातम प्रथमहि कह्यौ, अन्तर आतम दुतीय।
परमातम तीजौ सुनौ, त्रिविध भेद सब जीव ॥२७०॥

बहिरात्माका लक्षण—

चौपाई।

तत्व अतत्व जान सब एक, गुण निर्गुणको नाहि विवेक।
सुगुरु कुगुरुको भेद न करै, धर्म पाप मन इक सम धरै ॥२७१॥
शुभ अरु अशुभ बराबर लेख, शास्त्र अशास्त्र एक ही पेख।
देव अदेव विचारै नाहि, हेयाहेय न तन मन मांहि ॥२७२॥
हालाहल पीवत सुख चहै, महा मूढ़ मिथ्यातम गहै।
जड़ चेतन जानै सम रूप, सो बहिरातम दुर्गति कूप ॥२७३॥

अन्तरात्माका लक्षण—

जो जिन सूत्र विवेकी होय, सकल विचार वेदंता[1] सोय।
तत्त्व अतत्त्व शुभाशुभ जानै, देव अदेव भेद कर मानै ॥२७४॥
सत्यासत्य पुण्य अरु पाप, इनको भिन्न लखै परताप।
मुकति कुगति मारग दो पक्ष, जानै सो अंतरातम दक्ष ॥२७५॥
अनरथ सकल जगतमें जेह, हालाहल विष जानै तेह।
इनको जब जिय धोय बहावे, अन्तरात्म तब प्रगट कहावै ॥२७६॥
कर्म हतनको उद्यम करै, रागद्वेष इन्द्रिय परिहरै।
सिद्ध समान ध्यान तन धार, आभ्यंतर निर्मल कर सार ॥२७७॥
आतम द्रव्य देह कर भिन्न, जानै इहि विध भेद रवन्न।
जथा कसौटी सोने कसै, तैसे अन्तरातमा लसै ॥२७८॥

१—जानता—जानकार।

सुख सरवारथसिद्धि प्रजंत, फिर पावै पद श्री अरहंत।
अन्तरातमा दृढ़ जब होय, तब परमातमको अवलोय ॥२७९॥

परमात्माका लक्षण—

परमात्मा है दो विध जेह, प्रथम सकल पुनि निष्कल तेह।
दिव्य देह सो सकल बखान, निष्कल देह विवर्जित जान ।२८०॥

सकल परमात्माका लक्षण—

घाति कर्म जिन कीनै चूर, नव केवललब्धी भरपूर।
नर सुर सब सेवैं तिन पांय, अरु ध्यावैं गुण चित्त लगाय ॥२८१॥
सब हित कहैं धर्म उपदेश, भव्यनिको तारत परमेश।
दिव्यौदारिक तन थिर थाय, अरु अतिशय मंडित है आय ॥२८२॥
धर्मामृत वरषावत सोय, भव्यनको सुख करता होय।
ताकर स्वर्ग मुक्ति फल लहै, प्रथम सकल परमातम कहै ॥२८३॥

निष्कल परमात्माका लक्षण—

अष्टकर्म निरमुक्त प्रधान, मूरतिहीन ज्ञान गुण खान।
तीन जगत शिर निवसैं सदा, महा अष्टगुण भूषित तदा ॥२८४॥
तीन लोकपति प्रनमै पाय, मुक्तितनो कारण उर लाय।
जग चूडामणि निर्मल नाम, निष्कल परमातम सुखधाम ॥२८५॥

बहिरातमा आदिका गुणस्थानोंमे विभाग—

अब बहिरातम उतकिठ जान, गुणस्थान प्रनमौ तिहि थान।
मध्यम लहै दुतिय गुणथान, अरु जघन्य तीजौ परमान ॥२८६॥
जो जघन्य अन्तर आतमा, गुणस्थान चोथौ विहरमा।
मध्यमको सातम लौं वास, द्वादश लौं उत्कृष्टी भास ॥२८७॥

परमातम गुणथानक दोय, तेरम चौदम जानो सोय।
गुणस्थान तज शिवपद रमै, परम सिद्ध तिनके पद नमैं ॥२८८॥

गुणस्थानोंका समय निरूपण—

दोहा—अष्टमतैं द्वादशम लौं, अरु तीजे परवांन।
अन्तमुहूरत थिति सबै, इन आठों गुणथान ॥२८९॥
चतुरथ सागर तीस त्रय, पञ्चम तेरम सृष्ट।
कोटिपूर्व वसु वर्ष घट, प्रथम अनादि अनिष्ट ॥२९०॥
सासादन गुणथानकी, षट आवलि परवांन।
पंच लघु क्षर[1] जानिये, तिथि चौदम गुणथान ॥२९१॥

अथ जीवसमास निरूपण—

दोहा—सबै जीव संसारमें, चौदह भेद प्रमान।
ताकौ कछु विवरण लिखौं, भाख्यौ श्री भगवान् ॥२९२॥

चौपाई।

जगमें जिये जीव एक लौ, प्रथम भेद यह जानौ भलो।
थावर अरु त्रस कहे बखान, द्वितिय भेद यह जान प्रधान ॥२९३॥
थावर अरु विकलत्रय होय, पंचेन्द्रीय तृतीय वह जोय।
चारौं गतिमें रुलै सदीव, चौथो भेद जानिये जीव ॥२९४॥[2]
एकेन्द्रिय दो इन्द्रिय जान, तेइन्द्रिय चतुरिन्द्रिय मान।
पंचेन्द्रिय हैं जग विख्यात, पंचम भेद सुनो यह भ्रात ॥२९५॥
थावर पंच एक त्रस जान, षटकायी यह भेद बखान।
थावर पंच विकल इक सोय, पंचेन्द्रिय जुत सातौं होय ॥२९६॥

१—अ, इ, उ, ऋ, लृ।
२—यहां चतुर्गतिकी अपेक्षा जीवके चार भेद बतलाये है।

थावर पंच विकल इक ठाठ, सैनी और असैनी आठ।
पांचौं थावर विकल सु तीन, पंचेन्द्रिय जुत नव गन लीन ॥२९७॥
पृथ्वी चौक वनस्पति दोय, प्रत्येक हि साधारण सोय।
तीन विकल पंचेन्द्रिय एक, ए दश भेद कहे जग टेक ॥२९८॥
थावर पंच सूक्ष्म अरु थूल, त्रस जुत ए एकादश मूल।
सो दश थावर विकल जु एक, पंचेन्द्रिय मिल द्वादश भेक ॥२९९॥
वे ही विधि थावर दश जान, अरु विकलत्रय एक वखान।
सँज्ञि असँज्ञि पंचेन्द्रिय सोय, तेरह भेद प्रगट ये होय ॥३००॥
एकेन्द्रिय सूक्षम अरु थूल, तीन विकल पंचेन्द्रिय मूल।
संज्ञि असज्ञी जुत सब सात, पैरजापत अप्रैजापत गात ॥३०१॥
यह विध चौदह भेद प्रमान, सब संक्षेप कहै गुणथान।
और भेद अब सुनिये मित्त, जिम नाशे संशय भवि चित्त ॥३०२॥
दोहा—पाँचौं थावर विकलत्रय, अरु निगोद द्वय जान।
नर सुर नारक पशु सहित, चौदह भूत जु ठान ॥३०३॥

चौपाइ।

अब उनवीस जु सुनहु समास, पृथिवी चौक निगोद दु भास।
ये छह भेद सूक्ष्म अरु थूल, ताके बारह विध गुण मूल ॥३०४॥
वनस्पती द्वै भेद प्रमान, सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जान।
विकलत्रय भाषहि विध तीन, पंचेन्द्रिय सँमनो मनँहीन ॥३०५॥
ए उनीस परजापत जान, फिर अपराजापत जु वखान।
कहै अलब्धि प्रजापत सोय, सब समास संतावन जोय ॥३०६॥

१—पर्याप्तक, २—अपर्याप्तक, ३—अन्य प्रकारसे १४ भेद बताये है, ४—सैनी, ५—असैनी।

दोहा–अब समास अंठानवै, कहौं जथा प्रति देख।
विंयालीस थावर सबै, सुर दो नारक लेख ॥३०७॥
विकलत्रय नव भेद गन, नव मानुष परजंत।
तिरजंचहि चौंतीस भन, लिख्यो तिनहि विरतंत ॥३०८॥

चौपाई।

पृथ्वी चौक निगोद जु दोय, सूक्षम बादर बारह होय।
वनस्पती द्वै भेद बखान, सप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित जान ॥३०९॥
चौदा परजापत ये लहै, अप्रजापत चौदा ही कहै।
चौदा अलधि प्रजापत एह, थावर कहै वियालिस तेह ॥३१०॥
स्वर्ग नारकी दोय प्रकार, प्रजापते अप्रजापत सार।
द्वै इन्द्रिय तेइन्द्रिय जान, चतुरिन्द्रिय विकलत्रय मान ॥३११॥
प्रजापते अप्रजापत सोय, अलधि प्रजापत ए नव होय।
अब तिरजंच सुनौ चौंतीस, पंचेन्द्रिय जे कहै जिनीश ॥३१२॥
आरजखण्डी गर्भज तीन, जल थल नभचर ए सुन लीन।
सैनी और असैनी तेह, परजापत अप्रजापत एह ॥३१३॥
सन्मूर्च्छन थल जल नभ जान, सैनी और असैनी ठान।
परजापते अपरजापते, अरु अलब्धि हैं ते परमिते ॥३१४॥
दोय थोक ये तीस बखान, गर्भज सन्मूर्च्छनके जान।
भोगभूमिया दोय प्रकार, थलचर नभचर गर्भज धार ॥३१५॥
परजापत अप्रजापत कहै, चार मिलै सब चौंतिस लहै।
अब समास नव मानुष गनौ, भोगभूमिया प्रथमहि भनौ ॥३१६॥

१–अलब्ध्य पर्याप्तक।

दुतिय कुभोगभूमि नर जोय, म्लेच्छ खंडके तीजा होय।
परजापत तीनहि पहिचान, अप्रजापति कौ कहौ प्रमान ॥३१७॥
आरजखंड मनुष परमिते, अलधि सहित त्रय परजापते।
ए ही नव विधि मानुष जान, सब मिलि अंठानवहि बखान ॥३१८॥
दोहा—अब समास सुन अवर विधि, भाषे गोमटसार।
तिनहि भेद सब बग्नहू, पंट उत्तर सय चार ॥३१९॥
सोरठा—पशु इकसै तेईस, नरकमांहि अंठानवै।
नर तेइस विधि दीस, शतक बहत्तर देवगति ॥ ३२० ॥

पशुगतिके १२३ भेदोंका वर्णन—
चौपाई।

पृथ्वीकाय दुभेद बखान, कोमल माटी कठिन परवान।
पानी पावक पवन जु होय, वनस्पती साधारण दोय ॥३२१॥
नित्य निगोद इतर सो जान, सबै भए सातौं [1]परवान।
सूक्षम थूल चतुर्दश एह, अब प्रत्येक वनस्पति केह ॥३२२॥
सुप्रतिष्ठित अप्रतिष्ठित दोय, ताके भेद सुणो बुध लोय।
दूब वेल अरु छोटा वृक्ष, तरुवर और कंद परतक्ष ॥३२३॥
पंच भेद सु प्रतिष्ठ बखान, यही रीत अप्रतिष्ठ सु जान।
यहै प्रत्येक वनस्पति वास, सबै भये दश भेद समास ॥३२४॥
दोहा—जब इन मांहि निगोद है, तब सुप्रतिष्ठित जान।
जाहि निगोद न पाइये, सो अप्रतिष्ठ कहान ॥ ३२५ ॥
जाति दशौं परतेककी, वे चौदह चौबीस।
[2]परज [3]अंपर्जे अलब्धिके, सबै समान कहीस ॥ ३२६ ॥

१—४०६ चारसौछः, २—पर्याप्तक, ३—अपर्याप्तक।

चौपाई।

पर्ज अपर्ज अलब्ध समान, चोदा अरु चौबीस बखान।
ए नव भेद सबै परनए, बहतर मिलि इक्यासी भए ॥३२७॥

कम्मभूमि तिरजंच विख्यात, गर्भज संमूच्छन दो जात।
गर्भज परज अपर्ज प्रवीन, अलबध दो सन्मूच्छन तीन ॥३२८॥

सैनी पंच असैनी पंच, दसौं भेद जलचर तिरजंच।
दसौं भेद थलचर पशुकाय, दसौं व्योमचर उडैं सुभाय ॥३२९॥

ए सब तीस कर्म भू ठौर, भोगभूमि त्रयके अब और।
थलचर नभचर सौ छह ठये, परज अपर्ज दु[1]दश भये ॥३३०॥

सबहि चियालिस कहै विचार, वे इक्यासी प्रथमहि धार।
इकसै ऊपर तेइस जान, पशुगतिमें सब यहै प्रमान ॥३३१॥

दोहा-नरक सातके जानिये, पटल सकल उनचास।
परज अपर्ज अठानवे, जीव समास प्रकाश ॥३३२॥

चौपाई।

भोगभूमिया तीन विधान, उत्तम मध्यम जघन बखान।
चौथे कुभोग भूमि नर थान, पांचौं म्लेच्छ खंड पहिचान ॥३३३॥

परज अपर्ज दसौं ठहराय, आरज खंड सुनौ अब भाय।
परज अपर्ज अलब्धि जु तीन, ए तेरह नरगतिमें लीन ॥३३४॥

दोहा—गर्भज पर्ज अपर्ज दुइ, सन्मूर्छन नहि लब्ध।
तिन उतपति भविजन सुनौ, यह संसार भवाब्ध ॥३३५॥

१—बारह।

अडिल्ल ।

नार जोनि कुच नाभि कांखमें पाइये ।
नर नारीके मूत्र मांहि ठहराइये ॥
मुरदामें सन्मूर्च्छन सैनी जीयरा ।
अलवधि परजापते दयाधर जीयरा ॥ ३३६ ॥

दोहा—त्रेशठ पटल जु स्वर्गके, भवनपती दश जान ।
व्यन्तर आठ प्रकारके, ज्योतिष पंच प्रमान ॥३३७॥
भये छियासी थोक सब, पर्ज अपर्ज गनेह ।
शतक वहत्तर सुर असुर, जीवसमास भनेह ॥३३८॥
इकसै छ्यासी पर्ज नित, तितनै अपरज सोय ।
अलबध जिय चौतीस है, चउसय षट सब होय ॥३३९॥*
नियत एक चेतनमई, भेद सरव व्यवहार ।
निश्चय अरु व्यवहारको, जाननहारा सार ॥३४०॥

---

* सुद्धखर कुजलतेवा णिच्च चदुग्गदि णिगोद थूल्दिरा ।
पदिठिदर पच्च पत्तिय विपलतिदुण्णा अपुण्ण दुगा ॥ १ ॥
इगि विगले इगिसीदी असण्णि सण्णिगय जलथलखगाण ।
गब्भभवे सम्मुच्छे दुतिगतिभोगथल खेचरे दो दो ॥ २ ॥
अज्ज समुच्छिगि गब्भे मलेच्छभोगतियकुणर छपणतीससये ।
सुरणिरये दो दो इदि जीवसमासा हु छहिय चारि सय ॥ ३ ॥

—गोम्मटसार जीवकाण्ड ।

(बडी टीका २०१ पृष्ठ)

पर्याप्ति प्ररूपण—

चौपाई।

*परजापति षटके कहि नाम, आहार प्रथम छायो अभिराम।
पुनि शरीर धारै जग जीव, दूजी परजापति धरि लीव ॥३४१॥
फिर इन्द्रियको भेद जु लहै, तीजी परजापति संग्रहै।
श्वास उस्वास धरै पुन तहां, चौथी परजापति सो गहा ॥३४२॥
मन पावै जब जीव सुजान, परजापति पंचम परवान।
भाषा लहि भरपूर जु सोय, छट्ठम परजापति तब होय ॥३४३॥
ए परजापति कही मुनीश, इन विन अपरज जीव गनीश।
जो परजापति पाय विनाश, सो अलब्ध परजापत भास ॥३४४॥

प्राण प्ररूपण—

इन्द्रिय पांच रु मन वच काय, श्वास उस्वास जु बल पुन आय।
इन ही सौं कहिये दश प्राण, जानौ जीव तनौं संस्थाण। ३४५॥

संज्ञा प्ररूपण—

अब सुन संज्ञा चार प्रकार, भय मैथुन परिग्रह आहार।
इनमें जीव रह्यौ है भूल, आतम शक्ति विना जग तूल ॥३४६॥

---

* आहार सरीरिंदिय पज्जत्ती, आणपाणभासमणो।
चत्तारि पच छप्पि य, ए इंदिय वियल सण्णीण ॥ ११८ ॥
—जीवकाण्ड।

'आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन ये ६ पर्याप्तियां हैं। इनमेसे एकेन्द्रियके भाषा और मनके विना ४, द्वीन्द्रियसे असैनी पचेन्द्रिय तकके मनके विना ६ और सैनी पचेन्द्रियके छहों पर्याप्तियां होती है।

उपयोग प्ररूपण—

आठ ज्ञान अरु दर्शन चार, ए बारह उपयोग विचार।
सो पूरब बरन्यौ सब भेद, यह उपयोग थान बिन खेद ॥३४७॥

अथ ध्यान निरूपण—

आर्तध्यान।

आरत रौद्र धर्म अरु शुक्ल, चार ध्यान ये नाम मुल्क।
तिनहीके सब सोरह डार, अब सुन आर्तध्यान विधि चार ॥३४८॥
भली वस्तुको होय वियोग, इष्टवियोगी प्रथम नियोग।
सदा विकलतामें मन रहै, दुतिय अनिष्ट संयोगी यहै ॥३४९॥
पीडा चिंतन तीजौ जान, दुःख विलाप करै दुर ध्यान।
अगलौ सोचत सोचत मरै, निदान बंध चौथौ संचरै ॥३५०॥

रौद्रध्यान।

रुद्रध्यान अब सुनहु जु मित्त, चार अङ्ग ताके सुन चित्त।
हिंसा करत धरै आनन्द, हिंसानन्दी प्रथम कुबन्ध ॥३५१॥
मृषानन्द दूजौ अवलोय, बोलत झूठ सुखी बहु होय।
चोरी साधन मनधर प्रीत, चौर्यानंद तृतीय अनीत ॥३५२॥
सेवत विषय हुलासी होय, [1]बंभ नंद चोथौ यह होय।
अब सुन धर्मध्यानके चार, एक एकतैं सुख अधिकार ॥३५३॥

धर्मध्यान—

केवल उक्त जीन सरदहै, आज्ञाविचय स्वर्गसुख लहै।
[अ] पाय विचय दूजौ गुणखान, कर्मनाश उद्यम अभिधान ॥३५४॥

१—अन्य शास्त्रोंमे चौथा रौद्रध्यान परिग्रहानन्दी बतलाया है।

पहलै कर्म उदय पहिचान, [अ] पाक विचय तीजौ गुणखान ।
तीन लोक नर आकृति मान, संस्थानक चौथौ यह ध्यान ॥३५५॥

शुक्लध्यान—

शुक्लध्यान चारों पद कहै, तहां मोहकी प्रीति न रहै ।
जोगारूढ़ पढ़ै सिद्धान्त, आतम गुण निर्णवारै संत ॥३५६॥
उपशम इक श्रेणी विसराम, प्रथम वितर्क आदि पद नाम ।
उपशम छोड़ क्षपक चढ़ि जाय, लोकालोक प्रकाश कराय ॥३५७॥
प्रकृति तिरेशठ नाश नहीं, बांकी रहीं पचासी तहीं ।
प्रगट्यौ केवल गुण उज्जरौ, अंग वितर्क नाम दूसरौ ॥३५८॥
जबहि बहत्तर प्रकृति नशाय, जिनवर आयु निकट रह जाय ।
है मन वच सूक्ष्म तिहि ठाम, सूक्ष्म क्रिया तृतिय पद नाम ॥३५९॥
अनंत चतुष्टयको परकाश, तेरह प्रकृति करी तब नाश ।
पंच लघुक्षर परिमित सबै, अष्ट कर्म डारै वमि तबै ॥३६०॥
तन तज भये मुक्तिके राय, व्युपरत क्रिया निवर्ति कहाय ।
चार ध्यानके सोरह पाय, सो वरनैं संक्षेप हि ल्याय ॥३६१॥

ध्यानका विशेष निरूपण—

अब इनके सुन भेदाभेद, मन निरोध आतम नहि खेद ।
प्रथम ध्यान पिण्डस्थ अनूप, सो वरनौं धर पांच सरूप ॥३६२॥
पृथिवी जल अरु अग्नि जु वायु, नभ ये पंच तत्त्व थिर लायु ।
जो मुनि ध्यान आराधन धरै, पद्मासन निश्चल चित करै ॥३६३॥

पृथ्वीतत्त्व निरूपण—

मध्यलोक जो गिरदाकार, क्षीर समुद तहँ करै विचार ।

१–निर्णय करै ।

शब्द तरंग रहित थिर रूप, तामें चितैं कमल अनूप ॥३६४॥
हेम वरण दल कर हजार, केशर अवर पराग जु सार।
जम्बुद्वीप सम कमल सु लसै, चित्त भ्रमर ता ऊपर वसै ॥३६५॥
कमल कर्णिका चिंते इती, मेरु ऊँचाईके परिमिती।
तापर इक सिंहासन थया, चन्द्रकान्ति मन सम किरणया ॥३६६॥
निज सरूप तापर बैठारि, शान्तरूप आकुलता टारि।
रागादिक परिणामहि त्याग, करन क्षपण हित अनुभव राग॥३६७॥
पृथ्वी तत्त्व तनी यह रीत, साधैं मुनिवर परम पवीत।
यह पिण्डस्थ प्रथम है अंग, मन समुद्र जल रहित तरंग ॥३६८॥

जलतत्त्व निरूपण—

कर मन अभ्रपटलको ध्यान, जिनसौं जलधर कहे प्रमांन।
वरसावन अतिभय रहि छाय, अरु प्रचण्ड दामिन पहिराय ॥३६९॥
धार नभहिं भू परिमित छयौ, इन्द्र धनुष जुत पावन जयौ।
पवनाकुल वरपत जलबिंद, मुक्ताफल वत उज्वल चन्द ॥३७०॥
जलधारा कबहूं अति घोर, कबहूं थूल महा वर जोर।
इहि विधि वरष रहै जल सदा, शुचि अमृत जल रनावै तदा ॥३७१॥
ता जल कर्म धूलि बहि जाय, अमृत शीतल इह विधि आय।
वरुण तत्त्व याही सौं कहै, कर्म ताप इमि शीतल लहै ॥३७२॥

-अग्नितत्त्व निरूपण—

चिंतै एक कमल दल सोल, नाभिस्थल दल करै कलोल।
दल दल प्रति स्वरमाला थपै, अ इ उ ऋ ऌ प्रमान जहां दिपै ॥३७३
सकल दलन पर फेरत जाय, अंतर रहित महा मुनिराय।

फिर या कमल तनी कर्णिका, अर्ह मंत्र करै गुण थका ॥३७४॥
रेफवंत कर दीपत सोइ, हैम् आवंत परम अवलोई।
ध्यान करत वा रेफ मझार, निकसै शिखा धूम निरधार ॥३७५॥
फिर फुलिङ्ग छूटै चामांहि, बहुरि अग्नि ज्वाला अधिकाय।
हृदयकमलको दहै सु आगि, अधो वदन सौ वसुदल लागि ॥३७६
वसुदल अष्टकर्म सो जान, जरि वरि भस्म होइ तिहि थान।
फिर वह अगनि बाहरी होइ, ताको रूप कौन अवलोइ ॥३७७॥
स्वस्तिकवत रकार चौ फेर, कंचन सम प्रज्वलित घनेर।
मंत्र अनाहत तैं प्रगटाय, धगधगात सो अगनि जलाय ॥३७८॥
अमल अष्टदल भसम कराय, फिर स्वयमेव शांत होजाय।
यह पिंडस्थ तृतिय गुण धार, अग्नि तत्व कहि कर उपचार ॥३७९॥

पवन तत्व निरूपण—

जहां रचै तन अमर विमान, तामें बैठ करै मुनि ध्यान।
चलै पवन तहँ अति गम्भीर, तिरछी वहै हलावै धीर ॥३८०॥
घन बहु गरजैं अति भयभीत, आवे जहां करन रज शीत।
सकल वारि जो देइ उड़ाय, फिर सो वारि शांत होजाय ॥३८१॥

आकाश तत्त्व निरूपण—

धातु रहित निर्मल जु शरीर, कर्म कलंक तनी नहि पीर।
अविकारी अनरूपी सोय, सिद्ध समान आतमा होय ॥३८२॥
चित्त धरै ऐसी निज काय, सिंहासन बैठारे ल्याय।
अतिशय अरु प्रतिहारज जहां, पुण्य प्रकृति फल सगरे तहां ॥३८३

१–हैम्।

इन्द्र सकल सेवत कर जोर, जय जयकार होत चहुँ ओर।
यह पिण्डस्थ पंचमी रीति, सो साधै तें मनकी जीति ॥३८४॥
मन चंचलता जब मिट गई, पंचम गतिकी प्रापति भई।
जो न होइ मनकी गति ठौर, वृथा सकल ध्यानहि की दौर ॥३८५॥

दोहा—मन निरोध जहँ पंचविध, कह्यौ ध्यान पिण्डस्थ।
जाते शिव-मारग सुगम, आगे सुनो पदस्थ ॥३८६॥

पदस्थ ध्यान निरूपण—

अब सुन सकल पदस्थ विचारा, साधै शिवपद करै विहारा।
मात्रा वंचन अक्षर तनी, आदि सिद्ध सब शोभा गुनी ॥३८७॥
तिनको ध्यान वृत्त मुनिराय, जथाजुगत ज्यों वेद कहाय।
षोडश दलको कमल अनूप, चिंतै नाभिमध्यता रूप ॥३८८॥
दल दल प्रति तहँ रचै विचित्र, स्वर हैं सोरह परम पवित्र।
अ आ इ ई उ हि ऊ शुभ गनौ, और जुक्त ऋ ॠ ऌ ॡ भनो ॥३८९
ए ऐ ओ औ अं अः जान, ए सोरह स्वर जे परवान।
फिर चिंतवै कमल इक और, जाको है हिरदैमें ठौर ॥३९०॥
ताके दल गन बीस रु चार, मध्य कर्णिका रूप अपार।
कु चु टु तु पू हैं वरण पचीस, तापर रचै ध्यानको ईश ॥३९१॥
वदन कमल वसु दल पर रचै, य र ल व आदि वर्ण वसु खचै।
अनुक्रम कमल प्रदक्षिण करै, दल दल प्रति अक्षर अनुसरै ॥३९२॥
मंत्रराज अवलंबै जीव, ह्रींकार धर हृदै सदीव।
यह विधि वर्णमाल उद्धरै, द्वादशांग वाणी बल करै ॥३९३॥

श्रुत समुद्र तर लागै तीर, ज्ञानतनी तहँ दीसै भीर।
ए सब पत्र रु उदर समेत, जो ध्यावै जोगी चित चेत ॥३९४॥
जपत जासु सुख रुचि आनंद, प्रगटै तीव्र अगनि ज्यों मन्द।
कुष्ट न रहै न उदर विकार, कास श्वासकी आवै हार ॥३९५॥
या भव पूजनीक जिय करै, आगेको शिव-सुख विस्तरै।
सकल पदनको राजा जान, सब तत्वनको ईश बखान ॥३९६॥
ऐसौ मंत्र अनाहत रूप, सुनौ तासकौ परम सरूप।
आदि ऊर्ध्व रेफा जा शीस, मध्य बिन्दु रेखा रजनीश ॥३९७॥
जे नव वर्ण पूर्व कहि तनै, इनि मिलि मंत्र अनाहत भनै।
मंत्रराज याहीको नाम, चन्द्रकला सम है अभिराम ॥३९८॥
सो वह कमल कर्णिका मांहि, धरिकै जपै न कर्म रहाय।
[1]जिन सरूपतैं चितत ऐन, निरमल भाजित महिमा बैन ॥३९९॥
याही मंत्र तनों कर ध्यान, भय सर्वज्ञ सर्वगत जान।
ज्ञान बीज जगत्रय करवंद, शिव महेश्वर सब सुख कंद ॥४००॥
जन्म अग्निकी जहँ उतपात, जलधर सम करता मुनि घात।
जिन लीनौं सुखतै इकवार, लयौ पंथ शिव पायौ सार ॥४०१॥
जन्म मरीरुहको[2] विस्तार, तिन सु मूलतै दियौ उखार।
मंत्रराजको साधन रूप, वरण सुनाऊँ विमल अनूप ॥४०२॥
मध्य रूप तीता थल ज्ञान, तास रूपको कर तहँ ध्यान।
लावै मुख पंकज फिर ताहि, तालु रंध्र पुन विकसत आहि ॥४०३॥
अमृतबिंदु तहां पय वरषाय, नेत्र पत्र फिर दरसै आय।

---

१ भये हुए, २—जन्म-ससार रूपी वृक्ष।

अलख वाट ब्रह्माण्ड विदार, ज्योतिष मण्डल करै विहार ॥४०४॥
शशि ताकी सरवर नहि होय, कलुक तहां रह उछलै सोय।
कर्म कलंक तनों तम जान, भवको भ्रमनाशक निर्वान ॥४०५॥
फिर आवे वह परम स्थान, जुग भ्रुवलता जु भाषी जान।
पूरक रेचक कुंभक तीन, पवनभ्यास त्रैविध परवीन ॥४०६॥
पूरक जहां पवन खेंचाय, कुंभक रहै अचल तन छाय।
रेचक जब ही जिय निरकार, ध्यान अंत मारुत निरधार ॥४०७॥*

(अर्हं मंत्र)

या मंत्रहि कुंभक कर चित, अर्हं शब्द सुनौ विरतंत।
सकल त्याग इहि विधि यह जपै, सपने हू न दृष्टितैं क्षपै ॥४०८॥
जाकी आदि अकार सरूप, मध्य विन्दु जुत रेफ अनूप।
अंत हकार दिये गुणवान, परम तत्त्व याको यह जान ॥४०९॥
पहिले चिंतै सब कर जुक्त, करै ध्यान फिर उनतैं मुक्त।
फिर चिंतै जिमि चन्दा रेख, ताकी द्युति सूरज सम पेख ॥४१०॥
मंत्रराज चितन गुण सार, जन्म मरण भवसागर पार।
बाल अग्र सम फिर चितवै, निहचै है इक चित संभवै ॥४११॥

---

* स्फुरन्त भ्रूलतामध्ये विशन्त वदनाम्बुजे।
तालुरन्ध्रेण गच्छन्त स्रवन्तममृताम्बुभिः ॥ १६ ॥
स्फुरन्त नेत्रपत्रेषु कुर्वन्तमलके स्थितिम्।
भ्रमन्त ज्योतिषा चक्रे स्पर्धमान सिताशुना ॥ १७ ॥
सचरन्त दिशामास्ये प्रोच्छलन्त नभस्तले।
छेदयन्त कलङ्कौघ स्फोटयन्त भवभ्रमम् ॥ १८ ॥
नयन्त परमस्थान योजयन्त शिवश्रियम्।
इति मन्त्राधिप धीर कुम्भकेन विचिन्तयेत् ॥ १९ ॥
—ज्ञानार्णव पृ० ३९०।

अणिमा आदि अष्ट जो सिद्धि, होइ प्रगट बहु लक्ष्मी वृद्धि।
सकल सुरासुर चरनन नवै, शिवपद लहि चारौं गुण वमैं ॥४१२॥

(अनाहत मंत्र)

कमल कर्णिका चहुँदिश चंग, षोडश रवि हाटकवत[1] रंग।
मध्य कर्णिकाके अस्थान, मंत्र अनाहत राखै आन ॥४१३॥
ह्रीं ता मस्तक सो है वृन्द, जैसे निर्मल पूरण चन्द्र।
ता मुखतैं अमृत वरषई, ध्यानी मुनि ताको निरखई ॥४१४॥
फिर वह कमल जु ध्यानी लेय, अंबुजदल परदक्षिन देय।
बहुरि उछारै गगन मझार, चित्तभूमिको मिटि अधिकार ॥४१५॥
तब वहँ वर्षा अमृत होय, बहुरि कमल मुख राखै सोय।
तालु रन्ध्र तैं फिर निकसाय, जुग भ्रुव लता विराजै आय ॥४१६॥
अधिक ज्योति ताकी प्रगटाय, बुद्धि न सकै ताहि वरनाय।
सकल सुरासुर नावैं शीस, विश्व तत्त्वको दीप गनीस ॥४१७॥
विद्या जल निधि तारन काज, है यह मंत्र प्रतच्छ जहाज।
अरु विष सर्प चालको हनै, नागदमन समयोचित भनै ॥४१८॥
जो ध्यानी ध्यावै इहि रीत, ध्यान करत छह मास वितीत।
धूम शिखा मुखतैं निकसाय, देखै प्रगट ध्यानको राय ॥४१९॥
जब वासर बीतैं इहि भांत, तब दीसै ज्वालाकी क्रांत।
ता पीछे प्रगटै अवदात, तब देखै जिन मुख साख्यात ॥४२०॥
सब आनन्दमयी सो होय, पंचकल्याणक दरशी सोय।
प्रभा पुंजको सूरज वान, भव्य कमल जातैं सुख खान ॥४२१॥

१—सुवर्ण।

प्रगट स्वयंभू जान विलास, निद्रा मोह तनौं किय नाश।
भवसागरके पार पहुंच, बैठे मुक्ति शिलापर कंच ॥४२२॥

(इति अनाहत मंत्र।)

(ॐ मन्त्र)

प्रनमि मंत्र सुमरौ फिर चित्त, ॐकार जो परम पवित्त।
दुख दावानलको जो मेह, ज्ञान दीप पहुंचनको गेह ॥४२३॥
परमेष्ठी सम इहिको जान, बीचक बीच तनें उनमान।
हृदय सुकंज कर्णिका रहै, स्वर व्यंजन वेष्ठित लह लहै ॥४२४॥
सकल सुरासुर पूजित पाय, चन्द्र समान दिपै सुखदाय।
महातत्त्व मह वीरज नाम, कुम्भक ध्यान करो अभिराम ॥४२५॥
ज्यों चिंतै वा शुक्ल सरूप, कर्म निर्जरा वमैं अनूप।
जो सिंदूर वरन मन धरै, सर्व जगत चित क्षोभित करै ॥४२६॥
जम्बु वरण जब जो ध्यावही, स्तवन सु ऋद्धि विमल पावही।
जो कोइ चिंतै कज्जल रंग, द्वेष तजै विद्यावल अंग ॥४२७॥
अरुण वरणतैं सब सुख जान, ॐकार गुण कहे बखान।
या समान दूजो नहि इष्ट, जुग फलदाता इष्ट अनिष्ट ॥४२८॥

(ॐकार इति प्रवचन मन्त्र।)

सुमिरै विद्या त्रिभुवन सार, ऋद्धि सिद्धिको है दातार।
है प्रसन्न गंभीर बखान, हिमकर वत अमृतकी खान ॥४२९॥
अविचल चित्त ललाट स्थान, जो ध्यावे ताको कल्यान।
सकल कामना पूरै सोय, पोहन मोहन यामें होय ॥४३०॥

(ह्रीं इति सिद्धि मन्त्र।)

सुधासिंधु तैं निकसी-आय, चन्द्र रेख सम-तास प्रताप।

रहै सहै भालके ठौर, जो ध्यावे ध्यानी शिरमौर ॥४३१॥
अमृत वरसावै चहुँ ओर, मैंटे जन्म तनौं ज्वर जोर।
कर्म ताप नाशन घन माल, परम लालवत सुखी रसाल ॥४३२॥
(चन्द्ररेखा इति सांतमंत्र)
फिर गुरु पंचहि कर चितनौ, नमस्कार लांछन जा भनौ।
जाहीं सुमिर सुमिर सब जीव, होंहि पवित्र जु अंग सदीव॥४३३॥
चिंतै श्वेत कमल दल आठ, तास कर्ण वसु अक्षर पाठ।
णमो अरहंताणं जिन नाम, अरु चतुष्ट दिगदलके धाम ॥४३४॥
सिद्धाचार्य उपाध्या साध, चार विदिग दल रच्यौ अगाध।
दरशन ज्ञान चरन तप जास, चिंतै अपराजित मंत्राम ॥४३५॥
जाके ध्यान मुक्तिपद वास, भये केवली धर विश्वास।
जा गुण कह न सकैं जोगेश, और कहें ते बाउल भेष ॥४३६॥
पाप पंक जे प्राणी परै, या सुमरिन तैं सब उद्धरै।
या सम उत्तम और न जान, भवसागरमें कृपा निधान ॥४३७॥
जिन नर कीनौं पाप हजार, जीवतनी हिंसा जु अपार।
या मंत्र हि आराधै सोइ, जो तिरजंच नरक नहि होइ ॥४३८॥
इक शत आठवार जे जपै, प्रभुता कर सब जगमें दिपै।
एक उपास तनों फल होइ, कर्म कालिमा डारी खोय ॥४३९॥
[णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं, णमो उवज्झाणं, णमो लोए सव्व साहूणं इति अपराजित मंत्रः।]
जातैं सफल विघन मिटि जांय, कर्म नाशि शिवपद हि लहाइ।
ताके वरण सफल हैं सात, ध्यावत ही उपजै अवदात ॥४४०॥
(णमो अरहंताणं इति अनादि मंत्र।)

पूरववत हिय कंज मझार, चिंतै षोडश अक्षर सार।
षोडशाक्षरि विद्या नाम, ले पहुँचावै शिवके धाम।४४१॥
पंच गुरुनके नाम प्रधान, द्वै शतवार जपै बुधवान।
फिर एकाग्र चित्त कर प्रीत, होय उपास एक फल मीत॥४४२॥
['अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नमः'—इति षोडशाक्षर मंत्र]
पुन षडक्षरी विद्या सुनो, हृदै कमल धर ताको गुनो।
जो यह जपै तीनसै वार, होय उपास तनों फल सार॥४४३॥
पुण्यशालिनी कर्म विनाश, लै पहुँचावै अविचल वास।
सखा सिद्धि साधनके एह, जाके गुणको कहौ न छेह॥४४४॥
['अरहंत सिद्ध'—इति षडक्षर मंत्र]
सुमरौ सकल मंत्रको ईश, शिव मारगको दीप सरीश।
अवरण नाभिकमल धर ध्यान, मस्तक पद हिगि वरन बखान॥४४५
कण्ठ कञ्ज आकार धराय, पङ्कज हृद ॐकार लखाय।
वदन जलज साकार धरंत, यह असियाउसाय विरतंत॥४४६॥
['असि आ उसा'—इति पंचाक्षर मंत्र]
चतुर वरन ध्यावें जोगेन्द्र, चार पदारथ लहैं सुरेन्द्र।
जपै चारसै चार जु ताहि, फल इक अनशनकौ गन ताहि॥४४७॥
कर्म निर्जरा धर्म बढ़ाय, मिलै सकल सिद्धनको जाय।
प्रगटै समोशरणकी ऋद्धि, और अनेक सिद्धिकी वृद्धि॥४४८॥
['अरहंत'—इति चतुर्वर्ण मंत्र]
बीज सकल मंगलको जान, सुमिरै जोगी हियमें आन।
शिवपद देन हरन संताप, दिन दिन बाढ़ै अधिक प्रताप॥४४९॥
['सर्वसिद्धभ्यो नमः' इति श्रेय मंत्रः।]

जो अकार स्वरको ध्यावहीं, सो शिवपद निश्चै पावही।
जपै सुमंत्र पंच शत वार, करै सुव्रतको फल निरधार ॥४५०॥
['ॐकार' इति ॐकारमंत्र।]

जिन मुख उद्भव ये सब कहे, जिनके साधत रुचि गुण लहे।
अनतुल बीजाक्षर गुण माल, पंच वरन अरु तत्व रसाल।४५१॥

श्री गनधर श्रुतसागर शोध, जगत जीव कारण किय बोध।
इनको ध्यान करै जब कोय, हृदयकमल मन थिर कर सोय॥४५२॥
वशीकरण नहि इनपर और, कर्म नाश मिलि सिद्धि न दौर।
थंभन वशीकरणको हेत, सकल सिद्धि उपजनको खेत॥४५३॥
['ॐ ह्रा ह्री ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा नम' इति।]

मँगल शरण लोकोत्तम जान, चार भांत मुनि कियो बखान।
ध्यावै जपै चित्त कर ठौर, ताकौ मुक्ति रमणि वर दौर॥४५४॥

मुक्ति सदन उत्तुंग स्थान, तहँ चढ़िवेको ए सोपान।
जा सुमिरत यह अंगीरूप, बाह्याभ्यंतर परम सरूप॥४५५॥
[ॐ चत्तारि पद मंगलं—(आदि) इति चत्वारि पद मगल मंत्र।]

वरण चतुरदश विद्या पेय, तास जपन तपसी चित देय।
शंका रहित अडोल शरीर, अष्टसिद्धि नवनिधिकी भीर॥४५६॥
मुक्ति—वधूकी दूती जान, जो मिलिवै सिद्धनसौं आन।
वरणन और कहां लौं करौं, रसना एक चित्त उच्चरै॥४५७॥
['ॐ अर्हत्सिद्ध सयोगकेवली स्वाहा'—इति त्रयोदशाक्षर मंत्र]

ज्ञान राजको दाता जान, तीन भुवनको नाथ वखान।
रत्न चूडमणिकी सर जोय, साक्षात सरवज्ञ जु होय॥४५८॥

ताकी महिमा कही न जाय, तासु ध्यान जिय मुक्ति लहाय।
जिन प्राणी याको किय ध्यान, पहुँचै जाय मुक्ति अस्थान ॥४५९॥
[ॐ ह्रीं श्रीं अर्हं नमः—इति षडक्षर मंत्र]
जो सुमरै पंचाक्षर मंत्र, कर्म तिमिर नाशन रवि मंत्र।
पुण्य बढ़ावन ऋधि दातार, गुण वरणतको पावै पार ॥४६०॥
['नमो सिद्धाणं'—इति पंचाक्षर मंत्र]
सर्व तत्वमें परम स्थान, सकल वरनकी माला जान।
क्लेशहरन है मंत्र पुनीत सुमरै शिवपद जाय अतीव ॥४६१॥
['ॐ नमोऽर्हते केवलिने परमयोगिनेऽनन्तशुद्धिपरिणामविस्फुरदुरुशुक्लध्यानाग्निनिर्दग्धकर्मबीजाय प्राप्तानन्तचतुष्टाय सौम्याय शांताय मङ्गलाय वरदाय अष्टादशदोषरहिताय स्वाहा।]
[इति वर्णमाला मंत्र]
वसु दल तनों कमल मन रचै, तापर चरण आठ ले खचै।
दल दल प्रति इक न्यारौ जान, तेजवंत जिमि दीसै भान ॥४६२॥
प्रणव आदि परदक्षिण देय, इकशत अधिक सहस्र गनेय।
इहि विधि अष्ट रातलौं जपै, एकचित्त है जोगी तपै ॥४६३॥
कर्म कलंक ताहि तजि जाय, हिंसक जीव न नजर पराय।
प्रणव सहित जो कीजै ध्यान, ऋद्धि सिद्धिको दाता जान ॥४६४॥
प्रणव तहां तजि ध्यावै कोय, कर्म नशाय जु शिवपद होय।
प्रभुता कहँलौं कहौ बखान, सकल सिद्धिको जानों खान ॥४६५॥
फिर चिंतै इक शशि आकार, अष्ट कमलदल उदर मझार।
दल दल प्रति इक वरन धराय, तिनकै नाम कहौ समझाय ॥४६६॥
['ॐ णमो अरहंताणं'—इति अष्टवर्ण मंत्र]

आदि प्रणव अरु शून्य मझार, अन्त अनाहत मंत्र विचार।
तिन भुवनको तिलक कहाय, नासा अग्र ध्यान ठहराय ॥४६७॥
प्रगटै ज्ञान अष्ट गुण संग, जब चिन्तै इकचित्त अभंग।
शुक्ल वरण तिहिको ध्यावेय, मुक्ति वधू निहचै पावेय ॥४६८॥

['ॐ ह्रीं'—इति द्विवर्ण मंत्र]

द्वौ द्वौ प्रणव धरै दो ठौर, दुहु ढिग ह्रींकार द्वै और।
तिनके बीच हंसपद ध्याय, सबके मध्य स्त्री है आय ॥४६९॥
महा वीर्य है याको नाम, ध्यावै एक-चित्त अभिराम।
मन चीतै पावै फल सोय, डारै सकल कर्म मल धोय ॥४७ ॥

['ॐ ॐ ह्रीं हंस स्त्री ह्रीं ॐ ॐ' इति महावीर्य मंत्र।]

जपै मन्त्र जो कर्मन हनै, राग द्वेष आदिक जे भनै।
संसारी सब दुख विसराय, अनुचितौ फल आतम पाय ॥४७१॥

[श्रीमद्वृषभादिवर्धमानान्तेभ्यो नमः]

फिर चिन्त्यौ मन मुनि गंभीर, विद्यावाद उधारन धीर।
भुक्ति मुक्तिको है अभिराम, सिद्धिचक्र कहिये ता नाम ॥४७२॥

['सिद्धिचक्र' इति सिद्धि चक्र मन्त्र ।]

महावीर मुख उद्भव जान, विद्या कल्पवृक्षको मान।
वरन न सकै तास फल कोय, जद्यपि श्रुतको पाठी होय ॥४७३॥
विद्या जपै निरन्तर सदा, यामें अन्तर होय न कदा।
अणिमा आदि अष्ट सिधि धनी, श्रुतसागर पारग बहु गनी ॥४७४॥
तीन कालको दरसी जान, सकल तत्त्वको पूरन ज्ञान।
सिंह आदि जे प्राणी क्रूर, शांत रूप ह्वै रहैं हजूर ॥४७५॥

[ॐ जोगेमग्गे तच्चेभूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिण पारिस्से स्वाहा] [ॐ ह्रीं स्वर्हं नमो नमोऽर्ह्ंताणं ह्री नमः ।]

[इति तीसाक्षर विद्यामंत्र ।]

करि श्रुतसागरको मंथान, प्रगटे मंत्राक्षर गुण खान ।
इनको ध्यान करे गुनिराय, सो सराग ध्यानी कहि लाय ॥४७६॥
ध्यान करत पावे निज वस्थ, याते कहिये ध्यान पदस्थ ।
जंत्रादिकको पूजन जोय, ध्यान पदस्थ नहीं पुन होय ॥४७७॥

दोहा—अष्टसिद्धि नवनिधि सदन, मन निरोधके गेह ।
वरनौं ध्यान पदस्थ यह, सो तिथिसार गनेह ॥४७८।

अथ तिथि मन्त्रोंका विवरण—

प्रणव मंत्र परिमाको ध्यान [ॐ] दोउज दोय वरण मंत्रान। [ॐ ह्रीं]
मंत्र अनाहत तीजहि जान [ह्रींकार] चौथ सु चतुर वरन पठि ज्ञान
[सिद्धिचक्रं] ॥४७९॥

पंचाक्षर पांचेको सोय—[णमो सिद्धाणं]
छटको षडक्षरी अवलोय—[ॐ सिद्धेभ्यो नमः]
सातेंको सप्ताक्षर रचै ॥४८०॥ [णमो अरहंताणं]
आठेंको अष्टाक्षर सचे ॥४७९॥ [ॐ णमो अरहंताणं]
नवमी मंत्र नवाक्षरध्याय—[ॐ ह्रीं अर्ह नमो जिनानाम्]
दशमी दश अक्षर लौं लाय । [चत्तारि मंगलपद नमः]
महावीर्ज एकादश थाय—[ॐ ॐ ह्रीं हंस स्त्री हंस ह्रीं ॐ ॐ]
द्वादश बीजाक्षर मन लाय ॥४८१॥ [ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः
अ सि आ उ सा नमः]।

तेरस त्रोदश अक्षर मंत्र [ॐ अर्हत्सिद्ध सयोग केवली स्वाहा]
चौदशि चतुर्दशाक्षर तंत्र [श्रीमद्वृषभादिवर्धमानान्तेभ्यो नमः]
पूरणमासी षोडश वर्ण [ॐ ह्रीं नभमण्डलयते भाले चन्द्ररेखा नम.]
मावास्या तीसाक्षर धर्ण ॥४८२॥ [ॐ जोग्गे मग्गे तच्चे भूदे भव्वे भविस्से अक्खे पक्खे जिण पारिस्से स्वाहा-ॐ ह्रीं स्वर्ह नमो नमोऽर्हताणं ह्रीं नमः ।]

अथ वार मन्त्रोका विवरण—

अपराजित जप आदितवार, [णमो अरहंताणं, णमो सिद्धाणं,
णमो आइरियाणं, णमो उवज्झायाणं,
णमो लोएसव्वसाहूणं ।]
सोमवार षोडक्षर धार । [अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो नम·]
मंगलवार षडक्षर जान [अरहंत सिद्ध]
बुद्धवार पंचाक्षर ध्यान ॥४८३॥ [असिआउसा]
चतुरवरण गुरुवार जपेय [अरहंत]
शुक्रवार दुइ अक्षर ध्येय । [सिद्ध]
शनिको एकाक्षर परमान [ॐ]
यह पदस्थ वरणौं शुभ ध्यान ॥ ४८४ ॥

दोहा—मूंगा मोती हेरा मणि, रूपा फल गुथि सूत ।
अरु कपूर वसु भेद मिलि, अष्टोत्तर शत जूत ॥ ४८५ ॥
मध्यम तरजनि नामिका, जप अंगुरन जब स्वास।
अंगुठासौं जपमाल रुचि, गुन इक इक वहु तास ॥ ४८६ ॥

अथ रूपस्थ ध्यान वर्णन—

चौपाई।

अब रूपस्थ ध्यान तुम सुनौ, जा प्रसाद जिनदेवहि गुनौ।
और देवसौं नाही काज, हैं देवाधिदेव जिनराज ॥४८७॥
दोष अठारह रहित जिनेश, गुण छयालीस संयुक्त महेश।
अतिशय महा तीस अरु चार, सो है प्रातिहार्य वसु सार ॥४८८॥
[अ]नंत चतुष्टयको नहि छेव, करैं शतेन्द्र तास पद सेव।
श्री ऋषभादि चुवीस महंत, गुण वरणत आवे नहि अन्त ॥४८९॥
समोशरणकी ऋद्धि समेत, जो इनिकौ चितै धर हेत।
ध्यान करत उनहीसौ जाय, यामें कछु नहिं संशय थाय ॥४९०॥
दोहा—जब न टरै चिततैं वह रूप, तब शिवपद है शरण अनूप।
जो जगमें नर करतौ काम, पावै ताहीके सम नाम ॥४९१॥
यह रूपस्थ अनूप गुण, जिन सम आतम ध्यान।
कर याकौ अभ्यास मुनि, पावै पद निर्वान ॥४९२॥

अथ रूपातीत ध्यान वर्णन—

चौपाई।

धर्म रहित प्राणी संसार, जपै अनेक मंत्र निरधार।
सिद्ध साध्य है और सुसाध्य, आरिय महित चतुर आराध्य ॥४९३॥
थंभन वशीकरण अवदात, चेटक नाटक बहु उतपात।
तातैं वर्ण सिद्धि मुनि जोय, काटे विमल मंत्र अवलोय ॥४९४॥
सकल सिद्धि इनहीके ध्यान, अष्ट सिद्धि नव निद्धि बखान।
ए संसार बढ़ावन सबै, इनिहीतैं शिव मारग दबै ॥४९५॥
मनकी चंचलताको रोध, उपजाये दुर ध्यान विरोध।

तातैं किमपि मंत्र वरणए, मनसा रोकनको परिणये ॥४९६॥
आतम हितकारी जो ध्यान, अब सुन ताको करौं बखान।
सिद्ध रूपको चितवन करौ, तातैं सकल कर्म निरजरौ ॥४९७॥
है अविकार चरम रस छाम, काय विनाश सहज विसराम।
सदा अनाकुल परम रसेय, अनरूपी अरु अजपा ध्येय ॥४९८॥
तीन भुवनमें रहै समाय, ज्ञान दृष्टि विन लख्यौ न जाय।
विन शरीर है पुरुषाकार, किंचित ऊन चरम तन धार ॥४९९॥
जो कोइ जियमें करै विचार, अनरूपी को पुरुषाकार।
ता संबोधन गुरु कहि कथा, सिद्धि द्वारसें वरनी जथा ॥५००॥
सो सिद्धन सम आतम रूप, ध्यावै दुविधा डार अनूप।
रूपातीत ध्यान यह नाम, जो लेजाय मुक्तिके धाम ॥५०१॥

दोहा—राग रहित इन्द्रिय दमन, सकल विभंग उड़ाय।
जीव तनों विश्राम यह, रूपातीत कहाय* ॥ ५०१ ॥

इति ध्यान निरूपणम्।

[1]प्रत्यय वर्णन—

पंच मिथ्यात प्रथम एकांत, विनय दुतिय विपरीत त्रि संत।
चौथौ है संशय मिथ्यात, अज्ञान पंचमो सुनहो भ्रात ॥५०३॥
बारह अव्रत हैं दुखदाय, ताके नाम सुनौ समुदाय।
पांचों थावर त्रसहि विरोध, इन्द्रिय पांचौ मन नहि रोध ॥५०४॥
पंद्रह जोग पचीस कषाय, सब संतावन प्रत्यय थाय।

---

* ग्रन्थकर्तांने यहां ध्यानका निरूपण ज्ञानार्णवक आधारपर किया है इसलिये विशेष जाननेके अभिलाषी पुरुषोंको ज्ञानार्णवका स्वाध्याय करना चाहिये। १–कर्मबन्धके कारण।

जबलौं इनमें रहै जु जीव, पावै नहीं मुक्ति पथ सीव ।।५०५।।

अथ जाति स्थान—

लख चौरासी जोनी सवै, ताको भेद कहौ कछु अवै ।
पृथ्वी वायु अगनि जल चार, इतर निगोद नित्य अवधार ।।५०६।।
ए पट थोक वयालिस लक्ष, सात सात जानौं परतक्ष ।
वनस्पती प्रत्येक दशान, विकलत्रय पट लक्ष वखान ।।५०७।।
देव नारकी अरु तिरजंच, चार चार मिलि बारह संच ।
मनुप जोनि है चौदह लाख, सव चौरासी मिति यह भाख ।।५०८*

दोहा—चौरासी लख जातिमें, सात पक्ष जिय जंत ।
पंच परावर्तन धरे, भटके काल अनन्त ।।५०९।।

योग वर्णन—

चौपाई ।

करन तीन मद आठ प्रकार, पांचौं इन्द्रिय विकथा चार ।
सात व्यसन अरु चार कषाय, पंच मिथ्यात जहां परसाय ।।५१०।।
यह छत्तीस जोग समुदाय, इनि मिलि प्राणी कर्म बंधाय ।
आवे जाय तहां सब जीव, इतर निगोदादिक जु सदीव ।।५११।।

---

* णिच्चिदरधादुसत्त य तरुदस वियलिंदिएसु छच्चेव ।
सुरणिरयतिरिय चउरो चोद्दस मणुए सदसहस्सा ।। ८९ ।। —जीवकाण्ड ।

"नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथिवी, जल, तेज और वायुकायिकमें प्रत्येककी सात सात लाख, वनस्पतिकायिककी दश लाख, द्वीन्द्रिय और चतुरिन्द्रियमे प्रत्येककी दो दो लाख, देव नारकी और तिर्यञ्चोंमें प्रत्येककी चार चार लाख तथा मनुष्योंकी १४ लाख योनियां होती है। सब मिलाकर ८४ लाख योनियां होती है।

[1]कुल कोटि वर्णन—

*पृथिवीकायिक बाइस जान, जलकायिक पुन सात बखान।
तेजकाय तह तीन सु भनौ, वायु सात लख कोड़हि गनौ॥५१२॥
वनस्पती अट्ठाइस होय, एकेन्द्रिय सब सड़सट जोय।
द्वे इन्द्रिय पुनि सात गनेइ, ते इन्द्रिय तह आठ भनेइ॥५१३॥
चौइन्द्रिय नव कोड़ि प्रतक्ष, सब चौबीस विकलत्रय रक्ष।
अब पञ्च इन्द्रियनको सुन हाल, है तिरजंच साढ़ तेताल॥५१४॥
जलचर साढ़ेबारा लाख, पुनि नभचर नव बारह भाख।
थलचर को दो भेद बखान, चतुपद आदि दशहि परवान॥५१५॥
सरी सर्प नव कोड़ि जु कहै, इसि तिरजंच सब सरदहै।
देवन कुल छब्बीस जु होय, नारकगति पच्चीस हि सोय॥५१६॥
चौदह मनुप तनें अवलोय, सकल जीव इकठे अब होय।

१—शरीरके भेदको कारणभूत नो कर्मवर्गणाके भेदको कुल कहते है।

* बावीस सत्त तिण्णि य सत्त य कुलकोडिसयसहस्साइं।
णेया पुढविदगागणि वाउक्कायाण परिसंखा॥ ११३॥
कोडिसय सय सहस्साइं सत्तट्ठणव य अट्ठवीसाइं।
वेइंदिय तेइंदिय चउरिंदिय हरिद कायाण॥ ११४॥
अद्धत्तेरस बारस दसय कुलकोडिसदसहस्साइं।
जलचरपक्खि चउप्पय उरपरिसप्पेसु णव होंति॥ ११५॥
छप्पंचाधियवीस बारसकुलकोडिसदसहस्साइं।
सुरणेरइयणराण जहाकम होंति णेयाणि॥ ११६॥
एया य कोडिकोडी सत्ताणउदीय सदसहस्साइं।
पण्णं कोडिसहस्सा सव्वंगीण कुलाण य॥ ११७॥

—जीवकाण्ड।

इकसय लख गनिये कुल कोड़ि, साढ़निन्यातव ऊपर जोड़ि॥५१७卐

[१९९५०० ००००००००]

दोहा—पिता पक्ष कुल कोड़ि यह, चतुरविंश थानेव।
अव जिय गत्यागत सुनौ, दंडक चौवीसेव॥५१८॥

अथ चौवीस दण्डक प्ररूपण—

दोहा—नारकगति है प्रथम ही, भवनपति दश जान।
जोतिक व्यन्तर, तेरमौ चौदहि स्वर्गहि थान॥५१९॥
थावर पांचों, विकलत्रय, पञ्चेइन्द्रिय तिरजंच।
चौवीसौं मानुष गती, कहौं भेद अव रंच॥५२०॥

चौपाई।

नारककी गति आगति दोय, नर तिरजंच पंचेन्द्रिय होय।
जाय असैनी पहिला लगे, मन विन हिंसा कर मन पगे॥५२१॥

卐 कुल कोटियोंकी सख्याके विषयमे अन्य शास्त्रोंमे दो प्रकारका उल्लेख मिलता है। गोम्मटसार जीवकांडने १९७५०००००००००००० सख्या बतलाई है। गोम्मटसारके गाथा ऊपर उद्धृत किये जा चुके है। परन्तु कविवर द्यानतरायजीने अपने चर्चा शतक ग्रन्थमे कुल कोटियोका प्रमाण १९९०००००००००००० बतलाया है। यहां ग्रन्थकर्ताने भी उसी आधार पर उक्त सख्याका निरूपण किया है। द्यानतरायजीका कवित्त यह है-पृथ्वीकाय वीस दोय जल सात तेज तीनि. वायु सात तरुवीस आठ परमानिये। वे ते चउ इन्द्री सात आठ नव खग बारै, जलचर साढेवारै चौपै दस जानिये॥ सरीसृप नव नारकी पचीस नर चौदै, देवता छवीस लाख कुल कोरि मानिये। दोय कोराकोरी मांहि आध लाख कोरि नाहिं, सबको निहारिकै दयाल भाव आनिये॥३२॥ —चरचाशतक।

गोम्मटसारमे मनुष्योकी १२ लाख और यहां १४ लाख बतलाई है, इसलिये दो लाखका अन्तर दोनों निरूपणोंमे पडता है।

सरीसर्प दूजौ लौं जाय, तीजै लौं नभचर पहुँचाय।
सर्प जाय चौथी लौं सही, नाहरकी पंचम जिन कही ॥५२२॥

नारी छटमें लौं सो जाय, नर अर मच्छ सातलौं थाय।
यह तो नारककी गति कहै, अब सुन आगति जिहि विधि लहै॥५२३॥

सातम नरक निकस के कोय, पशुगतिमें आवे दुख जोय।
अवर नरक सबके कढ़ि जीव, नर अर पशुगति लहै सदीव॥५२४॥

छट्ठम नरक निकसि कोइ जीव, समकित लहै निपाप अतीव।
पंचम तैं निकस्यौ मुनि होय, चौथेको केवल धर सोय॥५२५॥
तीजेको निकस्यौ भवि कोय, तीर्थंकर पद धारै सोय।
ऐसी विधि आगति पहिचान, सात नरककी कहि भगवान॥५२६॥

तेरह दंडक देव निकाय, तिनके भेद सुनौ मन लाय।
नर तिरजंच पंचेन्द्रिय बिना, और न काहू सुरपद गिना॥५२७॥
देव मरै गति पंच लहाहि, भू जल तरु नर तिरंचर मांहि।
दूजै स्वर्ग सु ऊपर देव, थावर होय न कहिये एव॥५२८॥
सहस्रारतैं ऊंचौ सुरा, मरकैं होय सु निहचै नरा।
भोगभूमिके तिरु अरु नरा, दूजै देवलोक तैं परा॥५२९॥
जायँ नहीं यह निहचै कही, देवन भोगभूमि नहि लही।
करमभूमिया तिरजग जती, श्रावक व्रत धर बारम गती॥५३०॥

सहस्रारतैं पर तिरजंच, जाय नहीं तजहू परपंच।
अव्रत सम्यग्दृष्टी नरा, बारम तैं ऊपर नहि धरा॥५३१॥

१–तिर्यञ्च।

अन्य तपी पंचागनि साध, भवनत्रिक तैं जाय न बाध।
परिव्राजक दंडी हैं तेह, पंचम परै नहीं उपजेह ॥५३२॥
परमहंस नामा [१]परमती, सहस्रार ऊपर नहि गती।
मोक्ष न पावहि परमति मांहि, जैन विना नहि कर्म नशांहि ॥५३३॥
श्रावक अ[२]रजा अणुव्रत धार, बहुर श्राविका गनौ विचार।
सोलह स्वर्ग परै नहि जाय, ऐसौ भेद कहौं जिनराय ॥५३४॥
द्रव्य लिङ्गधारी ते जती, नवग्रैवक ऊपर नहि गती।
नव अनुदिश अरु पंचोत्तरा, महामुनी विन और न धरा ॥५३५
कैई वार देव जिय भयौ, तिनमें कैई पद नहिं लयौ।
[३]इन्द्र भयौ न [४]शैची हू भयौ, लोकपाल पुन कबहुं न थयौ ॥५३६
अर लौकान्तिक भयौ न सोय, नही अनुत्तर पहुँचौ लोय।
ए पद लह बहु भव नहि धरै, अल्पकालमें मुक्ति सु वरै ॥५३७॥
गत्यागत्य देव गति येह, अब नरगतिके भेद सुनेह।
चौवीसौं दंडकके मांहि, मानुष जाय जु संशय नाहि ॥५३८॥
मुनि पद धरै होय शिव ईश, मानुष विना न मुनिपद दीस।
गति पच्चीस कही नर ईश, मनुष तनी भाषी जोगीश ॥५३९॥
आगत पुनि बाईस जु सोय, तेजकाय अरु वायु जु काय।
इन विन और सबै नर थाई, गति पच्चीस आगती बाई ॥५४०॥
यह सामान्य मनुष्यकी कही, अब सुन पदवीधरकी सही।

१–अन्य मतावलम्बी। २–आर्यिका। ३–दक्षिण अर्थात् १–३–५–७–९–११–१३ और १५ वे स्वर्गके इन्द्र। ४–पहले स्वर्गके इन्द्रकी इन्द्राणी।

तीर्थंकरकी दो आ गती, सुर नारक तैं आवैं सती ॥५४१॥
फेर न गति धारैं जगदीश, जाय विराजैं जगके शीस।
चक्री अधचक्री अरु हली, स्वर्ग लोकतैं आवैं वली ॥५४२॥
इनकी आगत एक हि जान, गतिकी रीति जु कहौं बखान।
चक्रीकी गति तीन जु होइ, स्वर्ग नरक अरु शिवपद जोइ ॥५४३॥
तप धारैं तो सुर शिव दोय, मरैं राज्यमें नरक हि होय।
आखिर पहुँचैं पद निर्वान, पदवी धर ये बड़े प्रधान ॥५४४॥
अधचक्रीके दोऊ भेद, हरि प्रतिहरि नारक गति खेद।
राज्यमांहि ये निहचै मरैं, तद्‌भव मुक्ति पंथ नहि धरैं ॥५४५॥
आखिर पावैं जिनवर लोक, पुरुषशलाका शिवके थोक।
बलभद्रनकी दोयहि गती, स्वर्ग जांय ह्वै कै शिवपती ॥५४६॥
तप धारैं ये निश्चय पाय, मुक्ति पात्र ये श्रुतमें ठाय।
कुलकर नारद रुद्र रु काम, जिनवर तात मात पद नाम ॥५४७॥
इनकी आगत श्रुत तैं जान, गतके भेद जु कहौं बखान।
कुलकर देव लोक ही लहैं, नारद रुद्र अधोपुर गहैं ॥५४८॥
मैदन मदन हत स्वर्ग जु कोय, कोई तद्भव शिवपुर होय।
तीर्थंकरके पिता प्रसिद्ध, स्वर्ग जाय कै हूं हैं सिद्ध ॥५४९॥
माता स्वर्ग लोक ही जाय, आखिर शिवपुर वेग लहाय।
ये सब रीत मनुषकी कही, अब सुन तिरजग गतिकी सही ॥५५०॥
पंचेन्द्रिय पशु मरण कराय, चौबीसों दंडकमें जाय।

१—उसी पर्यायसे। २—कामदेव।

चौवीसों दण्डक तैं मरै, पशु य होइ तौ नाहि न करै।५५१॥
गति आगती कही चौवीस, पंचेन्द्रिय पशुकी जो ईसै।
ता पंचम सुरको पथ गहौं, चौवीसौं दंडक नहि लहौ॥५५२॥

विकलत्रयकी दश ही गति, दश आगति कहि श्री जगपती।
पांचो थावर विकलत्र तीन, नर तिरजग पंचेंद्रिय लीन॥५५३॥

इन ही दशमें उपजै जाय, इन ही तै विकलत्रय आय।
पृथ्वी पानी तरुवर काय, इन ही दशमें जनम कराय॥५५४॥

नारक विन सब दण्डक जोय, पृथ्वी पानी तरुवर होय।
तेज वायु मर इनमें जाय, मानुष होइ न सूत्रै कहाय॥५५५॥

थावर पंच विकलत्रय ठोर, ए नव गत भाषौ मद मोर।
दश तैं आय तेज अरु वाय, होय सही भाषी जिनराय॥५५६॥

ये चौवीसौं दण्डक कहे, इनको त्याग परम पद लहे।
इनमें रुलैं सु गतिको जीव, इनतै रहित होय जग पीवै॥५५७॥

अथ ऊर्ध्वगमन वर्णन।

प्रकृति बंध थिति बंध जु एव, अरु अनुभाग प्रदेश लहेव।
बंधन चार जीवको येह, चारौं गति भटकावें तेह॥५५८॥

बंध विवर्जित जब जिय होय, ऊरध गमन करै तब सोय।
जैसे तूंबी मृतिका लेप, जलमें बूड़ रहे बल क्षेप॥५५९॥

क्रमसों लेप जाय खिरि जबै, ऊरध गमन करै जिय तबै।
जो लौं चहुंगति बंध्यौ जीव, विदिश वर्जि गति करै सदीव॥५६०॥

१–योगीश–जिनेन्द्रदेव। २–शास्त्र। ३–पिय–पति।

सिद्ध जीव वर्णन—

सोरठा।

वसैं सिद्ध सब खेत, ज्यों दर्पणमें छांह है।
ज्ञान नैन लखि लेत, चरम नैन सौं प्रगट नहि॥ ५६१॥

पद्धड़िछन्द।

तहँ अष्ट कर्म मल मुक्त होय, अर अष्ट गुणातम रूप जोय।
व्यय उतपति ध्रौव्य संजुक्त तीन, जहँ चरम देहतैं कछुक हीन॥५६२

जो अथिर द्रव्य परजाय कोइ, तस हानि वृद्धिमय रूप जोय।
तेई नव सिद्धनको प्रवान, है व्यय उतपति अरु ध्रौव्य जान॥५६३

जब भेव परिणति कीनी विनाश, तब भई सिद्ध परजाय जास।
निहचल पद पायो शुद्ध वास, येही व्यय उतपति ध्रौव्य जास॥५६४

जिन मुख्य ज्ञान मरजाद नाहि, थिर रूप पिंड है जाति मांहि।
तिनको अकार इक देश होइ, सो कहौ एक दृष्टान्त सोइ॥५६५॥

इक मोममयी पुतरा बनाय, नख शिख सु चतुर संस्थान पाय।
तन निराभरण पुरुषाअकार, सबही विधि सुन्दर रचि अपार॥५६६

पुन माटीसौं इमि लेप सोय, जैसे तन ऊपर त्वचा होय।
चहु अंग न खाली रहइ मार, उपचार कल्पना यह प्रकार॥५६७

सो आग मांहि लीजे तपाय, गल जाय मोम सांचौ रहाय।
अब ता भीतर कीजैं विचार, कह रह्यौ तहां बुध जजन हार॥५६८॥

है मूस पोलको सुन प्रकाश, नभ रह्यौ जु पुरुषाकार जास।

१—संसार अवस्था।

सो जानौ यह अंबर उन्हार, तहँ ब्रह्मरूप परगट विचार ॥५६९॥
पर यह अकाश जड शून्यरूप, वह पूरण है चेतन चिद्रूप।
यह वहमें इतनो फेर जान, आकृतिमें कछु अन्तर न मान ॥५७०॥
इहि विधि सिद्धातमको सरूप, सो निराकार साकार रूप।
दृष्टान्त यहै निज हियै धार, भविजन मनको संशय निवार ॥५७१॥

गीतिका छन्द।

श्री वीरनाथ जिनेश भाषौ, प्रगट गौतमने कह्यौ।
जीव तत्त्व बखान बहुविधि, भव्य जन मन सरदह्यौ ॥
वीर्य दरशन ज्ञानकौ, यह फेर क्रम शिव-पथ गहै।
साधु सु चरण कर्म खय कर, शाश्वतै पदको लहै ॥५७२॥

दोहा—सुर नर पद वंदत सदा, ध्यान धरत जोगेश।
तीन लोक प्रभुता लिये, प्रनमौं वीर जिनेश ॥५७३॥

इति श्री कविरत्न नवलशाह विरचित भाषा छन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमें
भगवत्कृत दिव्यध्वनिमे जीवतत्वका वर्णन करनेवाला
त्रयोदश अधिकार पूर्ण हुआ।

चतुर्दश अधिकार।

दोहा—तत्त्वारथ परगट करण, केवल ज्ञान सुभान।
तीन जगत नायक नमौं, श्री सन्मति भगवान ॥ १ ॥

चौपाई।

फिर गौतम बोले शिरनाय, तुम स्वामी त्रिभुवन सुखदाय।
अब अजीव तत्त्वहि कहि भेद, भविजन मनको नाशै खेद ॥ २ ॥
तब प्रभु मुख वाणी उच्चरी, सकल अर्थ गर्भित गुणभरी।
जीव तत्त्व गुण पूरव कहै, अब सब तत्त्व पदारथ लहै ॥ ३ ॥

अजीव तत्त्वका वर्णन।

दोहा—पुद्गल धर्म अधर्म नभ, काल सहित ये पंच।
सो अजीव जडरूप हैं, वरणौं तिनहि प्रपंच ॥ ४ ॥

पुद्गलका स्वरूप।

चौपाई।

पुद्गल भेद दोय परकार, खंध रूप अणु रूप विचार।
तातैं पुद्गल रूपी दरव, चारौं और अरूपी सरव ॥ ५ ॥
बरन पंच रस पंच हि पाउ, दोय गंध सपरस गुन ठाउ।
पुद्गल गुण ये बीस बखान, इन तैं खंध रूप परवान ॥ ६ ॥
अब अणुरूपी सुनिये लोय, छेद भेद जाके नहि होय।
अगन जलादिक नाश न हूत, शब्द रहित पै कारणभूत ॥ ७ ॥
सूक्ष्म थूल षट भेद प्रमान, श्रद्धाकर सुनिये बुधवान।
सूक्ष्म सूक्ष्म प्रथम बखान, सूक्ष्म द्वितीय कहै भगवान ॥ ८ ॥
सूक्ष्म थूल तृतीय जानिये, थूल सूक्ष्म चौथो मानिये।

थूल पंचमौ कहिये नाम, थूलथूल छट्ठो अभिराम ॥ ९ ॥
कर्म वर्गणा दृष्टि न आय, सो सूक्षम सूक्षम हि कहाय।
अष्ट कर्म मय खंध जु होय, सो सूक्षम पुद्गल अवलोय ॥१०॥
शब्द सपर्स गंध रस जान, सूक्ष्म स्थूल कह्यौ परवान।
धूप चांदनी आदि समस्त, थूल सूक्ष्म सो कहिये वस्त ॥११॥
जल घृत तेल आदि दै सर्व, थूल रूप जानो सब दर्व।
भूमि विमान धाम गिरि जान, थूल थूल ताकौ पहिचान ॥१२॥
दोहा—*शबद बंध सूक्षम गरुव, छाया तम संठान।
भेद उदोत अताप जुत, वेपु प्रजाय दश जान ॥ १३ ॥

धर्मद्रव्य वर्णन—

चौपाई।

जिय पुद्गल जुत गमन कराय, धर्मद्रव्य तब होत सहाय।
जैसे मीन चलै जल जोइ, पै अपनी इच्छा कर सोइ ॥१४॥

अधर्म द्रव्य वर्णन—

जड़ चेतन जब ही थिर होय, तब अधर्म सहकारी होय।
ज्यों पंछी बैठे तरु छांहि, जब उठ चले गहै तब नांहि ॥१५॥

आकाश द्रव्य वर्णन—

लोकालोक दुविध आकाश, मूर्ति विवर्जित सदा प्रकाश।
धर्म अधर्म काल त्रय दर्व, पुद्गल जीव पंच ए सर्व ॥१६॥
इनको देय सदा अवकाश, असंख्यात परदेश निवास।

---

* सद्दो बंधो सुहुमो थूलो सठाणभेदतमछाया।
उज्जोदादव सहिया पुग्गलदव्वस्स पज्जाया ॥१६॥—द्रव्यसग्रह।

१—स्थूल। २—पुद्गल। ३—पर्याय।

लोकाकाश कहावै सोय, परैं अलोकाकाश जु होय ॥१७॥
द्रव्य विवर्जित तिष्ठै सदा, मूरति हीन क्रिया नहि कदा।
सोहै नंतानंत अकाश, गोचर केवल दृष्टि प्रकाश ॥१८॥

काल द्रव्य वर्णन—

नूतन द्रव्य जु जीरन करै, यह प्रवर्तै समयादिक धरै।
घड़ी पहर दिन वर्ष जु जाय, सो व्यवहार काल परजाय ॥१९॥
लोक प्रजंत असंख्य जु होय, एक एक कालाणू जोय।
*रत्नराशि वत शोभै जहां, भिन्न भिन्न परदेशी तहां ॥२०॥
काल जीव पुद्गल पुन धर्म, और अधर्म अकाश जु पर्म।
ए ही छह दर्वै समुदाय, काल विना पंचास्ति[1] जु काय ॥२१॥
जीव धर्म अधरम त्रय दर्व, ते असंख्य परदेशी सर्व।
नभ अनंत परदेशी संत, पुद्गल संख्य असंख्य अनंत ॥२२॥
काल एक परदेशी जान, तातै काल काय विन मान।
वर्तमान[2] लक्षण है जास, सदा शास्वतौ द्रव्य प्रकास ॥२३॥

प्रश्न—

भो गुरु एक प्रदेशी होय, काल काय विन भाख्यौ सोय।
त्यों पुद्गल परमाणू वसै, सो सकाय कर कैसे लसै ॥२४॥

उत्तर—

कालाणू हैं अलख असंख्य, भिन्न भिन्न तिष्ठैं सुन शिख्य।

* लोयायास पदेसे इक्केक्के जे ठिया हु इक्कक्का।
रयणाण रासीमिव ते कालाणू असंखदव्वाणि ॥२२॥ —द्रव्यसंग्रह।

१—जो द्रव्य बहुप्रदेशी होकर अस्तित्वरूप—उत्पाद व्यय और ध्रौव्य-रूप हो उसे अस्तिकाय कहते है। २—वर्तना, अगुरुलघुके गुणके द्वारा होनेवाला परिवर्तन विशेष।

आपस मांहि मिलै नहि सदा, तातैं कायवंत नहिं कदा ॥२५॥
रूख चीकनादिक गुण जाहि, ते परमाणू हैं जग मांहि।
ततछिन खंध रूप ह्वै जायँ, याही तैं पुद्गल है काय ॥२६॥

आकाश प्रदेश वर्णन—

अडिल्ल।

परमाणू अविभाग एकसौ जानिये।
एकौ जितौ आकाश प्रदेश बखानिये ॥
कालाणू इक जहां धर्म आधर्म है।
पुद्गल जीव प्रदेश सबै लहि शर्म है ॥ २७ ॥

शिष्य प्रश्न

धर्म अधर्म अरु काल जीव जुत चार ये।
नभ दिक दश हि सबै कहौ किहि बांटये ॥
पै इक हेत अरूपी चारौं धरि लये।
पुद्गल मूरति वंत अनंते किम भये ॥ २८ ॥

उत्तर

दोहा—जथा एक मंदिर विषैं, बहुतक दीप प्रकाश।
बाधा कछु व्यापै नहीं, लहै सुजस अवकाश ॥२९॥
तैसे ही परदेश नभ, पुद्गल खंध बसाय।
ज्यों अनंत त्यों एक है, बाधा लहै न काय ॥३०॥

आस्रव तत्त्व वर्णन।

दोहा—जो कर्मनको आस्रवै, आस्रव कहिये ताहि।
भाव दरव दो भेद हैं, कहे जिनागम मांहि ॥३१॥

चौपाई।

मिथ्या अव्रत जोग कषाय, ए सत्तावन आस्रव आय।
ऐसैं भाव जीव जब करै, सो भावास्रव कर्मनि धरै ॥३२॥
तिनही भावनि करै उपाय, पुद्गल जीव कर्म परिणाय।
बंध्यौ तहां आतमा रास, सो है भाव बंध जग तास ॥३३॥
जो चेतन परदेश जु कहै, तिनपर कर्म पुराने लहै।
नूतन कर्म बंध बहु होय, द्रव्यबंध यह जानो सोय ॥३४॥
प्रकृतिबंध थितिबंध जु धार, अरु अनुभाग प्रदेश विचार।
प्रकृति प्रदेश जोग उतपत्त, थिति अनुभाग कषायनि जुत्त ॥३५॥

वन्ध तत्वका वर्णन-प्रकृति बंध निरूपण।

प्रथमहि ज्ञानावरणी कर्म, मति आदिकपन ज्ञान जु पर्म।
आछादै चेतन गुण सदा, जैसे वस्त्र ढाँकिये कदा ॥३६॥
दरशन वरण दूसरौ जान, नव प्रकृतिनि सोहै थिति थान।
तितकै रोकै कारज सबै, जैसे द्वारपाल नृप तबै ॥३७॥
कर्म वेदनी तृतिय बखान, खड्ग धार मधु लिप्त सु जान।
सरसों वत सो सुख्य हि करै, मेरू प्रमाण दुःख अनुसरै ॥३८॥
मोहन कर्म चतुर्थम लसै, आठवीस प्रकृतिनि करि वसै।
मदिरा वत ताको निरधार, दरशन चरण न हू है नार ॥३९॥
आयु करम पंचम विख्यात, चारो गति सौ आयु ददात।
दुःख सुख्य संपूरण धार, शृंखलवत तिहि भाव विचार ॥४०॥

१-मिथ्यात्वके ५, अविरति १२, योग १५, कषाय २५=५७।
२-प्रदेश, ३-ढँक देवे, ४-शहदसे लपेटी हुई तलवारकी धारके समान।

नाम करम छट्ठम जानिये, प्रकृति तिरानव तिहि मानिये।
चित्रकार वत है गुण सोय, नर सुर नारक पशु व जो होय ॥४१॥
गोत्र करम कहिये सातमा, ऊँच नीच कुल धरै आतमा।
उत्तम निंद्य लहै जन ताहि, कुंभकार वत कहिये जाहि ॥४२॥
अंतराय है अष्टम कर्म, भंडागारी गुण तिहि चर्म।
दान लाभ भोगो उपभोग, वीर्ज सहित पंचोनहि जोग ॥४३॥

दोहा—इत्यादिक वस्तु कर्मको, है स्वभाव बहु वेष।
प्रकृति बंध जिनवर कह्यौ, बंधे जीव प्रदेश ॥ ४४ ॥

स्थितिबन्ध निरूपण।

चौपाई।

ज्ञानावरण दर्शनावरण, वेदनि अंतराय थितिकरण।
कोड़ाकोड़ी सागर तीस, सो उत्कृष्ट कही जगदीश ॥४५॥
मोहिनि कर्म तनी थिति लिध, कोड़ाकोड़ी सत्तर सिध।
आयु कर्म उत्कृष्ट वखान, तेतिस सागरको परवांन ॥४६॥
कोडाकोड़ी सागर वीस, नाम गोत्र उत्कृष्ट थितीस।
अब जघन्य थितिको परवांन, जुदी जुदी सुनिये बुधवान ॥४७॥
करमवेदनी द्वादश जान कही मुहूरत इन उनमान।
अष्ट मुहूरत नामहि गोत्त यह जघन्य थिति तिनकी होत ॥४८॥
पंच करम जे शेष जघन्य, अन्त मुहूरत थिति पर मन्य।
मध्यमके तिन भेद अनेक, सर्व करम भुगतै जिय एक ॥४९॥

अथ त्रिपल्य प्रमाण वर्णन—

दोहा—अब त्रय पल्य प्रमाण मिति, कह्यौ अर्थ अवधार।
श्रद्धा कर भवि जन सुनौ, मन संदेह निवार ॥५०॥

चौपाई।

उत्तम भोगभूमिके भेड़, सात दिवसके बालक मेड़।
तिनको रोम आठ परवान, मध्यम भोगभूमि इक जान ॥५१॥
मध्यम भोगभूमि वसु[1] वार, भूमि जघन्य भेड इकवार।
जघन्य भोगभूमि वसु होइ, कर्मभूमि इक लहिये सोइ ॥५२॥
आठ रोमकी लीक प्रमान, लीख अष्ट इक राई ठान।
राई आठ एक तिल लेह, वसु तिल[2][3] इक जव उदर गनेह ॥५३॥
वसु जव उदरै उदर मिलाय, अंगुल[4] एक लहै समुदाय।
द्वादश अंगुलको पर मान, एक बिलांती[5] कहै बखान ॥५४॥
दोय विलाती हाथ विशेख, चार हाथ इक दंड हि लेख।
दंड सहस द्वै कोश जु गनौ, चार कोश लघु जोजन भनौ ॥५५॥
सो इक जोजन कूप खनाय, वलयाकृति विस्तार बनाय।
तितनौ ही गहरौ उनमान, अब सुनिये वह करै सुजान ॥५६॥
उत्तम भोगभूमि जो भेड़, ताके रोम लेइ सब खेड।
तेही रोम खंड बहु करै, यही कलपना मनमें धरै ॥५७॥

दोहा—अंगुल एक जु रोमके, बीस लाख खंडान।
सहस संतावन एक पुनि, बावन अधिक प्रमान ॥५८॥
ऐसे सूक्षम सो करै, फेर खंड नहि होय।
तिन रोमन कूपहि भरै, कूट दाबि दृढ़ सोय ॥५९॥
तिन रोमन संख्या कही, अंक हि पैंतालीस।
अब तिनको विवरण सुनौ, भाष्यौ वीर जिनेश ॥६०॥

१—आठ। २—३—आठ तिलका एक जौ। ४—आठा जौका एक अंगुल। ५—वालिश्त।

उक्तं च गाथा—

"चदु मेगं तय चदुगे पण दोण्हं च छक्क तय सुन्नं।
तय सुन्नं वसु दोण्हं सुन्नं तय तुरिय सत्त सत्तं च॥
सत्तं चदु णव पणगं मेगं दोण्हं च मेग णव दोण्हं।
अग्गो द्वारस सुन्नं अंकं पणताल रोम लघुपल्लं॥"

अब इन अंकनको लिख अर्थ, जिहि विधि जिन शासन लहि ग्रन्थ।
चार इक त्रय तुरिय जु पंच, दो छ तीन धरि शून्य त्रि पंच॥६१॥
शून्य आठ दो शून्य जु तीन, चार सात पुनि सातहि लीन।
सात चार नव पंचह एक, दोय एक नव दोइ विशेक॥६२॥
सात बीस ए अंकहि धरो, ता पर शून्य अठारह करो।
यही अंक हैं पैतालीस, कूप रोमकी संख्या दीस॥६३॥

[४१३४५२६३०३०८२०३४७७७४९५१२१९२ ०००००००००००००००००००]

सो सो बरष बीत जब जांहि, एक एक काढ़ो बुध ताहि।
कूप उदर जब खाली होय, सो व्यवहारपल्य अवलोय॥६४॥
भोगभूमिया नर तिरि एव, ज्योतिष व्यन्तर भावन देव।
कल्पवासिनी देवी सोय, वही पल्य जीवंत[1] क्रम जोय॥६५॥
आयु पल्य ऐसी विधि कही, अब सुन सागर पल्य जु सही।
लघु जोजन शत पंच प्रमान, जोजन महा एक उनमान॥६६॥
ताको कूप जु वे ही भांत, लहि विस्तार गभीर विख्यात।
पूरब रोम एक खंडान, ताके अंश शतक परवान॥६७॥

१—आयु।

तिहि रोमन सौं कूप भराय, सौ बरषैं गत एक कढ़ाय।
जब हि कूप वह खाली होय, तब उद्धारपल्य अवलोय ॥६८॥
ताके अंक तिरानव होय, इतनी वरष असंख्य जु सोय।
सो दश कोड़ाकोड़ी जाय, सागर आयु कह्यौ जिनराय ॥६९॥
देव नारकी अरु पट काल, कर्मनकी थितिको गन हाल।
अर कोड़ाकोड़ी पच्चीस, पल्यउधार रोम जे दीस ॥७०॥
द्वीपोदधिकी संख्या जान, नामावलि सबकी पहिचान।
ताके अंक गुनौ बुधवान, अष्टोत्तर शत सब परवांन ॥७१॥
सागर पल्य जानिये यही, राजू पल्य सुनो अब सही।
जोजन महा लाख इक जान, पूरव रीति कूप उनमान ॥७२॥
रोम अंश वह सौ गुन करै, इहि विधि महा कूपको भरै।
सौ सौ जब ही वर्ष गतंश, एक एक तब काटै अंश ॥७३॥
जब हि कूप वह खाली होय, अद्धा पल्य जानिये सोय।
ताके अंकनको परमान, इक सय पच्चासी धर ज्ञान ॥ ७४ ॥
दोहा—प्रथम पल्य संख्यात गन, दुतिय असंख्य वखान।
असंख्यात गन तीसरौ, यह जिन वचन प्रमान ॥७५॥
आव पल्य लघु प्रथम ही, मध्यम सागर पल्य।
उत्तम राजू पल्य त्रय, अब तिन गिनती शल्य ॥७६॥

चौपाई।

एक अंकको एक हि नाम, शून्य धरैं दश कहि अभिराम।
तृतिय अंक जुत सय गनि लेउ, चार अंकको सहस भनेउ ॥७७॥
षट् अंकनको लक्ष जु सोय, आठ अंकको कोड जु होय।
कोड़ाकोड़ी षोडश अंश, ताकी प्रमिति पदम निरसंश ॥७८॥

कोड़ाकोड़ि दह पदम जु जहां, अंक इकतीसहि गनियै तहां।
ताको नाम कल्प परवान, इतनी संख्या कहि जिनवान ॥७९॥
कल्प करौ सय कोड़ाकोड़ि, तिहि सैंताल अंक लिखि जोड़ि।
जो व्यवहार पल्य वा सात, सो संख्यात प्रमिति यह ठान ॥८०॥
आव पल्य याही सौं कहै, अब उद्धार पल्य संग्रहै।
संख्य संख्यगुन कीजै जोर, होय असंख्य प्रमाण बहोर ॥८१॥
ते तिगानवे अंकहि गनौ, सागर आव पल्य सो भनौ।
असंख्य असंख्य गुण अंकहि धरौ, इक सय पचासी ऊपरौ ॥८२॥
अद्धा पल्य नाम है सोय, सो दश कोड़ाकोड़ि होय।
अद्धा सागर ताहि बखान दो सय अंक गनौ बुधवान ॥८३॥
ते दश कोड़ाकोड़ि समुद्र, सूची एक गनौ धर रुद्र।
पन्द्रह उत्तर दो सय अंक, सुइ दश कोड़ाकोड़ी वंक ॥८४॥
तासौं कहै जगत घन ऐह, अंक दोयसै तीस परेह।
दश कोड़ाकोड़ी घन ऐह, सो जानौ इक पद कहि ऐह ॥८५॥
अंक दोयसै ठानि पैंताल, सो दश कोड़ाकोडी साल।
जो कहिये जग श्रेणि प्रधान, अंक दोयसै आठ बखान ॥८६॥
ताके भाग सात कर देव, एक भाग राजू गनि लेव।
अब सब अंकनको परमान, लिखौं ताहि भ्रम नाशन जान ॥८॥×

× अलौकिक गणितका स्पष्ट और विशद विवेचन स्वर्गीय प० गोपालदासजी बरैयाने स्वरचित 'जैनसिद्धान्तदर्पण' पूर्वार्द्धमे पृष्ठ ६४ से पृष्ठ ७० तक किया है। विशेष जिज्ञासुओंको वहांसे जानना चाहिये। विस्तार भयसे यहां उसे उद्धृत नहीं किया है।

अब मुहूर्तको सुनिये भेव, जिहि विधि कह्यौ वीर जिनदेव।
समय असंख्य आवली एक, आवलि बारह स्वासहि टेक ८८॥
सात स्वासको स्तोक भनेइ, सात स्तोकको लव कर लेइ।
आठ आठ तिस लव परवांन, एक घड़ीको यह उनमान ॥८९॥
दोय घड़ी जब वीतै सोइ, एक मुहूरत काल सु होइ।
ताके स्वास सहस त्रय ठान, सात सया य तिहत्तर जान ॥९०॥
तामें कमी करो बुध धार, स्वास सतासी आवलि बार।
अंत मुहूरत ताकौ नाम, आगे और सुनो अभिराम ॥९१॥
तीस मुहूरत निश दिन जोय, पन्द्रह दिवस पक्ष इक होय।
दोय पक्ष गत मासहि एक, द्वादश मास वर्ष इक टेक ॥९२॥
दोहा—इहि विधि करमन थिति बंध्यौ, सागर मिति उतकिष्ट।
और जघन्य मुहूर्त गनि, त्यागत भव्य अनिष्ट ॥९३॥
मध्यमके है भेद बहु, तारतम्य कर लेख।
जुदी जुदी सब प्रकृति थिति, कर्मकाण्डमें देख ॥९४॥

अनुभाग बन्ध निरूपण—

चौपाई।

अब अनुभाग बन्ध दुइ भेद, शुभ अर अशुभ सुख्य दुख खेद।
शुभको उदय चार विधि बुधा, गुड़ खांडहि मिश्री जुत सुधा॥९५॥
अशुभ भेद पुनि चार प्रकार, कांजी बिम्ब विष त्रय धार।
हालाहल जुत चारों येह, इनसौं दुख व्यापै अधिकेह ॥९६॥
छिनमें सुख छिनमें दुख होइ, यह अनुभाग बंध अवलोइ।
इहि विधि बंध्यौ जीव संसार, कर्मनसौं पावै नहि पार ॥९७॥

प्रदेश बंध निरूपण—

जीव प्रदेश असंख्य प्रमान, पुद्गल नंतानंत वखान।
तिन परदेशन चेतन बंध्यौ, दरशन ज्ञान चरन नहि सध्यौ॥९८॥

दोहा—इहि विधि चारों बंध सौं, दुख सुख बंध्यौ जीव।
आराधन रूपी खडग, बंध काट शिव पीव॥९९॥

संवर तत्त्वका वर्णन—

चौपाई।

रागादिक परिणामन जीव, त्यागै तिन्हें सर्वथा सीव।
आस्रव तनें निरोधन हेत, सो सु भाव संवर कहि देत॥१००॥
द्रव्यास्रवको करो निरोध, सो ही संवर द्रव्य परोध।
पंच महाव्रत समिति जु पंच, तीन गुप्ति दश धर्म हि संच॥१०१॥
द्वादश अनुप्रेक्षा चितौन, जय बाईस परीषह मौन।
ए संतानव डाटै धरै, ऐसी क्रिया द्रव्य संवरै॥१०२॥

दोहा—जैसे नौका छिद्र जुत, जल आवे चहुँ ओर।
सो कर्मास्रव रोकिये, संवर डाटै जोर॥१०३॥

निर्जरा तत्त्वका वर्णन—

चौपाई।

कह्यौ निर्जरा दो परकार, सविपाकी अविपाकी सार।
सविपाकी सब जीवन होइ, अविपाकी मुनिवरको जोय॥१०४॥
तपकर वल कर्मन भोगवै, सोई भाव निर्जरा तवै।
बँधै कर्म छूटैं जिहि वार, दर्व निर्जरा कहिये सार॥१०५॥

१—आस्रवको रोकने वाले।

मोक्ष तत्त्वका वर्णन—

सकल करम खय कारण भाव, तासौं भाव मोक्ष ठहराव।
संपूरण कर्मन खय करै, द्रव्य मोक्ष अविनाशी धरै ॥१०६॥
बँध्यौ कर्म बंधन बहु जीव, ताकौ तोड भयौ जग-पीव।
लोकशिखर पर कीनो वास, सुख अनंत उपमा नहि जास ॥१०७॥
अहमिन्द्रादिय देवधिराज, चक्री खग आदिक नर साज।
भोगभूमिया पशु परजाय, व्यंतर और सबै समुदाय ॥१०८॥
इनके सब सुख पिंडी करै, एक समय सिद्धनको धरै।
तौ जिहि रामसर पुरवै नाहि, सदा सुख्यकी उपमा काहि ॥१०९॥
सप्त तत्त्व संक्षेपहि कहै, पाप पुण्य जुत नव पद लहै।
ताको भेद सुनौ थिर होइ, गर्भित प्रश्न शुभाशुभ सोइ ॥११०॥
पाप प्रगट जगमें दुखखान, निश्चय दुर्गतिदायक जान।
गहै पंच मिथ्यात्व निकूर, चार कषाय असंजम पूर ॥१११॥
सकल प्रमाद जोग थिर थाय, सप्त व्यसन धारै अधिकाय।
आठौं मद गर्वित द्रग[1] अंध, शंकादिक वसु मल अघ बंध ॥११२॥
निशदिन रौद्र ध्यान संचरै, दुरलेश्या दुर्बुधि विस्तरै।
कुगुरु कुदेव सेव अति करै, यह विधि पाप अनुग्रह धरै ॥११३॥
कुटिल कृपण पर धन हर लेइ, राग द्वेष लंपट अधिकेइ।
भूल्यौ क्रोध मोहवश पाय, निर्विचार निर्दय दुखदाय ॥११४॥
पर निन्दा निज करै प्रशंस, वचन असत्य कहै तजि संश।
करै कुग्रन्थ तनौं अभ्यास, निज श्रुतको दूपै कर हास ॥११५॥

१–मिथ्यादृष्टि।

करै अक्रिया दुरधर दीन, पूजा दान क्रिया कर हीन।
क्रूर करम बांधै शठ एम, जाने नहीं आतमा नेम ॥११६॥
शील आचरण तप व्रत विना, भवसागर दुख जाय न गिना।
करै पापसौं अशुभ उपाय, इहि विधि धरै नरक परजाय ॥११७॥
प्रथम आदि सप्तम परजंत, लहै दुखतैं दुख अनंत।
छिनक एक तहँ सुखको नाश, दुख वैसान्दर[1] घृत परकाश ॥११८॥
मायावी अति कुटिल सु भ्रम्यौ, निशि भक्षे परनार सुरम्यौ।
मूरख महा कुमति श्रुत धरै, पशु अरु वृक्षहि सेवा करै ॥११९॥
नित्य करै असनान प्रभात, भाव अशुद्ध प्रगट अवदात।
जात कुतीरथको अगवान, जिनवर धर्म वहिर्मुख ज्ञान ॥१२०॥
महा कुशीली अव्रत जोत, लेश्या जिनकौ सदा कपोत।
इत्यादिक सब पाप संजोग, मानत मूढ़ कर्म रस जोग ॥१२१॥
आरत ध्यान मरण जब करै, गति तिरजंच जाय अवतरै।
सहै दुःख वहु काल प्रजंत, को कवि वरन लहै नहि अंत ॥१२२॥
तीर्थंकर सतगुरु गुनवंत, ज्ञानी धर्म व्रती मुनि संत।
महातपोधन चारित धनी, सेवा भक्ति करैं तिन तनी ॥१२३॥
शुद्धाशय जिन गुण अधिकाय, श्रीजिन गुरु सेवा उर ल्याय।
इत्यादिक शुभ पुण्य उपाय, आरजखण्ड मनुष पद पाय ॥१२४॥
उत्तम पद पावै सो तहां, राज्य विभूति सुख्य अति जहां।
तहँ तैं तप करकै शिव सधै, अरु पुन तीर्थंकर पद वंधै ॥१२५॥
पंच महाव्रत अणुव्रत तेह, मुनि श्रावक पालैं धर नेह।

१—अग्नि।

जे कषाय इंद्रिय दृढ़ चोर, तिनकौ नाश करै तप जोर ॥१२६॥
धर्म शुकल ध्यावे शुभ ध्यान, आरति रौद्र निकंदन जानें।
मन वच क्रम दृढ़ धरै विराग, भव दुख भोग अंगपर त्याग ॥१२७॥
क्षमा आदि दशलक्षण धर्म, इत्यादिक आचरण सुशर्म।
मरण समाधि साध शुभ ध्यान, पावै अमर लोक अस्थान ॥१२८॥
सागर वृद्ध तहां सुख लहै, सपने मांहि दुःख नहि गहै।
मार्दव भाव सहित निज हियै, अरु आर्जव परिणामहि कियै ॥१२९॥
अति संतोषी सद-अचार, मन्द कषाय चित्त अविकार।
उत्तम पात्र सु दानहि देइ, भक्तिभाव मनमें अधिकेइ ॥१३०॥
ता फल भोगभूमि पद लहै, महा भोग अनुपम सुख गहै।
पुण्यतनों फल इहि विधि सार, पावैं श्रावक मुनि निरधार ॥१३१॥
कायकलेश विविध आचरै, तप अज्ञान मूढ़ जे करैं।
ते मर नीच देवगति लहैं, व्यन्तर आदि अशुभता वहैं ॥१३२॥
बहु मायाधारी जगमांहि, कामी काम तृपत नहि काहि।
पर दारासौं दोष विचार, अशुभ अंग मद सहित विचार ॥१३३॥
मिथ्यामती राग कर अंध, मूढ़ कुशीली पाप प्रबंध।
ते नर मर त्रिय वेद लहाय, होय कुरूप दुरगंधा पाय ॥१३४॥
शुद्धाचरण शील परधान, माया कौटिलता किय हान।
हिये विचार चतुर अति दक्ष, पूजा दान करत परतक्ष ॥१३५॥
इन्द्रिय अलप सुख्य सन्तोष, दर्शन ज्ञान अभूषण पोष।
पुरुषवेद ते लहैं महान, भव भवमांहि करैं अपहान ॥१३६॥
काम अन्ध लंपट परत्रिया, शील हीन व्रत वर्जित हिया।

नीच धर्मरत है दुरधिया, मारग नीच प्रवर्तन क्रिया ॥१३७॥
सो नरवेद नपुंसक लहै, महादुःखको कारण यहै।
काय कुफल इहि बहु परकार, देख्यौ प्रगट होत दुख भार ॥१३८॥
जे पशु लादैं भार अनंत, जात कुतीरथ निर्दय वंत।
ते मरि होंय पंगुगति निंद, तहां लहैं दुख दारुण वृन्द ॥१३९॥
जिन सिद्धांत दोष अति धरैं, कुमत ग्रन्थकी वंदन करैं।
परनिंदा सुन हरषैं अङ्ग, विकथा वचन कहैं मन रंग ॥१४०॥
धर्म वचनको करै अभाव, ते बहिरा उपजैं तज चाव।
ज्ञानावरणी कर्म उदोत, पाप तनें कारण सब होत ॥१४१॥
जिन श्रुत देख नमन नहिं करै, पर विभूतिको लख परै जरै।
करै कुदेव कुतीरथ जात, पर सुत देखै मन न सुहात ॥१४२॥
ते नर मरकै उपजैं अन्ध, दर्शनावरणीको यह बंध।
महादुःख कर पीड़ित तेह, भवसागर तट लहत न जेह ॥१४३॥
विकथा वचन कहै शठ सदा, दोष अदोष न समझै कदा।
निंदत जिन श्रुत सागर धर्म, पढ़ैं कुशास्त्र हर्षके पर्म ॥१४४॥
जिनवर पूजा भक्ति न करै, सप्त तत्त्व श्रद्धा नहि धरै।
अति अज्ञान मांहि लवलीन, ते मूका उपजैं श्रुतहीन ॥१४५॥
जो मन इच्छै सो ही करै, हिंसा पाप गर्व विधि धरै।
ज्यों गयंद मदमत्त अजान, तैसे ही बहु नर विन ज्ञान ॥१४६॥
श्री जिनदेव सुगुरु सिद्धान्त, इनहि भक्ति सुपने न लहांत।
ते नर विकल होंहि अधिकार, मन ज्ञानावरणी अनुसार ॥१४७॥

१—ज्यादा, २-ईर्षा करे।

सप्त व्यसन सेवत जे कुधी, विष आमिष¹ लंपट मन मुधी।
और पुरुष जे व्यसनन धरैं, तिनसौं मित्रभाव चित करैं ॥१४८॥
जे मुनि तप व्रत आदिक पूर, तिन साधुनितैं तिष्ठत दूर।
निज वपु पोष करैं अधिकार, भुगतैं भोग वृषभ उनहार ॥१४९॥
निशि भक्षैं अरु खाँय अखाद², निर्दय वृथा करैं विषवाद।
ते नर रोग शोकको गहैं, विह्वल तीव्र वेदना सहैं ॥१५०॥
जे शरीर ममता परिहरैं, तप व्रत धर्मध्यान आचरैं।
सब जिय जानै आप समान, दयाभाव उर करहि प्रमान ॥१५१॥
दुःख शोक व्यापै नहि कदा, ते नर सुखिया उपजैं सदा।
रोग रहित सब निर्मल गात, पुण्य तनों यह फल अवदात ॥१५२॥
तनको संसकार नहि करैं, जमै³ अरु नैमै⁴ जोग तप धरैं।
इहि विधि कायक्लेश अपार, करत पुरुष जे बहु परकार ॥१५३॥
जिनवर चरणकमल जुग नमैं, परमभक्ति जुत पापनि वमैं।
पुण्य प्रकृति शुभ पाय संजोग, ते नर लहैं दिव्य तन भोग ॥१५४॥
कुगुरु कुदेव कुधर्महि भजैं, सुगुरुदेव श्रुत श्रद्धा तजैं।
होइ कुरूपी ते दुख पूर, अशुभ उदय अर पाप अंकूर ॥१५५॥
जिनवर परम भक्ति उर धरैं, अर मुनिवरकी सेवा करैं।
तप व्रत धर्म आदि आचार, जम अर नियम दोय परकार ॥१५६॥
तन ममत्व नहि राखैं लेश, जीतैं इंद्रिय तस्कर वेष।
ते नर सुभग होंहि जगमांहि, सब जगको प्रिय करता ताहि ॥१५७॥

१—मांस, २—अखाद्य—अभक्ष्य ३—यम—जीवनपर्यंन्तके लिये प्रतिज्ञा लेना, ४—नियम—कालकी मर्यादा लेकर प्रतिज्ञा लेना।

मम मलीन मल लिप्तहु अङ्ग, महा घिनावन शठ सर्वंग।
रूप आदि मद धारैं गर्व, परतिय द्वेष विचारैं सर्ब ॥१५८॥
दुर्जन पाय प्रीति बहु करै, सुर्जन[1] देख वैर मन धरैं।
ते नर दुर्भग होंहि अपार, निंदत विश्व दुःखको भार ॥१५९॥
देयँ कुमत दीक्षा जग जेह, पर वंचक उद्यत अति तेह।
पूजैं कुधिय कुदेव कुग्रंथ, व्यभिचारी जाने नहि पंथ ॥१६०॥
सत्य असत्य न जानें भेद, मतिज्ञानावरणी यह खेद।
निंदक महापापको मूर, अशुभ उदय दुर्गति अंकूर ॥१६१॥
तत्त्व अतत्त्व विवेकी जेह, मृषा वचन बोलैं नहि तेह।
सबको देहि सुबुधि उपदेश, तप अरु धर्म आदि बहु वेष ॥१६२॥
सार वस्तुको ग्राह जु करैं, और कुमति विधि सब परिहरैं।
मंद करैं मतिज्ञानावरण, मतिज्ञान जगमें उद्धरण ॥१६३॥
श्रीजिन पाठ पठन नहि करै, मद अज्ञान गर्व उर धरैं।
दुराचार पालैं क्षुध होइ, कुश्रुत पाठ विस्तरहिं सोइ ॥१६४॥
पर पीडा कर बांधै कर्म, बोलैं वचन असत्य अधर्म।
मूरख महानिंद्य जगमांहि, श्रुतज्ञानावरणी लहि तांहि ॥१६५॥
जिन गुण पाठ पठन जे करैं, काल अकाल भेद उद्धरैं।
भव्यनि देय धर्म उपदेश, शुभ मारग वरतावत शेष ॥१६६॥
कहै सत्य वच सब सुखदाय, मृषाभाव नहि मन वच काय।
श्रुतज्ञानावरणी त्रय तजै, श्रुतज्ञान पद परगट भजैं ॥१६७॥
विरकत है भवभोग शरीर, जिन सदगुरु सेवत मन धीर।

१—सुजन—उत्तम पुरुष।

धर्म अधर्म विवेकी जेह, तत्त्व आदि मन चिंतत जेह ॥१६८॥
दुराचारतैं रहित पुनीत, कौटिलतादि विवर्जित मीत।
शुभ आशयते ही नर कहै, पुण्य उदय सब शुभपद लहै॥१६९॥
पर तिय हरण निपुण जे सदा, कुटिल चित्त है जड़ सरवदा।
जंत्र मंत्र उच्चाटन आदि, चेटक नाटक करैं अनादि॥१७०॥
दुराचार पालैं अति घनौ, दुरबुद्धी उर है तिहि तनौ।
अशुभाशय ते ही नर जान, पाप तनैं कारण यह मान॥१७१॥
जे बहुविध जिन पूजा करैं, धरमभाव निशदिन आचरैं।
दैंय सुपात्रहि उत्तम दान, परम भक्ति अति उरमैं आन॥ ७२॥
तप व्रत उर आचरण कराहिं, लोभ रहित मन विकलप नाहिं।
सार संपदा पावैं तेह, अनवांछै आवैं गृह तेह॥१७३॥
पात्रदान जे समरथ नाहिं, जिन पूजैं नहिं धर्म कराहिं।
पर उपकार न किंचित करैं, तृष्णा अति लक्ष्मीकी धरैं॥१७४॥
लोभवंत है किरपण महा, किरिया व्रत नहि जानै कहा।
सो नर दुखित दरिद्री होई, भव भव सदा निरधनी सोई॥१७५॥
पशु अर नरको करै विजोग, बंधादिक उपजावै सोग।
पर अस्त्री पर धन जे हरैं, शील रहित शठ पापहि करैं॥१७६॥
जनम जनम ते लहैं विजोग, सुतकामिनि बांधवको सोग।
इष्ट वस्तुको विकलप पाय, पीड़े हृदय दुःख अधिकाय॥१७७॥
सकल जीव रक्षा उर धरे, बंधु विजोग न कबहूं करे।
जिन शासन पोषत परवीन, व्रत अरु धर्मध्यान लौलीन॥१७८॥
ते नर पावें सब संजोग, सुख अभीष्ट सुत संपत भोग।

बांधव सुजन गेह वर नार, पुण्य सफल कारण सविचार ॥१७९॥
उत्तम पात्र दान जे देई, भक्ति भावना मन वच लेई।
जिन प्रतिमा चैत्यालय करै, धर्मध्यान अति उरमें धरै ॥१८०॥
पूरव संसकारतै लहैं, श्रेष्ठ सुपद उत्तम कुल गहैं।
अरु परिजन बहु सेवैं पाय, सब सुख होय पुण्य सौं आय ॥१८१॥
दान देनको कृपण अतीव, जिन पूजाकी गहत न सीव।
ते मर दुर्गति भव भव भ्रमैं, सब परजाय आदि बहु गमैं ॥१८२॥
जे सेवैं अरहंत गणेश, ध्यावैं तिन गुण जगत महेश।
शील सहित काया दृढ़ राख, ते गुणवान कहै बुध भाख ॥१८३।
दोष तनों बहु ग्राह जु करैं, महामूढ़ अवगुण विस्तरैं।
करैं कुदेव सेव सुख मान, धरैं डिंभ आरंभ अजान ॥१८४॥
सीख कुलिंगीकी उर धरैं, अरु मिथ्या मारग विस्तरैं।
ते निर्गुण उपजैं जगवास, विन सुगंध ज्यों फूल कपास ॥१८५॥
तीन जगत स्वामी अरहंत, गुण गणेश आगम कथयंत।
तिनकी मन वच सेवा करैं, अरु रतनत्रय तप उर धरैं ॥१८६॥
धर्मध्यान आराधैं सोइ, मिथ्यामत त्यागैं भ्रम खोई।
पुण्यवंत उपजैं नर सोइ, विश्व संपदा पावहिं जोइ ॥१८७॥
दया रहित जे व्रत कर हीन, पर बालकको हनत मलीन।
करैं बहुत मिथ्यामत साज, निज संतान सिद्धिके काज ॥१८८॥
चंडिक क्षेत्रपालकी सेव, इत्यादिक पूजैं बहु देव।
अलप आयु तिनके सुत लहैं, पापवंत दारुण दुख सहैं ॥१८९॥
अहिंसा आदिक व्रत संजुक्त, श्रद्धा कर मानैं जिन सुत्त।

मिथ्या मारगको परिहरैं, इष्ट वस्तुको साधन करैं ॥१९०॥
तिनके रूपवंत सुत होइ, पूरण आयु लहै पुन सोइ।
परम प्रतापी सुखको मूर, सकल पुण्य कारण भरपूर ॥१९१॥
दीक्षा दान धर्म तप ध्यान, कायोत्सर्ग नियम व्रत जान।
जे मुनीश इनतैं चल जाहिं, ते कहिये कातर जग मांहि ॥१९२॥
जे निज धीरज परगट करैं, महादुसह तपको संचरैं।
ध्यानाध्ययन जोग थिर थाय, तीन गुपति पालैं अधिकाय ॥१९३॥
सहैं विषम उपसर्ग अपार, क्षमाभाव धीरज उर धार।
इहि विधि करैं कर्म अरिघात, ते मुनि धीरवीर अवदात ॥१९४॥
जिनशासन निंदत जे क्रूर, मुनि श्रुत श्रावक आदि अक्रूर।
करैं प्रशंसा मिथ्या देव, कुश्रुत कुतपसीकी बहु सेव ॥१९५॥
क्रोध मान माया जुत होइ, अजस कर्म बांधै शठ सोइ।
ते नर निंद्य जु तीनौं लोक, अति अपजस पावैं दुख थोक ॥१९६॥
करैं दिगम्बर गुरुकी सेव, ज्ञानवंत गुण अलख अभेव।
व्रत आचार करै समुदाय, पालैं शील त्रिविध दृढ़ काय ॥१९७॥
तप जप धर्मध्यान उर लाइ, सबको हितमित वचन सुनाइ।
भव भव शीलवंत पुन होइ, स्वर्ग मुक्तिफल पावै सोइ ॥१९८॥
सेवैं कुगुरु कुदेव कुपंथ, शील विना नहि गहैं सुपंथ।
सुखं चंक्षं उर लेश्या नील, लहैं कुगति तज भव भव शील १९९॥
जिन गणधर गुरु मुनि गुणसिंध, सम्यग्दृष्टी ज्ञान प्रबंध।
चरणकमल पूजै कर सेव, तिनगुण प्रापति कारण एव ॥२००॥

१–चाह।

ये ही उत्तम पुरुष प्रधान, इनको तज सेवैं अघवान।
इहि भव परभव दुर्गति गहै, ते दुर्जन मूरख पद लहैं ॥२०१॥
तत्त्वातत्त्व कुगुरु गुरु धर्म, देव अदेव जु धर्माधर्म।
करि विवेक पूजें भवि जीव, तप अरु ध्यान विचार सदीव ॥२०२॥
जो इहि भव सूक्षम बुधि होय, तो परभव पावै बहु सोय।
ज्यों सुरेश पावै त्रय ज्ञान, ततछिन प्रगट लहैं इक थान ॥२०३॥
देव धर्म गुरु निन्दा करैं, जिनमत देख दोष उर धरैं।
अपर देव पूजैं मन गूढ़, ते उपजहिं दुरबुद्धी मूढ़ ॥२०४॥
तीर्थंकर गुरु संघ हि पाय, चरणकमल बन्दैं शिरनाय।
नितप्रति भक्ति करैं मन लाय, जस कीरति गुण कहैं बढ़ाय ॥२०५॥
निज गुण निन्दा जे भवि करें, अपर दोप उपगूहन धरैं।
ते परभव पावैं शुभ गोत तीन जगत जन सेवक होत ॥२०६॥
निजगुण प्रगट करैं जन जेह. परको दोष कहै अधिकेह।
नीच देव पूजे अज्ञान, कुगुरु कुदेव सेव उर आन ॥२०७॥
ते नर होंय नीच पद ताय, नीच गोत्र पावें दुखदाय।
भाग हीन दालिद्री महा, पाप तनौं कारण शठ लहा ॥२०८॥
जे मिथ्या मारग अनुराग, कुगुरु कुपथ सेवैं दुरभाग।
पूरव संसकारके जोग, पावें अशुभ जन्म अति शोग ॥२०९॥
जिन सिद्धान्त सुगुरु अर धर्म, ज्ञान चक्षु है जिनके पर्म।
भक्ति सहित सेवैं जुग पाय, ते परभव तिन समगुण थाय ॥२१०॥
अन्य देवको शरण जु लहै, सपने मात्र कुपथ पुन गहै।
श्री जिनधर्म न श्रद्धा गहै, मरि कैं अधोगमनते लहैं ॥२११॥
कठिन जोग धारैं उत्सर्ग, मौन सहित धारैं तप वर्ग।

आप शक्तिको परगट करैं, ते नर स्वर्ग मुक्ति पद धरैं ॥२१२॥
निज वीरज आछादै नाहि, तप व्रत धर्म धरै उमगांहि।
करैं ध्यान उत्सर्ग प्रसिद्ध, तप प्रसिद्ध शुभ कारण ऋद्ध ॥२१३॥
खोदन गृह व्यापार जु करै, जोरै पाप कर्म बहु धरै।
अरु परवात बात बहु कहै, तप असमर्थ निन्द्य वपु लहैं ॥२१४॥

दोहा—इहि विधि यह संसार दुख, सुख नहि जीव लहंत।
भविजन सुन मन चेतकर, धरौ धरम जग तंत ॥२१५॥
शिवपद वीरज धर्म है, देखौ निज उर ढोहि।
क्षमा सलिल सौं सींचिये, अल्पकाल फल होहि ॥२१६॥
पाप पुण्य अधिकार यह, प्रश्न शुभाशुभ सार।
वीरनाथ जिन प्रगट कहि, सब जीवन हितकार ॥२१७॥
सुन हर्षी द्वादश सभा, बाढ्यौ आनंद कन्द।
ज्यों सूरजके उदयतैं, विकसै वारिज[1] वृन्द ॥२१९॥

गीतिका छन्द।

इहि भांति कर्म विपाक जग जिय, पाप पुण्यहि जोगवै।
अशुभ शुभ जिन करहि करणी, दुख सुख तसु भोगवै ॥
लोह कंचन पगन वेरी[2], दोइ विधि छूटै जबै।
तबहि शिवपुर पंथ पावै, 'नवलशाह' सु वीनवै[3] ॥२१९॥

इति श्री कविरत्न नवलशाह विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमें भगवत्कृत दिव्यध्वनिमें षड्द्रव्य-पञ्चास्तिकाय-सप्ततत्त्व-नवपदार्थका वर्णन करनेवाला चतुर्दश अधिकार पूर्ण हुआ।

१-कमलोंका समूह, २-पांवकी वेडी, ३-बिनती करते है, कहते है।

पञ्चदश अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा- दोष अठारह रहित प्रभु, गुणहि छयालिस पूर।
प्रनमौं वीर जिनेशपद, दहौ कर्म अघ चूर ॥ १ ॥

सम्यग्दर्शन तथा चारित्रका वर्णन—

चौपाई।

अब सुन गौतम धर्म निधान, कहौं मुक्तिमारग सुखखान।
समकित प्रथम धरै जब जीव, श्रावक जतिवर धर्म अतीव ॥ २ ॥
धर्ममूल है समकित सार, जब जिनवाणी निहचै धार।
गुरु निरग्रंथ सत्य मन नमैं, दया धर्म पालैं अघ वमैं ॥ ३ ॥
अनंतानुबंधी हैं चार, दर्शन मोह तीन अवधार।
सात प्रकृति ये उपशम करै, जब जिय उपशम समकित धरै ॥ ४ ॥
तब ये सात प्रकृति खय होइ, क्षायिक समकित जानों सोइ।
कछु उपशम कछु नाश जु लहै, वेदक समकित तासौं कहैं ॥ ५ ॥
दोहा—सो समकित नव भेद जुत, कह्यौ मार्गणा मांहि।
अब उपजत दश भूमिका, बरणौ आगम पाहि ॥ ६ ॥

चौपाई।

आज्ञा[१] मारग अरु उपदेश, सूत्र बीज सम्यक्त्व महेश।
संक्षेपहि विस्तार जु अर्थ गाढ़ परम अवगाढ़ दशार्थ ॥ ७ ॥

१—आज्ञामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात्।
विस्तारार्थाभ्यां भवमवगाढपरमावगाढे च ॥ ११ ॥
—आत्मानुशासन।

आज्ञा सम्यक्त्वका लक्षण—

जो सर्वज्ञ वचन नय कह्यौ, षट द्रव्यादिक रुचि सरदह्यौ।
करै गरु व श्रद्धा नग्नार, सो आज्ञा सम्यक्त्व हि धार॥ ८ ॥

मार्ग सम्यक्त्वका लक्षण—

जो निःसंग रहै थिर चित, पानपात्र लक्षण जु पवित्त।
मोख मार्ग सुन श्रद्धा करै, सो मारग सम्यक्त्व हि धरै॥ ९ ॥

उपदेश सम्यक्त्वका लक्षण—

त्रेशठ पुरुषादिक जु महान, तिन पुराण सुन श्रद्धावान।
निश्चय नय जो करहि प्रतीत, सो सम्यक उपदेश पुनीत॥१०॥

सूत्र सम्यक्त्व—

तप आचार क्रिया अस्तवन, इन पै रुचि राखै बुध वदन।
सूत्र सम्यक्त्व कहावे सोइ, भविजनको हित करता होइ॥११॥

बीज सम्यक्त्व—

सकल पदारथ बीजसु पाय, सूक्षम अर्थ सुनौ चित लाय।
भविजन तस श्रद्धा उर आन, सो बीरज सम्यक्त्व प्रमान॥१२॥

संक्षेप सम्यक्त्व—

जो संक्षेप कहै बुद्धिवान, सुने पदारथ श्रद्धावान।
सो सम्यक्त्व जान संक्षेप, भविजनको सुखकरन ससेप॥१३॥

विस्तार सम्यक्त्व—

नय विस्तार पदारथ कहै, भेदाभेद सबै सरदहै।
निश्चय मन इमि करहि विचार, सो समकित कहिये विस्तार॥१४॥

अर्थ सम्यक्त्व—

अंग सिन्धु अवगाहन करै, बहु विस्तार वचन परिहरै।
अर्थ मात्र रुचि धारै जबै, अर्थ सम्यक्त्व कहावै तबै॥१५॥

अवगाढ़ सम्यक्त्व—

अंग भावना उरमें धरै, मन प्रतीति रुचि श्रद्धा करै।
क्षीण कषाय गहै जुत भार, सो अवगाढ़ सम्यक्त्व जु धार॥१६॥

परमावगाढ़ सम्यक्त्व—

केवलज्ञानी वचन प्रमान, करै अर्थ श्रद्धा रुचि ठान।
यह सम्यक्त्व परम अवगाढ़, भविजन मन सुख करता बाढ़॥१७॥

दोहा—उतपति समकित चिह्न गुण, भूषण दूषण नाश।
अतीचार संयुक्त वसु, बरनौं ताहि प्रकाश॥१८॥

चौपाई।

कै जिय उपजै सहज सुभाय, कै सतगुरु उपदेश बताय।
गति चारोंमें समकित लहै, यह उत्पत्ति भेद जिन कहै॥१९॥
सत्य प्रतीति अवस्था ठान, समता सब सौं दिन छिन मान।
यही लाभ छिन छिन जब होइ, समकित नाम कहावै सोइ॥२०॥
चेतन परको न्यारौ जान, तामें कछु विकलप नहि आन।
रहित प्रपंच सहज हित धार, समकित चिह्न यही सुखकार॥२१॥
करुणा वातसल्य जुत होइ, स्वाजनता स्वय निंदा होय।
समता भक्ति विराग वखान, धरम राग गुण आठ प्रमान॥२२॥
चित प्रभावना भाव सहीत, हेय उपादे कहिये मीत।
धीरज हरष सहित परवीन, ये ही पांचौं भूषण लीन॥२३॥

दोहा—अष्ट महामद अष्ट मल, षट् अनायतन दीस।
तीन मूढ़ संयुक्त सब, ये दूषण पचीस॥ २४॥

चौपाई।

जाति रूप कुल ईश्वर जुता, तप बल विद्या लाभ जु इता।
इन अष्टोंको मद जो करै, लहै दुःख नरकहि संचरै ॥२५॥
आशंका अस्थिरता वांछ, ममता दुष्ट दशा दुर गंछ।
वात्सल रहित दोष परभाष, तजि प्रभावना वसु मल शाख ॥२६॥
कुगुरु कुश्रुत कुधर्महि धरै, अरु सराहना इनकी करै।
षट अनायतन जानौ यही, महा दुःखको कारण सही ॥२७॥
देव कुदेव बराबर मान, सुगुरु कुगुरु इक सम पहिचान।
पृथक पृथक नहि अंतर दीस, तीन मूढ ऐ दोष पचीस ॥२८॥
ज्ञान गरव कर अरु मतिमन्द, निठुर वचन भाषै दुखकन्द।
रुद्रभाव पुनि आलस धार, ये ही नाश पंच परकार ॥२९॥
लोकहास भवभोग सुहाइ, मिथ्यामारग भगति, लहाइ।
मिथ्या दरशनि, अग्र जु सोच. अतीचार ये पांचों मोच ॥३०॥

मिथ्यात्व निरूपण—

जे मिथ्यात करैं दुखदाय, समकित हेतु न तिनैं सुहाय।
पूजैं हाथी घोडे गाय, ते मरि पावहि दुख परजाय ॥३१॥
वड़ पीपल ऊमर आंवरी, तुलसी देव निगोद जु भरी।
इनकी सेवा जो नर करैं, निश्चय ते ही गतिको धरैं ॥३२॥
व्यन्तर आदि सवी शीतला, सूरज लखे चन्द्रकी कला।
यक्ष नाग गृह-देवी जान, नदी होस जे आयुध मान ॥३३॥

१—सम्यग्दर्शनके ये अतिचार पूर्व आम्नायसे कुछ विरुद्ध पड़ते है।

गोवरकी पूजा जे करैं, वैवै भुंजरिया मूढ़ सुजाय।
पितर सराध करैं सुख पाय, गंगा जमना वंदैं जाय॥३४॥
ये सब मिथ्या मारग साज, तजिये सब समकितके काज।
अब समकितकी महिमा जान, कहौं कछु संक्षेप बखान॥३५॥

सम्यक्त्व महिमा—

थावर विकलत्रय नहि होइ, और निगोद असैनी सोइ।
जाइ कुभोगभूमि नहिं कदा, मलेच्छ खण्ड उपजै नहि तदा॥३६॥
प्रथम नरक आगे नहि जाय, भवनत्रिक वह नहीं लहाय।
तीन वेदमें दोई न धरै, मनुष नीच कुल नहि विस्तरै॥३७॥
जब क्षायिक समकित दृढ़ होइ, तब ये पदवी धरहि न सोय।
नर गतिमें नर ईश्वर जान, देवनमें सो देव प्रधान॥३८॥
दोहा—नभमें जैसे भान है, चिन्तामणि मणि ताहि।
कल्पवृक्ष वृक्षन विषैं, मेरु सकल नग मांहि॥ ३९॥
सब देवनमें देव ज्यों, त्यों समकित अविकार।
सब धर्मनको मूल है, महिमा तास अपार॥ ४०॥
व्रत तप संजम बहु धरै, समकित विन जगमांहि।
जैसे कृषि सेवा करै, मेघ विना फल मांहि॥ ४१॥
धर्म मूल सम्यक्त्व कहि, शाखा दोय प्रकार।
स्वर्ग मुकतिदायक सही, श्रावक जतिवर सार॥ ४२॥

अथ श्रावक धर्म वर्णन—

चौपाई।

त्रेपन किरियाको अधिकार, सो श्रावक उत्तम व्रत धार।

१—कजलियां बोते है, २—स्त्री और नपुंसक।

प्रथम मूलगुण अष्ट प्रकार, बारह व्रत द्वादश तप सार ॥४३॥
सामायिक किरिया इक सोय, एकादश प्रतिमा अवलोय ।
चार दान जल गालन एक, इक अंथउ रतनत्रय टेक ॥४४॥

मूलगुण वर्णन—

दोहा—पंच उदम्बर जानिये, तीन मकार समेत ।
इनकौ त्यागी पुरुष जो, अष्ट मूलगुण लेत ॥ ४५ ॥

पंच उदम्बर फलोंके नाम—

वर पीपर ऊमर सहित, कठबर पाकर एह ।
पंच उदंबर फल तजै, जीव राशि दुख लेह ॥ ४६ ॥

चौपाई ।

बेर मकोरा जामू चार, वेल करोंदा तूत मुरार ।
कुमड़े [1]विंब गड़ेली भटा, फुट[2] कचवैड़ा कलिंदे गटा ॥४७॥
सूरन भूरा आदौं[3] हरी, मारू कन्द मूल गाजरी ।
इत्यादिक जे और अपार, इनमें जीव राशि अधिकार ॥४८॥

तीन मकार दूषण—

दोहा—सब घर इन मक्षी रहैं, करै वमन इक ठौर ।
उपजैं तहँ अंडज अधिक, बूड़ मरै बहु दौर ॥ ४९ ॥
जीव मरें बहु होय मधु, जे भक्षैं सुख पाय ।
ते शठ पावैं कुगति पथ, पाप लैहि शिर धाय ॥ ५० ॥

चौपाई ।

नैतू काचौ दूध पर्ऊसी, अप्रासुक जल थानै वसी ।
इन्हें आदि दे और अनेक, मधुके अतीचार तज सेक ॥ ५१ ॥

१—कुदरू, २—फूट, अड़गरा, ३—अदरक, ४—नवीन प्रसूता गायका दूध, जिसे बुन्देलखण्डमे—तेली कहते है ।

मद्य दूषण—

महुआ आदि वस्तु बहु और, तिनिकौ सार रचै मद गैर।
त्रस थावर जहँ जीव अनंत, उपजै मरै लहै नहि अन्त ॥५२॥
जो यह मद्य पियैं जग जीव, माता त्रिया न जानैं सीव।
इहि भव निंद्य होय अधिकार, परभव पावै दुरगति भार ॥५३॥

अतीचार वर्णन—

स्वाद चलित जो वस्तु ग्रहेइ, अन्य जातिको भाजन लेइ।
दिना दोयको तक्रहि धरै, द्विदल वस्तु ले इकट्ठी करै ॥५४॥
फूल सूंघकै मुखमें देइ, अरु अनजानेको जल लेइ।
ए सब मद्य दोष दुखदाइ, इनकौ त्यागै शिवसुखदाइ ॥५५॥

माँस दूषण—

जीव घात विन होय न मांस, पाप करम जानौं यह भास।
सूक्षम जीव परैं ता मांहि, दृष्टिहिकी लखि आवैं नांहि ॥५६॥
जौलौं जिय विनशै यह देह, तौलौं निरमल है अधिकेह।
जीव गये तन मुरदा होय, महा अपावन छुवै न कोय ॥५७॥
पर जिय मार मांस जे खांय, ते धिक दुरगति दुःख लहाय।
मांस त्याग व्रत पालैं जेह, स्वर्गनके सुख भुगतै तेह ॥५८॥

अतीचार—

घीउ तेल जल हींग अतीव, होय चरम संगति बहु जीव।
हाटे[1] चून फल हरित जु शाग, पंच फूल बहु बीजक भाग ॥५९॥
अनजाने फल भक्षण करैं, मासहि अतीचार ते धरैं।
जो नर इनको त्यागन करै, सकल दोष निश्चै परिहरै ॥६०॥

१—बाजारका अमर्यादित आटा।

दोहा—इनि अष्टैंमें पाप अति, दोष सहित जब त्याग।
तब श्रावक व्रत संभवै, धरौ मूलगुण भाग ॥६१॥

बाईस अभक्ष्य—

उक्तं च।

ओला घोर बरा निशिभोजन, बहुबीजक बैंगन संधान।
बड़ पीपल ऊमर कठऊमर, पाकर फल जे कहे अजान॥
कंदमूल माटी विष आमिष, मधु माखन अरु मदिरापान।
फल अति तुच्छ तुषार चलितरस, जिनमत ये बाईस अखान॥६२॥

बारह व्रत—

दोहा—पंच अणुव्रतको धरै, और गुणव्रत तीन।
चौ शिक्षाव्रत निग्रहै, द्वादश व्रत लवलीन॥ ६३ ॥

पाँच अणुव्रतोंका वर्णन—

चौपाई।

त्रस जीवनकी रक्षा करै, दया भाव हिरदैमें धरै।
हिंसा वनिज आदिमें गहै, प्रथम अहिंसा अणुव्रत लहै॥६४॥

दोहा—हिंसा कर अरविंद नृप, सहे नरक दुख घोर।
मातंगादि दया धरी, सुर वंदे कर जोर॥ ६५ ॥

चौपाई।

सबसौं हित मित वचन सुनाय, बोले सत्य धर्म उर ल्याय।
निंद्य असत्य तजै जब सही, सत्य अणुव्रत दूजौ यही॥६६॥

दोहा—वसु नृप सिंहासन सहित, अवनि धँस्यौ कह झूठ।
राय युधिष्ठिर सत्यतैं, गह्यौ मोक्षपद तूठ॥ ६७ ॥

चौपाई।

वस्तु पराई जे ठग लेइ, अपनी घटि औरहिको देइ।
डरी वस्तुको ग्राह जु करै, थाती आनि पराई धरै ॥६८॥
चोरी करत धर्म सब नशै, दुरगति दुख सु नरकमें वसै।
दंड सहित बध बंधन आदि, मानुष जनम जाय यह वादि ॥६९॥
चोरीकी नहि लीजै वस्त, अरु उपदेश न देइ प्रशस्त।
इहि विधि चोरी त्यागै वहै, तृतीय अचौर्य अणुव्रत गहै॥७०॥

दोहा—चोरीतैं तापस सहै, वध बन्धन अति शोक।
चोरी अंजनचोर तज, भयौ सिद्धि शिव लोक॥ ७१ ॥

चौपाई।

माइ वहिन पुत्री समचित्त, परदारा इम जानों मित्त।
अथवा सांपिनसी मन धरौ, दुखकी खान दूर परिहरौ ॥७२॥
शील विना नर लागें इसौ, विन पानीको मोती जिसौ।
मन निर्मल जिमि जल सुरसुरी, ब्रह्मचर्य अणुव्रत है तुरी ॥७३॥

दोहा—रावण नृप नरकहि गयौ, पर नारीके काज।
सेठ सुदरशन शीलतैं, पायौ शिवपुर राज ॥ ७४ ॥

चौपाई।

प्रानीकी तृष्णा अति घनी, पूरण होय नहीं तिहि तनी।
तीन लोककी लक्ष्मी पावै, तो भी वह संतोष न आवै ॥७५॥
यातैं बुधजन करत प्रमान, क्षेत्र वास्तु सेवक धन धान।
अशन वस्त्र शृंगार भँडार, चौपद जुत दश परिग्रह भार ॥७६॥

१—धरोहर।

यह परिग्रह जानौ दुखदाय, पाप मूल भाषौ जिनराय।
यातैं जे भवि रहित उदास, सो परिग्रह परिमाण हि भास ॥७७॥
दोहा—सत्यघोष अति लोभतैं, सहे दुःख अधिकार।
शालिभद्र संतोष तैं, लह्यौ सिद्ध पद सार ॥ ७८ ॥

तीन गुणव्रतोंका वर्णन—

दिश विदिशाकी संख्या करै, तहँतैं उलँघ नहीं पग धरै।
प्रथम गुणव्रत जानौ येह, श्रावकको निर्मल गुण तेह ॥७९॥
खोदन काटन जल बहु डार, वायु अगनि परजालै भार।
झूठ वचन, चोरी, परतिया, विकथा कहै तजै राव क्रिया ॥८०॥
विना प्रयोजन जाय न कही, पापारंभ होय पथ मही।
अनरथ दंड कबहुँ नहि करै, द्वितिय गुणव्रत उत्तम धरै ॥८१॥
व्रत आचार जहां नहि होय, ताहि देश जैये नहि लोय।
करै प्रमाण भोग उपभोग, तृतिय गुणव्रत उत्तम जोग ॥८२॥

चार शिक्षाव्रतोंका वर्णन।

देशावकाशिक शिक्षाव्रत—

जिन मन्दिर जिन प्रतिमा करै, तहां धर्म बहुविधि विस्तरै।
गमन तनी संख्या नित धरै, देशवकाशी व्रत अनुसरै ॥८३॥

सामायिक शिक्षाव्रत—

आरत रौद्र ध्यान परिहरै, अरु निज तनको निरमल करै।
सब जियसौं समता उर लाय, धरम ध्यान इक चित लौं लाय ॥८४॥
सहैं परीषह दृढ़ कर काय, श्री जिनपदको जपन कराय।
तीन काल सामायिक साध, यह सामायिक व्रत आराध ॥८५॥

प्रोषधोपवास शिक्षाव्रत—

सातैं तेरस शुद्ध अहार, एकाभगत करै विधि सार।
फिर पोसह पावहि निरभंग, सब आरंभ परिहेर प्रसंग ॥८६॥
आठैं चौदशि प्रोषध धरै, खाद्य स्वाद्य पेय लेहू न करै।
पून्यौं मावस नौमी आन, तब आहार लेइ शुभ जान ॥८७॥
सोरा पहर हि उत्तम कह्यौ, चौदहको पुनि मध्यम लह्यौ।
बारह पहर जघन्य गनेह, पोपह व्रत कहि विधि ठानेह ॥८८॥

अतिथिसंविभाग शिक्षाव्रत—

जब छह घरी चढ़ै दिन आइ, द्वारापेखन कीजै भाइ।
मुनिकौ पाय देइ शुभ दान, विधिपूर्वक निर्मल उर आन ॥८९॥
तिहि पाछै निज भोजन करै, परम पुण्यकारण गुण धरै।
मुनिवर दान जोग नहि होइ, रसत्यागी तब कीज्यौ लोइ ॥९०॥
चार प्रकार दान जो देइ, अतिथिसंविभाग व्रत लेइ।
ये चारों शिक्षाव्रत जान, लहै सुरग संपति सुख खान ॥९१॥

अथ तप वर्णन—

दोहा—बारह तप व्यौहार कर, पालहि श्रावक सोइ।
तिन हि भेद पूरव लिख्यौ, फिर वरनन नहि होइ ॥९२॥

सामायिक वर्णन—

सामायिक विधिसौं करै, श्रावक परम पुनीत।
सो शिक्षाव्रतमें कह्यौ, जान लीजियौ मीत ॥ ९३ ॥

१—खाद्य—खाने योग्य दाल भात आदि। २—चखने योग्य—लाडू पेडा आदि तथा लवंग सुपारी आदि। ३—पीने योग्य—दूध तथा पानी वगैरह। ४—चाटने योग्य—रबडी, सीरा आदि।

ग्यारह प्रतिमाओंका वर्णन—

विषयन सौं जु उदास अति, संजम भावसौ ठाम।
उदय प्रतिज्ञाको करै, प्रतिमा जाको नाम ॥ ९४ ॥

चौपाई।

आठ मूल गुण पालै जबै, सात व्यसन तज दीनै सबै।
मल पच्चीस विवर्जित सोइ, दर्शन प्रतिमा श्रावक होइ ॥९५॥
पंच अणुव्रत लहिकै सोय, तीन गुणव्रत धारै जोय।
शिक्षाव्रत चारौं परवान, व्रत प्रतिमा दूजी पहिचान ॥९६॥
तीन काल सामायिक करै, पापारंभ सबै परिहरै।
निर्जन थान ध्यानको होइ, सामायिक प्रतिमा सो लोइ ॥९७॥
आठैं चौदशि प्रोषध सजै, चार प्रकार अहारहि तजै।
पोसह प्रतिमा जानौ सोइ, चौथो सो श्रावक अवलोइ ॥९८॥
हरित वस्तुको कीनौ त्याग, जीवदया पालै बड़भाग।
पंचम प्रतिमा यहै बखान, सचित त्याग व्रत श्रावक जान ॥९९॥
निशि अहार त्यागे बुधवंत, सूक्षम थूल भरै जिय जंत।
मूढ़ न जानैं हिंसा रोय, रजनी नीर रुधिर सम होय ॥१००॥
भूत पिशाच गमन निश करैं, जेवंत[1] अन्न अपावन करैं।
अशुचि वस्तु डारैं तहँ आय, नीच स्वभाव न उनकौ जाय ॥१०१॥
दिवस अन्धकार जहँ रहै, रात समान जानिये वहै।
निशि जु रसोई कर दिन खाइ, रजनीव्रत दूषण दुखदाइ ॥१०२॥
दिवस हि पुन छोड़े निज नार, निश त्यागी प्रतिमा अवधार।

१—भोजन करते समय।

यह षष्ठी लौं जानो भाइ, है जघन्य श्रावक ठहराय ॥१०३॥
निजपर नारि त्याग गुणवंत, नवधा शील धरै बहु भंत।
तजै सचिक्कण मिष्ट अहार, ब्रह्मचर्य प्रतिमा यह सार ॥१०४॥
हिंसा आदि सकल आरंभ, तजै विवाह बनिज सब दंभ।
काटन खनन अगिन नहि करै, वस्तर धोइ न कबहूं धरै ॥१०५॥
पशु राखै नहि मंदिर रचै, मित्य न्हान कबहूँ नहि सचै।
वाहन चढ़ै न साथ लहेइ, पत्र फूल फल नहीं गहेइ ॥१०६॥
जंत्र मंत्र औषधि नहि साधै, वैद्यक ज्योतिष धातु न राधै।
ऐसी क्रिया भव्य चित रमी, यह आरंभ त्याग अष्टमी ॥१०७॥
कट कौपीन वस्त्र इक लेइ, दशविध संघ त्याग करि देइ।
इंद्रिय दण्डै मन वच काय, पाप करम किंचित नहि थाय ॥१०८
नवमी प्रतिमा जानो येह, परिग्रह त्याग कहावे तेह।
मध्यम श्रावक धारै यही, स्वर्ग पन्थको कारण सही ॥१०९॥
बनिज विवाह आप आहार, इनकी अनुमति दे इन सार।
भोजनको जु बुलाए जाय, दशमी अनुमतित्याग कहाय ॥११०॥
उदिष्ट त्याग प्रतिमा गैरमी, उत्तम श्रावक धर शिर नमी।
ताके भेद दोय परमान, क्षुल्लक ऐलक कहौ दखान ॥१११॥
जो गुरु निकट लेइ व्रत जाइ, वसै गुफा मठ मंडप पाइ।
कटि कौपीन कमंडलु लहैं, एक वसन तन पीछी गहैं ॥११२॥
राखैं भिक्षा भाजन पास, चारौं परव करैं उपवास।
लैं अनुदिष्ट शुद्ध आहार, लाभ अलाभ रोष नहि धार ॥११३॥
माथैके कतरावें वार, डांढ़ी मूछ न राखै भार।

तप विधान धारैं गुरु पास, कहैं मुक्ति आगम आभास ॥११४॥

दोहा—यह क्षुल्लक श्रावक क्रिया, कही किमपि अवधार।
अब दूजौ ऐलक सुनौ, है पुनीत अधिकार ॥११५॥
कटि कौपीन जु संग्रहै, पिछी कमंडल हाथ।
पान पात्र आहार विधि, केश लुचावै माथ ॥११६॥
शीत धाम सब तन सहै, ऐलक सदा विराग।
एकादश प्रतिमा धरै, सो श्रावक बड़भाग ॥११७॥

चार दानका वर्णन।

चौपाई।

प्रथम दान आहार जु देय, भोगभूमि सुर सुख्य लहेय।
दूजौ शास्त्र दानको गहै, यातैं धर्म ज्ञान गुण लहै ॥११८॥
औषधि दान देइ मन शुद्ध, तन निरोग द्युति धारै बुद्ध।
अभय दान सब जीवन करै, इन्द्र चक्रवर्ति पदसौ धरै ॥११९॥

दोहा—आभूषण पांचौ लहै, दूषण पांचौं त्याग।
गुण सातौं जब उर धरै, नवधा पुण्य सुहाग ॥ १२० ॥

दातारके ५ आभूषण—

चौपाई।

आनंद आदर प्रिय वच कहै, निर्मल भाव जु उरमें लहै।
सफल जन्म करि अपना लेख, आभूषण पांचौं इम पेख ॥१२१॥

दातारके ५ दूषण—

विमुख विलम्ब वचन आपेह, आदर चित्त करै नहि तेह।
देकर पश्चात्ताप जु करै, यह पांचौं दूषण सो धरै ॥१२२॥

दाताके ७ गुण—

श्रद्धा ज्ञान अलोभता जान, दया क्षमा निज शक्ति प्रमान।
भक्ति सहित ये जानो सात, सो दाता जग गुण विख्यात ॥१२३॥

नवधाभक्तिका वर्णन—

पड़गाहन पात्रहिको करै, उच्चासन बैठक पुन धरै।
चरण धोय बंदै कर जोर, विधिसौं पूजा करै बहोर। १२४॥
मन वच काय हर्ष मन आन, शुद्ध अहार देइ सुखखान।
नवविधि पुण्य लहै यह सोइ, चौदह मल वर्जित अघ धोइ। १२५॥

चौदह मलोंके नाम—

जीव बद्ध जहँ रोम जु चाम, मांस रुधिर अर हाड़ हि नाम।
इन संगतकी वस्तु न लेइ, दुरगंधा थानक तज देइ ॥१२६॥
कंद मूल फल रहित जु देइ, पान फूल बहु वर्जित जेइ।
स्वाद रहित अरु बहु दिन वस्त, ये चौदह मल त्याग प्रशस्त ॥१२७

दोहा—पात्र अपात्र कुपात्रके, भेद बहुत परकार।
उत्तम मध्यम जघनता, कहौं जथारथ धार ॥१२८॥

चौपाई।

उत्तम पात्र भेद त्रय सार, उत्तम मध्यम जघन विचार।
तीर्थङ्कर छद्मस्थ प्रमान, आवें भोजन हित पुर थान ॥१२९॥
उत्तममें उत्कृष्ट हि पात्र, दान दिये तद्भव शिव जात्र।
गणधर चार ज्ञानके धनी, अड़तालीस ऋद्धि जुत मुनी ॥१३०॥
उत्तम पात्रहिमें ते जान, मध्यम पात्र कहे परवान।
अष्ट बीस गुण धारौ हियै, षष्ठम गुणथानक थिति कियै ॥१३१॥
उत्तम पात्र विषैं मुनि तेह, पात्र जघन्य कहावैं एह।

मध्यम पात्र भेद त्रय सुनौं, उत्तम मध्यम जघनहि गुनो ॥१३२॥
श्रावक ग्यारह प्रतिमा धार, ऐलक क्षुल्लक दोय प्रकार।
मध्यम पात्र विषैं उतकृष्ट, देशव्रती ध्यावैं परमेष्ट ॥१३३॥
दशमीतैं सातमि लौं जान, ब्रह्मचर्य पालैं अघ हान।
धरैं चार प्रतिमा भवि जेह, मध्यम पात्रहि मध्यम तेह ॥१३४॥
षष्ठमितैं पहिली लग जोइ, धारै प्रतिमा श्रावक सोइ।
विकथा व्यसन त्याग गुन मन्य, ते मध्यम पात्रहि जु जघन्य ॥१३५
पात्र जघन्य सुनो त्रय भेद, उत्तम मध्यम जघन समेद।
क्षायिक सम्यग्दृष्टी होय, पात्र जघन्य हि उत्तम सोय ॥१३६॥
वेदक सम्यग्दृष्टी जान, सो जघन्यमें मध्यम समान।
उपशम सम्यग्दृष्टी जीव, पात्र जघन्य जघन्य कहीव ॥१३७॥
सवै द्रव्यलिंगी जे जती, गुण अट्ठाइस बाहिज रती।
सम्यग्दृष्टि विना जग मांहि, ते कुपात्र उत्कृष्ट कहांहि ॥१३८॥
ब्रह्मचारि किरिया अनुसरै, द्रव्य लोभ अति उरमें धरै।
सम्यग्भाव रंच नहि लहै, ते कुपात्र मध्यम जग कहै ॥१३९॥
ब्रह्मचर्य बाहिज जे चहैं, द्रव्य तनों बहु संग्रह लहैं।
समकित भाव न कबहूं भये, जघन कुपात्र ताहि वर नये ॥१४०॥
जो कुलिंग मिथ्या अनुसरैं, रक्तपीत सित वस्त्रहि धरैं।
व्रत सम्यक्त न जाने रंच, सो अपात्र उत्कृष्ट प्रपंच ॥१४१॥
नाना वेष धरैं जग मांहि, समकित व्रत कछु जाने नाहि।
मिथ्या मारगको आदरै, ते अपात्र मध्यम अनुसरैं ॥१४२॥
व्रत सम्यक्त्व न जानैं मूल, उपजावै मिथ्यामत. कूल।

हिंसा करम करैं अधिकार, सोइ अपात्र जघन्य निहार ॥१४३॥
उत्तम मध्यम और जघन्य, ये ही तीन पात्र अभिमन्य ।
ओर कुपात्र अपात्रहि दोय, पांच भेद ये जानो सोय ॥१४४॥
एक एकप्रति त्रय त्रय जान, ते सब पन्द्रह भेद प्रमान ।
जुदे जुदे फल तिनके सुनौ, भविजन निश्चयके मन गुनौ ॥१४५॥
उत्तम पात्र दान जो देई, उत्तम भोगभूमि फल लेइ ।
मध्यमको जो देय सुदान, मध्यम भोगभूमि परवान ॥१४६॥
पात्र जघन्य दान फल यहै, भोगभूमि तें अन्तिम लहै ।
यह सुपात्र फल जानो भेद, अब कुपात्र सुनिये तज खेद ॥१४७॥
दान कुपात्र तनैं परभाव, लहैं कुभोग भूमिकी आव ।
अरु अपात्रको दीजे दान, तो पशुगति पावै दुखखान ॥१४८॥
दोहा—अहिमुख, कदली सीप जहँ, स्वाति बून्द जल जोग ।
विष कपूर मोती भयौ, सो त्रिध दान निजोग ॥१४९॥
अंधकूप धन डारिये, सोइ भलौ कर जान ।
दान कुपात्रहि देउ नहि, सज्जन करौ सयान ॥१५०॥

अथ जलगालन क्रिया ।

सात लाख जल जोनि जिय, अरु त्रस राशि अनेक ।
यातैं बुध जल गालियै, दयाभाव कर टेक ॥१५१॥

चौपाई ।

*दीरघ छत्तिस अंगुल जान, अर चौरौ चौवीस प्रमान ।
गाढ़ौ वस्त्र दुगुन कर गाल, इहि विधि जीवदया प्रतिपाल ॥१५२॥

* पानी छाननेके वस्त्रका प्रमाण वर्तनके छोटे बड़े होनेपर छोटा बड़ा भी होसकता है ।

घरी दोय जल गालित रहै, फिर असंख्य त्रस जिय तहँ लहैं।
सो जल गालि गालि व्योपरै, विलछानी लै घटमें धरै ॥१५३॥
सो निवान जलमें ले करै, विधिसौं जाय बीच नहि गिरै।
एक बूंद जो धरती परै, जीव असंख्य राशि तहँ मरै ॥१५४॥
ताके भ्रमर होंय उड़ि गमै, जम्बूद्वीप मांहि नहि समै।
यातैं शुद्ध गालिये नीर, अनगालैं अघ है बहु वीर ॥१५५॥
प्रहर दोय प्रासुक जल रहै, आठ प्रहर तातो निर वहै।
फिर राखैं सन्मूर्च्छित जोइ, अरु गाले तें हिंसा होई ॥१५६॥
दिन गालै जल न्हा नहि करै, होइ पाप धर्महि परिहरै।
उत्तम विधि जल गाले सोइ, सो श्रावक किरिया अवलोइ ॥१५७॥

अन्थउ (व्यालू) क्रिया वर्णन।

दोय घरी रवि उदय प्रमान, दोय घरी अंतिम दिन जान।
इतनेमें भोजन जल लेइ, मैथुन दिवस हि त्याग करेइ ॥१५८॥
इहि विधि किरिया जे न करैं, सो श्रावक अंथउ व्रत धरैं।
अब रतनत्रय कहौं प्रमान, जथा जोग जिनशासन जान ॥१५९॥

अथ अष्टांग सहित सम्यग्दर्शनका वर्णन—

दोहा—निःशंकादिक जानिये, दर्शन आठौं अंग।
ते वरनौं संक्षेप कर, जानो बुध सरवंग ॥१६०॥

चौपाई।

तत्त्व पदारथ सदा विचार, जिनमुख धर्म कहै भवतार।
शंका रहित सुगुनको गहै, निःशंकादि कहावै वहै ॥१६१॥
तपसा मांहि रहै लौं लाय, श्रीमुख वानी चित्त लगाय।
सुरग नरककी वांछा नांहि, निःकांक्षांग गुनौ मन मांहि ॥१६२॥

कर्म महावन दिये जगाय, प्रगटी मति उत्तम सुखदाय।
विचिकित्सा तन व्यापै नांहि, निरविचिकित्सा अंग सुपाहि॥१६३
देव गुरू धर्म हि चित गिनै, ज्ञान चक्षुसौं निरखैं तिनैं।
त्रिविध मूढ़कर रहित प्रवीन, यह अमूढ़ गुन ज्ञायक लीन॥१६४॥
जिन शासनको सदा विचार, मिथ्यामत जाने न लगार।
अपर ग्रन्थको लोप हि करै, उपगूहन अंग हि विस्तरै॥१६५॥
दर्शन व्रत तपसौं चल गये, तपसी रूप कुधर्मी भये।
तिनकौ संबोधै थिर लावै, स्थितीकरण यह अंग कहावै॥१६६॥
शठजन मुनिके सन्मुख आवै, ज्यों प्रभूत पशु मारन धावैं।
धर्म जष्टि सौं ता मन हनै, सो वात्सल्य अंग चित गनै॥१६७॥
कुमत कुग्रन्थ लोप सब करै, ज्ञान ध्यान तप नित विरतरै।
जैन शास्त्र परकाशै सदा, सो प्रभावना अंग हि जदा॥१६८॥
दरशन गुन ये अष्ट अनूप, महा सकल नाशक अग्निरूप।
स्वर्ग मुक्तिको कारन यही, वेरैं वेर भव धारै नहीं॥१६९॥

सम्यग्ज्ञान निरूपण।

अब सुन आठ ज्ञानके अंग, व्यंजनोजित प्रथम उत्तंग।

१—वार वार, २—ग्रन्थार्थोभयपूर्णं काले विनयेन सोपधान च।
बहुमानेन समन्वितमनिह्नवं ज्ञानमाराध्यम॥३६॥
—पुरुषार्थसिद्ध्युपाय।

अर्थ—१ शब्दाचार, २ अर्थाचार, ३ उभयाचार, ४ कालाचार, ५ विनयाचार, ६ उपधानाचार, ७ बहुमानाचार ओर ८ अनिह्नवाचार ये ज्ञानके आठ अङ्ग हैं।

शब्दाचार—व्याकरणके अनुसार शब्दोंका शुद्ध उच्चारण करना।

अर्थाचार—यथार्थ शुद्ध अर्थका अवधारण करना।

दूजो अर्थ समग्र बखान, तीजौ शब्दार्थक पहिचान ॥१७०॥
चौथो कालाध्ययन जानिये, उपध्यान पंचम मानिये।
विनय सहित षष्ठम गुन रमौ, गुरु अनिह्नव भनौ सातमौ ॥१७१॥
बहु मान श्रुत आठम जान, ज्ञान अंग ये आठ प्रमान।
इनके भेद बहुत परकार, आगममें वरनौं निरधार ॥१७२॥

सम्यक्चारित्र निरूपण—

अब चारित्र त्रयोदश जद्य, जो पालहिं अलपहिं सावद्य।
सो कहिये यह देश चरित्त, कह्यौ गृहीपदको प्रति नित्त ॥१७३॥
मुनिको पूरण चारित धार, वरनौं तप कल्याण मझार।
यह रत्नत्रय नय व्यौहार, पाले जो श्रावक गुणधार ॥१७४॥
दोहा—ये त्रेपन किरिया विविध, पालै श्रावक होइ।
षोडश स्वर्ग प्रजंत लौं, लहै इन्द्र पद सोइ ॥१७५॥

अथ यति धर्मका वर्णन—

चौपाई।

तीर्थंकर निरग्रंथ पद धस्यौ, मोख पन्थ साधनको कस्यौ।
तेही भांति दियौ उपदेश, पुनर उक्ति भय कह्यौ न शेष ॥१७६॥
दश विध बाहिज ग्रन्थ जो कही, चौदह आभ्यंतर हैं सही।

उभयाचार—शब्द और अर्थका शुद्ध २ पाठ करना।
कालाचार—योग्य समयमे शास्त्रोंका पढ़ना।
विनयाचार—शुद्ध जल हाथसे पांव धोकर विनय पूर्वक पढ़ना।
उपधानाचार—पठित विषयका स्मरण रखना—भूल मत जाना।
बहुमानाचार—ज्ञान, पुस्तक तथा गुरुका आदर करना।
अनिह्नवाचार—गुरु और शास्त्रका नाम नहीं छिपाना।

इनमें तिल तुष राखै कोइ, तो भी मुनिपद सिद्धि न होइ॥१७७॥
मुनि बिन लहै नहीं निर्वान, अचल सासुतै सुख निधान।
भावलिंग ऐसी विधि ठान, द्रव्यलिंग है अपर वखान॥१७८॥
परिग्रहवंत मुनीपद कहैं, अर तिनके बहु जनपद गहै।
सो कबहूं न लहैं शिव-सीव, भ्रमैं जगत दुख सहैं अतीव॥१७९॥
पश्चिम भान उदय नहीं जोय, अगिन न सीरी कबहूं होय।
तैसे मुनि जिनलिङ्गहि विना, मोख न पावैं भव भटकना॥१८०॥
धन्य धन्य जे साधु महान, भोग तजें आतम थिति ज्ञान।
धन्य धन्य जगको दई पीठ, धन्य धन्य शिव सन्मुख दीठ॥१८१॥
तजी आश वनवास वरान्त, ऐसे मुनिमह वन्दन वन्त।
याते सधे मुक्तिपद खेत, जती धर्म है बहु सुख हेत॥१८२॥

दोहा—जती धर्म संक्षेपतैं, भाष्यौ इहि अस्थान।
पूरण भाष्यौं जो कथन, तातैं बढ़त पुरान॥१८३॥

अथ षट्काल वर्णन—

अब रचना षटकालकी, सुनो सयाने लोय।
जो भाष्यो प्रभु व्याससैं, प्रगट सुनाऊं सोय॥१८४॥

चौपाई।

भरतखंड ऐरावत मांहि, छहों काल वर्ते जु सदाहि।
उत्सर्पिणि अवसर्पिणी पाय, रहंट घड़ी वत आवें जाय॥१८५॥
भूतकाल उत्सर्पिणी जान, कोड़ाकोड़ि दशाब्धि प्रमान।
छठंवें तैं पहले लग जाय, बढ़े रूप तन बल सुख आय॥१८६॥
वर्तमान अवसर्पिणी काल, ताकौ भेद सुनो कछु हाल।

सो सागर दश कोड़ाकोड़ि, छहों काल कर मंडित जोड़ि ॥१८७॥
सुखमा सुखमा प्रथम विचार, कोड़ाकोड़ी सागर चार।
ताकी आदि पल्य त्रय आव, तीन कोश तन तुंग लखाय ॥१८८॥
उदय अरुण रवि तन द्युति धार, बदरीफलवत दिव्य अहार।
सो भी लेय तीसरै दिना, मल निहार वर्जित तसु गिना ॥१८९॥
मद्य तूर्य आभूषन जान, वाहन ज्योति दीप ग्रह मान।
भोजन भाजन वस्त्र प्रमान, ये दश कल्पवृक्ष परधान ॥१९०॥
करैं कल्पना मनमें जिसी, भोग संपदा पुरवैं तिसी।
ते सब सुख्य वरण को कहै, ग्रन्थ बढ़ै अरु पार न लहै ॥१९१॥
उत्तम पात्र दान जो देइ, उत्तम भोगभूमि पद लेइ।
विकलत्रय नहि उपजै तहीं, पंचेन्द्रीय असैनी नहीं ॥१९२॥
मानुष अरु तिर्जंच जु सोय, आर्जव भाव सदा अवलोय।
तहँ तैं मर सुर लोकहिं जाय और न दूजी गतिहि लहाय ॥१९३॥
मध्यम सुखमा दुतिय प्रवीन, सागर कोड़ाकोड़ी तीन।
आदि पल्य द्वय जीवन जाय, देह तुंग दो कोश सुभाय ॥१९४॥
पूरण चन्द्र किरण जुत जिसौ, तन सोहै अति निर्मल तिसौ।
धात्रीफलवत दिव्य अहार, तृप्ति हेतु दूजै दिन धार ॥१९५॥
मध्यम पात्र दान जे गहैं, मध्यम भोगभूमि सो लहैं।
पूरब कथित सुख्य तहँ पाय, फिर सो स्वर्गलोकको जाय ॥१९६॥
तृतिय काल लघु सुख्यासुख्य, कोड़ाकोड़ि सिंधु द्वय तुल्य।
आदि पल्य इक आयु प्रवान, देह कोश इक उन्नत जान ॥१९७॥
इक दिन बीतैं लेय अहार, तृप्ति जु हेत आम उनहार।

तन सुवर्ण सम दीसै सोइ, भोगभूमि यह अन्तिम जोइ ॥१९८॥
दश विध कल्पवृक्ष सुखदाय, पूर्ववत सब शोभा थाय।
पात्र जघन्यहि देहि जु दान, लहै जघन्य भोग भू थान ॥१९९॥

दोहा—तृतिय कालके अन्तमें, रह्यौ पल्य वसु भाग।
चौदह कुलकर ऊपजै, कह्यौ नाम बड़भाग ॥२००॥
प्रथमहि कुलतें अन्तरौ, दश दश भागहि हीन।
पल्य भाग इमि गत भये, अनुक्रम सौं गन लीन ॥२०१॥

चौपाई।

प्रतिश्रुत कुलकर प्रथमहि जान, रानी स्वयप्रभा गुन खान।
ज्योति रंग द्रुम मंद मेह लयौ, चंद्र सूर्य तब परगट भयौ ॥२०२॥
सन्मति मनुज जसस्वी नार, ज्योति रंग तब नाशहि धार।
दिन निश नखत तार जुत देख, प्रजा बोध कीनौ तिनि पेख ॥२०३
क्षेमंकर हि सुनंदा त्रिया, देखहु-सिंह मृगहि वध किया।
क्षेमंकर¹ विमला वर लियौ, जष्टि ग्रहन उपदेश जु-दियौ ॥२०४॥
सीमंकर मनोहरी दार, मन्द कल्पतरु करहि निवार।
नाम सीमँधर धारन पती, ग्रह उत्पति उपदेश्यौ अती ॥२०५॥
विमलवाह त्रिय सुमति विचार, अंकुश आयुध गज असवार।
चक्षु मान त्रिय धारणि ऐन, तब निज निज सुत देखे नैन ॥२०६॥
मनुज जशस्वी अमरा प्रिया, तब प्रसूत जात क्रम किया।
मनु अभिचन्द्र श्रीमती कंत, पिता पुत्र क्रीडा जु करंत ॥२०७॥

१—तेज।

चन्द्राभ हि प्रभावती जन्न. पुत्र विवाह करन उत्पन्न।
पुन मरुदेव अनूपम जान, नदी नाव किय गिरि सोपान॥२०८॥
नृप प्रसेन अनुजज्ञा जास, अभ्र पटल अरु जरा प्रकाश।
नाभिराय मरुदेवी जही, नाभि जरायू उपजी सही॥२०९॥
मेघवृष्टि घन गरजैं घोर, चमकै विजली अति चहुँओर।
विकलत्रय उतपति तहँ भई, सकल धान्य उपजन श्रुवि ठई॥२१०॥

अडिल्ल।

पल्यहि दशमैं भाग, प्रथम कुलकर थिती।
दश लख कोड़ाकोडी, पूरव तिहि मिती॥
दश दश भागहि हीन, अवर क्रम क्रम लही।
चौदह नाभि नरेन्द्र, पूर्व इक कोड़ ही॥ २११॥

दोहा—पन शत पच्चीसहि धनुष, नाभिरायकी काय।
पच्चीसहि सौं वृद्धि क्रम, तीजै लौं गन भाय॥२१२॥
दूजे कुलकर काय तहँ, चाप तेरसै जान।
प्रतिश्रुत प्रथम उतंग तन, धनु अठारसै ठान॥२१३॥

चौपाई।

चतुरथ काल सुनो अब भेव, दुखमा सुखमा नाम कहेव।
सागर कोड़ाकोड़ी एक, सहस बियालिस घटत सु लेक॥२१४॥
आदि पूर्व इक कोडि जु आय, धनुष पंचसै उत्तम काय।
पंच वरण नर तन द्युति गहै, नित्य अहार वार इक लहै॥२१५॥
करमभूमि प्रगटी इहि थान, त्रिशटशलाका पुरुष महान।
उपजै क्रमसौं आरज थान, आदि अन्तलौं काल प्रमान॥२१६॥

चतुरवीस श्री जिनवर नाम, चक्रवर्ति द्वादश अभिराम।
नव बल नव हरि नव प्रतिहरी, इनको भेद सुनौं कछु धरी ॥२१७॥
चौदस कुलकर नाभि नरेन्द्र, मरुदेवी त्रिय आनंद कन्द।
तिनके ऋषभदेव जिन ठये, जुगलधर्म निरवारत भये ॥२१८॥

अडिल्ल।

चौरासी लख पूर्व ऋषभ जिन आव है।
ताकी गिनती लिखौं वरष ठहराव है॥
उनसठ लख सतवीस सहस चालीस है।
इतनै कोड़ाकोडी अंक इकईस हैं॥ २१९॥

चौपाई।

कलपवृक्ष सब गये पलाई, जग आचम भयौ दुखदाई।
क्षुधा तृषा कर पीडी प्रजा, आये प्रभु समीप कर रजा ॥२२०॥
कर्मभूमिको भेद बताय, सबको संबोधै जिनराय।
असि मसि कृषि विद्या बहु वेष, वानिज पशुपालन उपदेश ॥२२१॥
जोलौं कृषि उपजै अब मही, इक्षु अहार लेउ सब सही।
तब सो जाय इक्षुरस लयौ, क्षुधा दुःख तिनको मिट गयौ ॥२२२॥
जय जय शब्द कियौ तिन आय, प्रभु इक्ष्वाक वंश सुखदाय।
तहँ पुन तीन वरनको थाप, शूद्र वैश्य क्षत्रिय प्रभु आप ॥२२३॥
क्षत्रिय वंश चार थपि साथ, निज इक्ष्वाकु सोम हरिनाथ।
कुल विवाहकी सीख जु दई, धर्म क्रिया सब ही विधि ठई ॥२२४॥
प्रभु पांचो कल्याणक साध, गये मोख त्रय जग आराध।
जिनके तनुज भरत चक्रेश, छहौं खण्डके अधिप महेश ॥२२५॥

दोहा-हूंठ मासकर हीन हैं, रही वरप तब चार।
आदिनाथ जिन शिव गये, तीजे काल मंझार ॥२२६॥*

चौपाई।

जो कोई यह विकलप कहै, तीजे काल मोख किम लहै।
हुंडासर्पिणी दोष अतीव, त्रेशठ पद अंठावन जीव ॥२२७॥
प्रथम आदि जिन तीजे काल, पहुँचे मोख पंथ यह हाल।
शांति कुन्थु अर नाथ भनेह, तीर्थकर चक्रीपद येह ॥२२८॥
प्रथम त्रिपृष्ट नरायन भये, वर्धमान अन्तिम जिन ठये।
भरतचक्र थापौ द्विज वरण, ते अनेक पाप हि उद्धरण ॥२२९॥
अरु पांचौं मिथ्यात्व जु भये, मानभंग पुन चक्री लये।
तीर्थंकर उपज्यौ उपसर्ग, भयौ मूर्ति मिथ्याति हि वर्ग ॥२३०॥
गुरु प्रति कहै शिष्य फिर तबै, हुंडासर्पिणि उपजै कबै।
सर्पिणि औ उत्सर्पिणि काल, जाय जबै सौ अर अडताल ॥२३१॥
हुंडासर्पिणि जब ही होइ, ऐते दोष प्रगट कहि सोइ।
तितनैं हुंड वीत जब जाय, विरह काल तब उपजै आय ॥२३२॥
दोहा-षट महिना परजंत लौ, मोख पन्थ नहिं लाय।
आठ समग बाकी रहैं, जिनमें ते शिव जांय ॥२३३॥
अब जिन जननी तातके, लिखौं नाम समुदाय।
जनम पुरीको वरनऊँ, त्रय कल्यानक थाय ॥२३४॥

तीर्थंकरोंके माता पिता तथा जन्मनगरीके नाम—

चौपाई।

नाभिराय प्रथमहि जिन तात, मरुदेवी माता विख्यात।

---

* ३ वर्ष ८½ माह। २-स्थान।

नगर अजुध्या धनदहि रची, नव बारह जोजन कर खची ॥२३५॥
जितशत्रुहिं दूजै जिन पिता, विजयादेवी माता जुता।
अवधिपुरी अति बनी सभोग, रची कुबेर जन्म संयोग ॥२३६॥
नृप जितारि तीजे प्रभु तात, सेनादेवी कहिये मात।
सावित्री नगरी अति भली, त्रय कल्याणक शोभा रली ॥२३७॥
संवर नाम राय गुनधाम, चतुरथ जिनके पिता विराम।
सिद्धारथ देवी है माय, नगर अजुध्या जन्म लहाय ॥२३८॥
मेघप्रभ जिन पंचम तात, सती मंगलादेवी मात।
नगरी जनम अवधि पुर सोइ, देवन रची महामद खोइ ॥२३९॥
धारन नाम पिताको जान, देवि सुसीमा मात वखान।
कौशांबीपुर नगरी सोइ, छट्टम जिनवर जन्म सु होइ ॥२४०॥
सुप्रतिष्ठ नामा नृप तात, पृथिवी देवी जानो मात।
नगर बनारस जन्म जु भयौ, सातम जिनपद सुरपति नयौ ॥२४१॥
महासेन आठम जिन पिता, नाम सुलक्ष्मीदेवी जुता।
सो प्रभुकी इमि जानौ मात, चंद्रपुरीमें जन्म विख्यात ॥२४२॥
नृप सुग्रीव नवम जिन तात, रामादेवी तिनकी मात।
काकंदी नगरी अवलोइ, धनद रची प्रभु आगम जोइ ॥२४३॥
दृढ़रथ राज पिता अभिराम, मात सुनन्दा देवी नाम।
भोगलपुरी दशम अवतार, नव बारह जोजन विस्तार ॥२४४॥
विष्णुकुमार जु कहिये तात, विमलादेवी जिनकी मात।
सिंहपुरी एकादश थान, रची कुबेर हर्ष उर आन ॥२४५॥

१—भद्दलपुरी—भद्रलपुरी।

नृप वसुदेव जु पिता बखान, मात जयावति देवी जान।
बारम जिन चंपापुर ठये, तिनके पंचकल्याणक भये ॥२४६॥
कृतिधर्म हि नृप तात बखान, श्यामा माता ताकौ जान।
तह कँपिलानगरी अवदात, तेरम जिनवर जन्म विख्यात ॥२४७॥
सिंहसेन राजा प्रभु तात, सूर्यदेवी कहिये मात।
चौदम जिनपति सुरपति नयौ, नगर अजुध्या जन्म जु भयौ ॥२४८
भानु नाम राजा जिन तात, सुव्रतादेवी तिनकी मात।
रत्नपुरी है जन्मस्थान, पन्द्रम जिनवरको पहिचान ॥२४९॥
विश्वसेन नृप पिता महान, ऐरादेवी जननी जान।
हस्ति-नागपुर जन्म धरेव, षोडश जिनवर इन्द्रहि सेव ॥२५०॥
सूर्य नाम नृप पिता जु कहे, सिरीमती माता गुन लहै।
हस्तिनागपुर जन्म सु लयौ, सत्रम जिन सुरनर मुनि नयौ ॥२५१॥
राज सुदर्शन तात प्रमान, देवी सुमित्रा माता जान।
हस्तिनागपुर कहिये सोय, आठारम जिनवर अवलोय।२५२॥
पिता कुंभनृप जगविख्यात, प्रभावती है तिनकी मात।
मिथिलापुरी जनम भगवान, एकवीसमें जिनवर जान ॥२५३॥
समुद्रविजय नृप कहिये तात, शिवदेवी माता विख्यात।
द्वारावती धनद ही रची, द्वाविंशति जिन जन्मन सची ॥२५४॥
अउग्रसेन नृप तात बखान, वामादेवी माता जान।
पुरी बनारस है अवदात, तेवीसम जिनवर विख्यात ॥२५५॥
सिद्धारथ नृप पिता जु भये, त्रिशलादेवीके उर ठये।
कुण्डलपुर नगरी अवतार, चौवीसम अन्तिम जिन सार ॥२५६॥

चौबीस तीर्थकरोंके चिह्न, आयु, शरीरकी ऊंचाई, वर्ण, मोक्षस्थान तथा अंतरकालका वर्णन—

दोहा—अब चौबीस जिनेशके, कहौं किमपि गुण गाय।
लक्षण आयु उत्तंग द्युति, जिन अंतर समुदाय ॥२५७॥

पद्धड़ि छन्द।

वृष[1] लक्षण वृषभ जिनेश भाय, पूरब चौरासी लाख आव।
सत पंच धनुष तन तुंग पोख, द्युति हेमवरन कैलाश मोख ॥२५८॥
अन्तर लख कोड पचास सिंध, जिन अजित भये लक्षण गयंद।
लख पूर्व बहत्तर आयु धर्ण, शत ढोचैं[2] धनुष तन हेम वर्ण ॥२५९॥
गत तीस लक्ष सायर हि कोड़, संभव जिन लक्षण तुरिय[3] जोड़।
थिति साठ लाख पूरब गनेह, सत चार धनुष द्युति हेम देह ॥२६०॥
दश लक्ष कोड़ि सायर गतीस, जिन अभिनन्दन लक्षण कपीस[4]।
पचास लाख पूरब सु आव, धनुशत साढ़ेत्रय हेम भाव ॥२६१॥
नव लाख कोडि सायर तितीत, जिन सुमति चिह्न चकवा पुनीत।
जीवत[5] पूरब चालीस लाख, सत तीन धनुष तन हेम भाख ॥२६२॥
नब्बे हजार सायर हि कोडि, जिनपद्म पद्मदल चिह्न जोडि।
तिनि तीस लाख पूरब सु आव, अढ़ाई शत धनु तन अरुन[6] भाव ॥२६३
नव सहस कोड़ि सायर गनेह, स्वस्तिक[7] सुपरस लक्षण भनेह।
लख बीस पूर्व जीवित प्रमान, शत धनुष दोय तन हरित जान ॥२६४॥
नव शय जु कोडि सायर गमाय, चन्द्रप्रभ लक्षण चन्द्र पाय।
दश लाख पूर्व सब आयु तास, शत डेड धनुष वपु श्वेत भास ॥२६५॥

१–बैल, २–४५० धनुष, ३–घोडा, ४–बन्दरके चिह्नसे सहित, ५–आयु, ६–लाल वर्ण ७–साथिया।

गय नेवै कोड़ि सागर प्रजंत, सो मगर चिह्न जिन पहुप दंत।
प्रभु आयु लाख द्वय पूर्व जान, सो धनुष तुंग तन श्वेत मान॥२६६
नवकोड़ि सिधु कालहि गमाय, शीतल श्री तरुवर चिह्न पाय।
तिनि एक लाख पूरब जु आयु, अरु नेवै धनुष तन हेम ठायु॥२६७
तह एक कोड़ि सायर गनेह, सो सायर तामें हीन लेह।
घट छयासठ लाख जु वरष और छव्वीस सहस्र पुन करहु ठौर॥
तब उपजे श्री श्रेयांसनाथ लक्षण गेंडा द्युति हेम साथ।
जीवत चौरासी लाख वर्ष, धनु असी तुङ्ग काया जु पर्ष॥२६९॥
गत चौवन सागर जबहि जिह, श्रीवासुपूज्य महिषा जु चिह्न।
जिन सत्तरलाख जु आयु होय, सत्तर धनु वपु द्युति अरुण जोय॥
सायर हि तीस गत जबहि होइ, जिन विमल वराह जु चिह्न सोइ।
है साठलाख जीवन सु आय, धनु साठ हेम द्युति धरिय काय २७१
नव सागरका युग माड़ जिह्न, उपजै अनन्त से ही जु चिह्न।
है तीस लाखकी आयु तेह, पंचास धनुष द्युति है सदेह॥२७२॥
सागर जो चौ गत वर्ष होय, जिनधर्म वज्र लक्षण हि सोय।
दश लाख आयु द्युति हेम रंग, पैंतालिस धनु काया उतंग॥२७३॥
त्रय सागर हीन हि पल्य पौन, जिन शांतिनाथ मृगचिह्न होन।
है एक लाख तनु आयु जान, चालीस धनुष तन हेमवान॥२७४॥
गत आध पल्य जब वरष जांय, जिन कुन्थु चिह्न छेरो बताय।
पंचानव सहसहि थिति गनेह, पैंतीस धनुष द्युति हेम देह॥२७५॥
है पाव पल्य गत वरष जोड़ि, तामें घट एक सहस्र कोड़ि।

१—नव्वे ९०, २—गया। ३—शरीर, ४—सुवर्णके समान वर्णवाले।

अर मीन चिह्न धनु तीस काय, द्युति हेम सहस चौरासि आय ॥२७६
इक सहस कोड़ि गत वरष सोइ, जिन मल्लि कलश लांछन सु होइ।
पचमन सहस्र तिस आयु ठान, पच्चीस धनुप वपु हेमवान ॥२७७
जब चौवन लाख जु वरष जांय, मुनिसुव्रत कच्छप चिह्न पाय।
तह तीस सहस थिति लही जास, धनु वीस काय द्युति श्याम भास॥
छह लाख वरष जब काल जाइ, नमिनाथ कमल लक्षण सुथाइ।
दश सहस आयु जिनकी वखान, धनु पंद्रह काय जु हेमवान ॥२७९
तहँ पांच लाख वरषैं वितीत, जिन नेमि शंख लक्षण पुनीत।
थिति एक सहसकी लही तेह, दश धनुषकाय द्युति श्याम लेह॥२८०
गत सहस तिरासी साढ़ सात जिन पारस-चिह्न फनेन्द्र जात।
इकशत वरषैं जीवित सुथान, नव हाथ काय द्युति हरित जान ॥२८१
ढाई सय जह जब वरष जाय, जिनवीर सुलक्षण सिंह थाय।
थिति-वरष वहत्तर हेमवर्ण, वपु सात हाथ जग दुरित हर्ण ॥२८२॥

दोहा—भये चतुर्दश इक्षु कुल, चदु कुल वंश मझार।
पुनि हरिवंशी चार जिन, दोइ उग्र अवधार ॥२८३॥
वासुपूज्य चम्पानगर, नेमि मोक्ष गिरि शीस।
पावापुर श्री वीर जिन, शिखर समेद हि वीस ॥२८४॥

चक्रवर्तियोंका परिचय—

चौपाई।

प्रथम भरत-चक्रीको नाम, प्रथमहि जिन वारै अभिराम।
दूजे सगर चक्रवति जान, वर्तमान दूजे भगवान।२८५॥
मघवा तृतिय चक्रवति हुए, धर्मनाथ जिन शिव जब गये।

सनत्कुमार चतुर्थम कहे, तिनि पीछै कछु क्रमसौं लहै ॥२८६॥
शांतिनाथ जिन चक्री आय, सो पंचम पद भविजन जाय।
षष्ठम कुन्थुनाथ चक्रेश, अरहनाथ सप्तम अवनेश ॥२८७॥
तिनहीतैं कछु काल गमाइ, अष्टम चक्रि सुभौम कहाइ।
मल्लिनाथे शिव गय बहुकाल, महापद्म नम चक्र विशाल ॥२८८॥
मुनिसुव्रत कछु काल व्यतीत, दशम चक्रि हरिषेण पुनीत।
जिन नमिनाथहि बारै भए, एकादशम विजय नृप ठये ॥२८९॥
पास जिनेश्वरके व्रत मान, ब्रह्मदत्त द्वादशम बखान।
अब बल हरि प्रतिहरिकै नाम. नारद जुत वरणौं अभिराम ॥२९०॥

अथ बलभद्र-नारायण और प्रतिनारायणों और नारदोंका परिचय—

श्री श्रेयांसनाथ व्रतमान, प्रथम विजय बलदेव बखान।
हरि त्रिपृष्ठ तिन भ्रात जु सोइ, अश्वग्रीव प्रतिहरि तहँ होइ ॥२९१॥
तिन सम्बन्धी नारद भीम, मुनिव्रत गहै तजै व्रत सीम।
वासुपूज्य जिनवरके समै, हलधर अचल दुतिय जग नमै ॥२९२॥
हरि द्विपृष्ठ तारक प्रतिहरि, महाभीम नारद पद धरी।
विमल जिनेश्वर बारैं जोइ, ×धर्मबली तीजौ पद सोइ ॥२९३॥
हरि जु स्वयंभू गुणहि समुद्र, मेरक प्रतिहरि नारद रुद्र।
पुन अनंत जिन बारै भये, सुप्रभ बलि चौथे वरनये ॥२९४॥
पुरुषोत्तम हरि तिनके भ्रात. मधु-कैटभ प्रतिहरि अवदात।
महारुद्र है नारद ठौर, धर्मनाथ बारै सुन और ॥२९५॥
नाम सुदर्शन पचम बली, पुरुषसिंह नारायण मिली।

× भद्र।

अरु निशुम्भ प्रतिहरी सुजान, काल नाम नारद पहिचान ।२९६॥
अरहनाथ बहु कालहि गये, अरु सुभौम चक्रीके भये ।
षष्ठम आनंद बल उपजेह, पुण्डरीक नारायण तेह ॥२९७॥
पुन प्रतिहरि प्रह्लाद जु भये, महाकाल नारद तहँ ठये ।
मल्लिनाथ जिन किंचित काल, नन्दमित्र सप्तम बलि हाल ॥२९८॥
अरु श्रीदत्त हरी विख्यात, बलि प्रतिहरिको कीनौ घात ।
दुर्मुख नारद नाम कहाय, अधिक प्रपंची ऋपिपद थाय ॥२९९॥
मुनिसुव्रत जिन शिवपद गये, पुनि हरिषेण चक्रवति भये ।
तिनहीतैं कछु काल गमाइ, अष्टम रामचन्द्र बल भाइ ॥३००॥
लक्ष्मण नारायण पद जान, प्रतिहरि रावण प्रगट बखान ।
नग्मुख नारद नाम कहाय, विद्याचल बहु करै उपाय ॥३०१॥
नेमिनाथ जिन बारै भये, हलधर पद्म नवम बरनये ।
कृष्ण नरायण जग परधान, जरासंध प्रतिहरि पहिचान ॥३०२॥
उन्नत मुख नारद तिहि थान, अब एकादश रुद्र बखान ।

११ रुद्रोका परिचय—

भीम प्रथम शंकर जानिये, प्रथमहि जिन बारै मानिये ॥३०३॥
बल दूजे रुद्रहिको नाम, अजितनाथ बारै अभिराम ।
जितशत्रु हि तीजै पशुपती, पुष्पदंत बारै उतपती ॥३०४॥
विश्वानल चौथो शिव जान, शीतल जिन समयै पहिचान ।
श्रेय समै सुप्रतिष्ठ जु रुद्र, पंचमसौ है पाप समुद्र ॥३०५॥
वासुपूज्य जिन बारै ठये, अचलरुद्र षष्ठम वर नये ।

१—रुद्र ।

विमलनाथके समयै कहै, पुण्डरीक शिव सप्तम लहै ॥२०६॥
पुन अनंत जिन बारै मांहि, रुद्र अजित धर अष्टम ताहि।
धर्म जिनेशहिके वर्तमान, जितनाभि हि शंकर पहिचान ॥२०७॥
शान्तिनाथ जिन समै सुजान, पिंगोत्तम शिव दशम वखान।
पुनः सात्यकि स्थान सुनाम, एकादशम वीर जिन ठाम ॥२०८॥

चौविस कामदेवोंका परिचय—

अब चौवीस मदन द्युति धाम, आगम उक्त कहौं जिन नाम।
बाहूबल प्रथमहि जिन पुत्त, दूजै अमिततेज गुन जुत्त ॥२०९॥
श्रीधर उपजै तीजै काम, अरु दशभद्र चतुर्थम ठाम।
प्रसेनचन्द्र पंचम गुन मूल, चन्द्रवर्ण छट्ठे सम सूल ॥२१०॥
अग्निमुक्त सातम गुणधार, आठम कहिये सनत्कुमार।
वत्सराज नवमैं वरनये, कनकप्रभ दशमैं जग भये ॥२११॥
मेघवर्ण एकादश भेश, द्वादशमें श्री शान्ति जिनेश।
कुन्थुनाथ तेरम पद जान, अर जिन चौदहमें परवान ॥२१२॥
विजयराज पन्द्रम अवतार, श्रीचन्द्र षोडशमें धार।
नलराजा सत्रम गुणखान, अट्ठारम हनुमंत सुजान ।२१३॥
बलराजा उनवीसम ठये, वसुदेव वीसम स्मर भये।
इकवीसमे पदम सु होइ, नागकुमार बाइसम सोइ ॥२१४॥
तेवीसम श्रीपालकुमार, जम्बूस्वामि अंतपद धार।
ए सब कामदेव वरनये, देव भये केई शिव गये।२१५॥

दोहा—ये सब पदवीधर पुरुष, चतुरथ काल भनेइ।
नरपति खगपति सुर असुर, चरन नमित अरचेइ ॥२१६॥

पृथक पृथक तिन गुननके, भावै सकल पुरान।
श्री जिन गौतम पति कही, भूत भविष्यत मान ॥३१७॥

चौपाई।

अब कहुं दुखमा पंचम काल, दुख पूरित नर देखौ हाल।
इकैसहजार वरप परवान, जिनवर धर्म जहां लग जान ॥३१८॥
ताके आदि मनुपकी आव, विशोत्तर इकसय वरषाव।
सात हाथ उत्तंग जु देह, रूखी अतिसुख वर्जित तेह ॥३१९॥
मन्दमती कुटिलाशय सोइ, दिन प्रति बहु दुख भोजन होइ।
कलकी अरु उपकलकी लहैं, पंचसै वरप बीच नृप[1] दहैं ॥३२०॥
होंहि कुलिंगी वेप अनेक. अरु पाखंड प्रगट कर टेक।
गहै मूर्त मिथ्यात्व अपार, सोई कुगति पंथ पग धार ॥३२१॥
विरलै भवि श्रावक व्रत धार, आर्जव परिणामी सुविचार।
जाय विदेह केवली होय, कै सुरलोक लहैं सुख सोय ॥३२२॥
दुषमा दुषमा छट्ठम काल, सो इकवीस सहस दुख जाल।
धर्म विवर्जित द्वै[2] कर देह, धूम्रवरण द्युति है विन गेह ॥३२३॥
जीवन वीस वरसको आदि, नगन सदा वस्तर वे वादि।
स्वेच्छ अहार पत्र फल खाइ, गिरि कंदर पशुवत जु रहाइ। ३२४॥
काल अन्त इक हाथ शरीर, षोडश वरष आव तस वीर।
मरकै दुर्गति सबै लहाहि, मत जिन क्रिया न जानै काहि ॥३२५॥
ठाकुर दास न कोई होइ, अगिन-प्रजालन भेद न सोइ।
माता त्रिया बहिन सब खेद, ज्ञान विना जानैं नहि भेद ॥३२६॥

१-राजा। २-प्रजा।

काल अंत सुरपति मन जान, प्रलय होय अव आरज थान।
आज्ञा दई नियोगी देव, कछु जीवनकी रक्षा लेव।३२७॥
सो तहँ आय न कीनी वेर, इक इक जाति जीव सब ठेर।
जुगल वहत्तर ले लैं जोइ, राखैं निकट विजयारध[1] सोइ॥३२८॥
पृथिवी अगिन पवन जल जोर, इत्यादिक वरषै घनघोर।
लवणसमुद्र प्रजाद हि छोर, प्रगटौ बहु जल आरज ओर॥३२९॥
दिन उनचास भयौ उतपात, आरज खंड सकल जिय घात।
सो जल निघट्यौ उदधि समाय, चित्राभूमि रही ठहराय॥३३०॥
फेर शरकरा स्वाद समान, वरषी मृतिका तिहि अस्थान।
इहि विधि सर्पिणि काल प्रमान, सो संक्षेपहि कहौ वखान।३३१॥
फेर अजुध्या नगर बनाय, सो गुण उन जीवन तहँ ल्याय।
मृतिका हार करैं तन पोप, रहै जु सुख सौं धर संतोप॥३३२॥
उत्सर्पिणि फिर उपजे आय, वृद्धि रूप क्रम क्रम चढ़ि जाय।
जिहि प्रकार पट कालहि जान, तिहि समान वढ़ती उन्मान॥३३३॥

दोहा—इहि विधि जिन मुख कमल वच, ज्ञान पियूप हि पीय।
वम्यौ मोह मिथ्यात विप, गोतम विप्र सुधीय॥३३४॥
काललब्धिको निकट लहि, भाव संवेग वढ़ाय।
विश्व भोग तज लक्ष्मी, भयौ विरक्त सुभाय॥३३५॥

चौपाई।

यह मिथ्या मारग दुखदाय, अशुभ पाप उपजावै आय।
मैं सेयौ सुवृथा चिरकाल, मूढ़ चित्त निंदत जग जाल॥३३६॥

१—विजयार्ध पर्वत।

जथा अन्ध नर कूप हि परै, तहां विकल नाना दुख धरै।[1]
त्यौं मिथ्यात अन्ध जग जीव, नरक कूपमें गिरै अतीव ॥३३७॥
समकित व्रत चित धर्म हि गहै, तौ शिवपंथ सुगम कर लहै।
जो अहि खाइ तो इक भव जाय, पै मिथ्या भव भव दुखदाय॥३३८
गो सिंग हि में दूध जु कढ़ै, जल विलोइ तो नैनू बढ़ै।
मिथ्या कर तो भी सुख नांहि, धर्मलाभ क्यों हू है ताहि ॥३३९॥
मेरो सफल जन्म है आज, पुण्य धन्य पाये जिनराज।
कह्यौ धर्म मारग सुख भास, मिथ्यातम वच किरण प्रकास॥३४०॥
इत्यादिक चिंता अधिकाइ, परमानंद बढ्यौ बहु भाइ।
धर्म अधर्म फलाफल जान, भयौ गाढ़ वैराग्य प्रवान ।.३४१॥
मिथ्या आरत ममता देह, इनकौ नाश कियौ तज नेह।
परम दिगम्बर दीक्षा धरी, मन वच काय शुद्धि आदरी ॥३४२॥
तीनौ भ्रात दिगम्बर भये, शिष्य पंचसै जुत मुनि ठये।
तज्यौ संग चौवीस प्रकार, जिनमुद्राधारी अविकार ॥३४३॥
और भव्य बहु संजम लयौ, मोह संग छिनमें तज दयौ।
सुन नारी मन विरकित होइ, गृह तज भई अर्जिका सोइ ॥३४४॥
काहूने श्रावक व्रत लए, सत्य दया निज उरमें ठए।
सुनि श्री जिनमुख अमृतवानि, नरनारी निज निज व्रत ठानि॥३४५
चतुर निकायी देवनि गनै, मानुष पशु मिथ्यात हि भनै।

१—अन्य शास्त्रोंमे ऐसा निरूपण है कि—'गौतम विप्र जब समवशरणमे गया तब मानस्तम्भके देखनेसे उसका सब मान गल गया। जिससे उसने उसी समय दीक्षा लेली तथा भावोंकी विशुद्धतासे चार ज्ञानोंको प्राप्तकर गणधर पदवी प्राप्त की। इसके बाद भगवान महावीरस्वामीकी दिव्यध्वनि खिरी।

ते जिनवानी सुनकै डरै, दयाभाव सबही प्रति करै ॥३४६॥
व्रत आचार भक्ति उर लाइ, पूजा दान भाव अधिकाइ ।
कोई तप जप लेइ अपार, कठिन कर्मनाशक निरधार ॥३४७॥
अब गौतम गणराज प्रधान, प्रथम इन्द्र नमि शिर धर पान ।
द्रव्य द्रव्य जुत पूजा करी, भक्ति सहित अस्तुति विस्तरी ॥३४८॥
ततछिन श्री गौतम गणराइ, सप्त ऋद्धि उपजी तहँ आइ ।
पूरव पुण्य प्रगट जहँ भयौ, शुद्ध प्रमाणी शुभ पद लयौ ३४९॥
दोहा—देखो जगमें शुद्ध मन, इष्ट संपदा होत ।
उपजे आवे छिनकमें, केवलज्ञान उदोत ॥ ३५०॥

चौपाई ।

जथा असुरगणमें सुरराय, त्यौं गणधरमें गौतम थाय ।
मन विचार सौधर्म सुरेश इन्द्रभूति कहि नाम महेश ॥३५१॥
श्रावन दुतिया पहलौ पक्ष, शुद्ध जोग शुभ लगन प्रतक्ष ।
पूर्वाह्निक बेरा तहँ आय, तज परिगह गनधर पद पाय ॥३५२॥
सो प्रभु तत्त्व पदारथ कहै, सो जथार्थ गनधर सरदहै ।
द्वादशांग तब रचना धार, ग्यारा अंग पूर्व दश चार ॥३५३॥
तिनके नाम कहौं श्रुत उक्त, पद अश्लोक वरण संजुक्त ।
आचारांग प्रथम जानिये, सूत्रकृतांग दुती मानिये ॥३५४॥
तीजो स्थानक कहिये अंग, चौथो है समवाय अभंग ।
पंचम व्याख्यप्रज्ञप्ति विशाल, छठमौं ज्ञातृकथा गुनमाल ॥३५५॥
सातम अंग उपासकध्ययन, आठम अन्तःकृतगुन स्यन ।
नवम अनुत्तर कहिये सोइ, दशम प्रश्नव्याकरण जु होइ ॥३५६॥
विपाकसूत्र एकादश जान, बारम दृष्टिवाद सुख-खान ।

ताके पूर्व चतुर्दश कहै, तिनके नाम किमपि अब लहै ॥३५७॥
प्रथम पूर्व उतपाद बखान, अग्रायणी दुतिय पहिचान।
वीरजवाद तृतिय अवलोइ, अस्तिनास्ति पुन चौथो होइ ॥३५८॥
ज्ञानप्रवाद पचमो जान, कर्मप्रवाद षष्ठमो मान।
सत्यप्रवाद सप्तमो गनो, आत्मप्रवाद अष्टमो भनो ॥३५९॥
प्रत्याख्यान नवम गुण सार, दशमो पूरव विद्या धार।
कल्याणवाद गेरम सरदहै, प्राणवाद बारम मन गहै ॥३६०॥
क्रियाविशाल त्रयोदश कहो, लोकबिन्दु चौदम सरधहो।
नामावलि जानो यह सार, सकल भेद आगम विस्तार ॥३६१॥
द्वादशांग पद सब परमान, इक सय बारह कोड़ि बखान।
लाख तिरासी अंठावनी, सहस पंचदश अधिके भनी ॥३६२॥

अथ सर्वपद श्लोक—

पंचहजार जु कोडाकोड़ि, ऊपर और सातसै जोड़ि।
त्रेशठ कोड़ाकोड़ी जान, पैंसठ लाख कोडि परवान ॥३६३॥
सहस संतावन कोडि सहीत, तातैं अधिक और सुन मीत।
बाइस कोड़ि पचासी लाख, सो अरु साढ़े सात जु भाख ॥३६४॥
द्वादशांग पद सकल विचार, यह अश्लोकनि संख्या धार।
तासें एक पदहि विस्तार, कहि अश्लोक वरण अवसार ॥३६५॥
कोड़ि इंक्यानव आठ जु लाख, छहसो साढ़े इकसठ भाख।
इक अश्लोकहि संख्या सोइ, द्वात्रिंशत अक्षर तस होइ ॥३६६॥
अब इक पदके अक्षर जितै, भाषौं जिनशासन परिमितै।
एक सहस छहसो चौंतीस, इतने कोड़ि कहे जगदीश ॥३६७॥
लाख तिरासी सात हजार, अठसया य अट्ठासी धार।

अब सुन चार वेद परकास, द्वादशांग गर्भित गुन जास ॥३६८॥

चार वेद-अनुयोगोंका वर्णन—

पद्धड़िछन्द ।

प्रथमानुयोग है प्रथम वेद, जामें त्रेशठ पद कथन भेद ।
है दुतिय वेद करणानुयोग, लोकाअलोक प्रगट्यो मनोग ॥३६९॥
चरणानुयोग त्रय वेद जान, जहँ मोक्षपन्थ कारण बखान।
द्रव्यानुयोग चहु वेद भास, षट द्रव्यन भेदाभेद जास ॥३७०॥

दोहा—द्वादशांग रचना रची, इन्द्रभूति गणनाय ।
सो विधि कवि संक्षेप कर, वरन्यौ आगम पाय ॥ ३७१ ॥

गीतिकाछन्द ।

बहु भांति धर्म विपाक करकै, भये गौतम गणपती ।
सकल मुनिगण मुख्य शोभत, चरन अर्चैं सुरपती ॥
श्रुतज्ञान अखिल विधान पूरण, प्रगट भव्यनि हित कर्‍यौ ।
यह जान बुधजन धर्म उर धर, सिद्ध सब कारज सर्‍यौ ॥३७२॥
धर्म जगमें मुख्य करता, धर्म नेह बढ़ावही ।
धर्म अघ[1] भट विजय कीनौ, धर्म शिवपद पावही ॥
जो धर्म प्रभु उपदेश वानी, सभा द्वादश प्रति भनी ।
कहि 'नवलशाह' प्रनामि जिनपद, धर्म मुहि दीजै धनी ॥३७३॥

इति श्री कविरत्न नवलशाह विरचित भाषाछन्दोबद्ध वर्द्धमानपुराणमें भगवत्कृत दिव्यध्वनिमें श्रावक-यतिधर्मका वर्णन, षटकाल कथन, गौतम गणधर प्राप्ति, द्वादशांग रचना और चार अनुयोगोंका वर्णन करनेवाला पञ्चदश अधिकार पूर्ण हुआ।

१—पापरूपी योद्धा ।

षोडश अधिकार।

मंगलाचरण।

दोहा-मोह नींद नाशन उदय, ज्ञान सूर्य जिनराय।
विश्व तत्त्व दीपक नमौं, भव्य कमल विकसाय॥ १॥

विहारके लिये इन्द्रकी भगवानसे प्रार्थना करना।

चौपाई।

अब सौधर्म इन्द्र बुधवान, हरषवंत प्रनम्यौं भगवान।
भक्ति सहित अस्तुति आरंभ, निजहित कियौ परम गुन दंभ॥ २॥
तुम तीर्थंकर जगत महेश, पर उपकार करन परमेश।
कीजे आरज खंड विहार, भव्य पुरुष संबोधन सार॥ ३॥
तुम प्रभु तीन जगत परवीन, निर्मल गुणसागर सम लीन।
केवलज्ञान चराचर साथ, वचन सुधाकर करहु सनाथ॥ ४॥
प्रभु अब कीजे परम विहार, आरजखंड संबोधन धार।
विश्व तत्त्व जिमि होय प्रकाश, भविजनके संशय अघ नाश॥ ५॥
तुम उपदेश भव्य जिय लहै, भवथिति हनै खडग तप गहै।
होय मोक्षपद निहचै तेह, सुखसागर जु अनन्त लहेह॥ ६॥
कोई पावे पद अहमिन्द्र, भोगैं सागर थिति सुख वृन्द।
तुम उपदेश धर्म सुन कोइ, वमैं पाप मिथ्यातम सोइ॥ ७॥
तातैं प्रभु अब करहु विहार, धर्म अनुग्रह होइ अपार।
भव्य मोक्षमारग जिमि लहैं, अर मिथ्याती समकित गहैं॥ ८॥
बहुविध शक्र करी थुति घनी, कीजे गमन भाग जग तनी।
वार वार परशंसा कीन, निज कृति कर्म करै इमि हीन॥ ९॥

भगवानके विहारका वर्णन—

तब प्रभु तीन जगत गुरु राय, कियौ विहार जगत हित ल्याय।
मिथ्यामत इमि चल्यौ पलाय, ज्यों रवि उदै तिमिर नशि जाय॥१०
गमन समय औरहि विधि भई, समोशरण रचना खिर गई।
जहँ थिर होइ किमपि फिर जाइ, छिनमें तहां रचै धनराइ॥११॥
द्वादश सभा संग मिलि चलैं, जय जय घोष करत जहँ भलै।
नभमें गमन करै सब सोइ, बारह कोटि पटह ध्वनि होइ॥१२॥
छत्र चमर सुर धरहिं सम्हार, ध्वजा पंक्ति कर लिये अपार।
विहरैं भव्यन हित भगवान, अन इच्छापूर्वक उर जान॥१३॥
समोशरण प्रभु जहँ थिर होइ. ईति भीति व्यापै नहि कोइ।
सौ जोजनके गिरदाकार, तहँ सुरभिक्ष लहै अधिकार॥१४॥
वीरज आदिक अति कृषि होंय, सकल नाज उपजै क्षिति सोय।
सूखे सर जे जलकर पूर, फूलै अंवुज अति तहँ भूर॥१५॥
नाना देश ग्राम पुरथान, गगन गमन विहरै भगवान।
विश्व भव्य उपकार सु करैं, जग जीवनकी दुविधा हरैं॥१६॥
केहरि मृग इक थान बहोर, गाय बाघ निवसै अहि मोर।
इत्यादिक जे क्रूर जु होंय, प्रानी वद्ध लहैं नहि कोय॥१७॥
घाति कर्म जब हते जिनेश, अन अहार नहि भुगतैं लेश।
पुष्ट करै नोकर्म अहार, सुख अनन्त बीरज अधिकार॥१८॥
द्वादश गण वेष्टित सरवंग, शक्रादिक पद नमहि अभंग।
नर सुर असुर और तिरजंच, करै नहीं उपसर्ग प्रपंच॥१९॥
चतुरानन चारहुं दिश थाय, तीन जगत जीवन सुखदाय।

निज निज कोठा थिर समुदाय, सवही प्रभु सन्मुख लौ लाय ॥२०॥
केवलज्ञान चराचर जान, विद्या विभव स्वामिता वान।
दिव्य देह छाया विन ऐन, पलपौं पल नहिं लागैं नैन॥२१॥
नख अरु केश वृद्धि नहि होइ, जितने थे तितने रहि सोइ।
चार घातिया खय जब करै, ये दश अतिशय उत्तम धरै॥२२॥
सब हित होइ मागधी भाष, सर्व अंगधर सुन अभिलाष।
खिरै निरक्षर वानी सोइ, सकलाक्षर गर्भित पुन होइ॥२३॥
सब जनको आनंद करतार, उर संदेह निवारन हार।
सब भाषामय परिणति करै, मधुर मनों अमृत घन झरै॥२४॥
दुविध धर्म प्रगटन सु विशाल, तत्त्व अर्थ सूचक गुणमाल।
अहि नौरादिक[1] वैर भुलाय, मैत्रीभाव करैं सो आय॥२५॥
सब ऋतुके फलफूल हि जास, प्रभुहिं देखि तरु होंहि हुलास।
जहँ आगमन करैं भगवान, दिपै भूमि दर्पणसी जान॥२६॥
तीन जगत प्रभु निकटहि सेव, मंद सुगंध पवनकर देव।
परमानंद लहै सब जीव, तन मन शोक न उपजै सीव॥२७॥
मरुतकुमार पवन अति लहै, इक जोजन तृण कीट न रहै।
स्तनितकुमार भक्ति उर धार, गन्धोदक वरसावै सार॥२८॥
हेम कमल दल केशर जोग, गमन समय सुर रचैं मनोग।
पंद्रह पंद्रह पंक्ति प्रमान, सवादोइसै सब उनमान॥२९॥
अन्तरीक्ष प्रभु डग नहि धरैं, अधोभाग लौं तहँ विस्तरैं।
सब जिय सुख सन्तोष बढ़ाय, देश अवनि इमि लहै सुभाय॥३०॥

१—सर्प और नेवला आदि जन्मविरोधी जीव

समोशरण जिहि थानक होइ, दश ही दिश तहँ निर्मल सोइ।
चतुरनिकाय देव समुदाय, हरि[1] हलधर[2] मिलि सेवें पाय ॥३१॥
रत्नमयी दीपति अधिकार, एक सहस अति तीक्षण आर।
मिथ्यारूपी तमको दलै, धर्मचक्र प्रभु आगे चलै ॥३२॥
दर्पणादि वसु मंगल दर्व, सोहै अति मंगलवत सर्व।
इहि विधि देव रचित अवधार, वरणे अतिशय दश अर चार ॥३३॥

दोहा—दश अतिशय प्रभु जनमके, दश केवल परकास।
देव रचित चौदा कहै, सब चौतीस सुभास ॥३४॥
प्रातिहार्य वसु संग जुत, नंत चतुष्टय वंत।
छयालीस गुण ये कहै, मंडित श्री अरहन्त ॥३५॥

चौपाई।

क्षुधा तृषा पुन राग जु दोष, जन्म जरा अरु मरणहि तोष।
रोग सोग भय विस्मय जान, निद्रा खेद स्वेद महवान ॥३६॥
मोह अरति चिंता अधिकेह, द्वेष अठारह जानों येह।
इनतैं रहित निरंजन देव, नर सुर असुर करैं सब सेव ॥३७॥
विहरैं देश ग्राम पुर खेट, करै धर्म उपदेश हि हेट।
मिथ्याज्ञान कुमारग अंध, वचन किरण लख जगत प्रबन्ध ॥३८॥
रतनत्रय तप धारैं सोय, शिवमारग पावैं भ्रम खोय।
जिनवच सुधा पियैं जो लोय, फेर न जगमें आउन होय ॥३९॥

राजगृहीके विपुलाचल पर समवशरणका आगमन—

मगधदेश राजग्रह सार, विपुलाचल पुर निकट पहार।

१-नारायण, २-बलभद्र।

चार संघ सुर चतुर निकाय, आये सभा सहित जिनराय ॥४०॥
षट ऋतुके फल फूल सु भये, वनपालक लख अचरज ठये।
भई भेंट आयो नृप पास, श्रेणिक भूप सभा परगास ॥४१॥
धर फलफूल प्रणाम कराय, अर विरतंत कह्यो समझाय।
विपुलाचल पर बहु सुर भीर, समोशरण आयो जिन वीर ॥४२॥
सात पेड आगे दे राइ, प्रभु हि प्रणाम कियो हरषाइ।
बहुत दान वनपाल हि दियो, राजा उर आनंदित भयो ॥४३॥
आनंद भेरी नगर दिवाइ, हय गय रथ पय दलहि सजाइ।
सुत त्रिय बांधव पुरजन साथ, चल्यो चतुर श्रेणिक नरनाथ ॥४४॥
आयो शीघ्र न लाई वार, समोशरण दीठ्यो अविकार।
भक्तिभाव सब ही उर धरे, जय जयकार शब्द उच्चरे ॥४५॥
तीन प्रदक्षिण दे शिरनाइ, धूलीसाल प्रवेश्यो आइ।
मानस्तंभ विलोक्यो जबै, गयो मान गलि तनतें सबै ॥४६॥
क्रमकर तहँ पहुँचे पुन जाइ. दरशे वीरनाथ जिनराइ।
भक्तिभाव जुत प्रनमें पाय, वेर वेर भुवि शीस ल ाय ॥४७॥
चरणकमल प्रभु पूजे राइ, अष्टद्रव्य जल आदिक लाइ।
फिरकें नृप जिनवर पद नयो, भक्ति सहित अस्तवन जु ठयो ॥४८॥

भाषा चर्चरीकी—

धन्य आज जन्म मोहि दरसे जिनराज तोहि।
तीन लोकनाथ देव सर्व ज्ञानके धनी ॥
प्रणम्यौं जिन ब्रह्मचारि मानुष पद निहार।
दयासिन्धु मोहादिक कर्मशत्रुको हनी ॥

नमौं शान्तरूप देव पाप ताप नाशनी।
विश्व वीर मुक्ति नार वल्लभ मन रंजनी॥
जै जै जिन जगत वंद काटत भ्रम जाल फंद।
आपदा निवार सर्व दोष दुःख दाहनी॥ ४९॥
तुमरी सर्वज्ञ देव सुर नर मुनि करत सेव।
नाशत अघ जाल जन्म मरण सिन्धु उद्धरी॥
तुम गुण जो नाम लेत, चितको उछाय देत।
अंतरमति शुद्ध होत रोग शोकको हरी॥
तुमरी थुति करै जेह ज्ञानको प्रकाश तेह।
वचनको विलास पाय तत्व अर्थ सोहनी॥
जै जै जिन जगत वंद काटत भवजाल फन्द।
आपदा निवार सर्व दोष दुःख दाहिनी।५०॥
पूजत जिनराज पाय अष्ट द्रव्य शुद्ध लाय।
पातक निर नाश मोक्ष पंथ परम पावनी॥
भवदधि संसार पार तुम ही उद्धरनहार।
भव्यनि सुख करनहार धर्म बीज भावनी॥
तुम ही गुरु तीन लोक कर्मनको करन रोक।
जप तप व्रत सीख देत घोर वेदना हनी॥
जै जै जिन जगत फंद काटत भ्रमजाल फंद।
आपदा निवार सर्व दोष दुःखदाहिनी॥ ५॥
नेत्र आज सुफल होइ चरनकमल प्रभु हि जोइ।
मस्तक है सफल जास नमौं नमन अग्रनी॥

हस्त सफल भये आज चरन जुग पद समाज।
सफल भयौ मुक्ख मोहि अस्तुति कर पावनी॥
गात्र सफल कियो सर्व गन्धोदक पर्श धर्म।
बूड़त संसार सिन्धु भक्ति तास तारनी॥
जै जै जिन जगत फंद काटत भ्रम जाल फंद।
आपदा निवार सर्व दोष दुःख दाहिनी॥ ५१॥
महावीर वीर धीर घातिकर्म नाश वीर।
बन्दौं शिर नाइ नाइ सकल सिद्धि लोचनी॥
प्रनमों जिन वर्धमान मानी दल मलत मान।
ज्ञानको प्रकाश महा मोह नीद नाशनी॥
सन्मति प्रभु सुमति दाय भव भव अज्ञान जाय।
तिनके जुग चरन कमल पाप ताप मोचनी॥
जै जै जिन जगत वंद काटत भ्रम जाल फंद।
आपदा निवार सर्व दोष दुख दाहिनी॥ ५३॥

दोहा—यह विधि बहु अस्तुति करी, फिर प्रनम्यौ भूपाल।
नर कोठा आरूढ ह्वै, सुनौ सुधर्म विशाल॥५४॥

चौपाई।

उत्तम गणपतिको शिर नाय, बहुत प्रश्न कीनी नर राय।
तब श्रीमुख दिव्[1] पबानी भई, सो नृप प्रति गणधर वरनई॥५५॥
प्रथम तत्व सत्ताइस कहे, श्रावक जती धर्म द्वय लहै।
चतुरबीस जिनवर हि पुरान, जुदे जुदे भाषे गुणखान॥५६॥

१—दिव्य।

चक्रवर्ति जे द्वादश भये, तिनके सकल चरित वरनये ।
नव हरि नव प्रतिहरि बल जान, तिनको कथन कहो भगवान ॥५७॥
तीर्थंकरके तात रु मात, कामदेव चौवीस विख्यात ।
नौ नारद अरु ग्यारा रुद्र, चौरा कुलकर जान समुद्र ॥५८॥
और पुरुष जे मुक्ति हि वरा, कोई सुरग नरक पुन गये ।
तिनहीको कछु कारण पाय, कह्यो भेद गणधर समझाय ॥५९॥

व्रतोंका वर्णन—

पृथक पृथक व्रत भाषै सबै, तिनके भेद कहौं कछु अबै ।
षोडशकारण उत्तम शाख, भादों माघ चैत्र त्रय भाख ॥६०॥
दिन बत्तीस इकांतर करै, षोडश अंग भावना धरै ।
षोडश वरष प्रजंत हि गहै, नीचै तीर्थंकर पद लहै ॥६१॥
दशलक्षण पुन तीन हु वार, शुकलपक्ष पंचमितैं धार ।
दश दिन करै भाव सन्तोष, दशहु अंग पालैं निर्दोष ॥६२॥
पहुपांजलि पुन तीन हु मास, पंचमतै पञ्चो दिन भास ।
अरु रतनत्रय तीन हु पक्ष, तेरससैं त्रय दिनकर दक्ष ॥६३॥
मुठी विधान मास त्रय येह, मुठी चढ़ाय आहार हि लेह।
अष्टानक व्रत कर उर गाढ़, कातिक फागुन मास असाढ़ ॥६४॥
शुकल पक्ष अष्टम दिन आठ, नन्दीश्वर जिन पूजा ठाठ ।
प्रोषधकै कांजिक इक वार, अष्ट वरष उद्यापन धार ॥६५॥
अरु संकट व्रत तीनौं साख, तेरससे दिन तीन जु भाख।
करैं जेष्ठ जिनवर इकमास, जेठ वदी परमासे जान ॥६६॥

[1]आदितवार करै नव वार, सुदि असाढ़ भादौंभर धार।
षटरस पट महिना परजंत, एक एक रस छोड़ै संत ॥६७॥
नित रस सात वार परवान, इक इक रस त्यागै दिनमान।
[2]त्रेपन क्रिया व्रत हि अवभास, तिनके हैं त्रेपन उपवास ॥६८॥
अष्ट मूल गुण अष्टम आठ, बारह व्रत द्वादशमी ठाठ।
बारह तप बारह द्वादशी, प्रतिमा ग्यारह एकादशी ॥६९॥
चार दानकी चौथ जु चार, जलगालन परिमा इक धार।
सामायिक अंथौ द्वै दोज, रत्नत्रय त्रय तीज समेत ॥७०॥
ए त्रेपन विधि प्रोषध करै, एकवार अन्तर नहि परै।
अष्ट करम चूरन व्रत जान, चौंसठ दिनको कह्यौ प्रमान ॥७१॥
अष्टमि वसु केवल उपवास, अष्टमि आठ कंजकी जास।
अष्टमि वसु इकै[3] तंदुल खाव, अष्टमि आठ ग्रास इक पाव ॥७२॥
अठ अष्टम कुरछी भोजन्न, अष्ट अष्टमी रस इक अन्न।
एकल ठानो अष्टमि आठ, वसु अष्टमि रूक्षान्न सु ठाठ ॥७३॥
णमोकार व्रत अव सुन राज, सत्तर दिन एकांतर साज।
तीर्थंकर चौवीस और, अड़तालीस इकांतर ठौर ॥७४॥
पुन समकित चौवीस हि भनो, अड़तालिस एकांतर गनो।
भावन पचीसी व्रत जान, एकांतर पश्चास प्रमान ॥७५॥

१—रविवार, २—त्रेपन क्रियाव्रतके ५३ उपवासोंका विवरण अष्टमूल-गुण प्रयुक्त अष्टमीके ८, बारहव्रत प्रयुक्त-द्वादशीके १२, बारह तप प्रयुक्त—द्वादशीके १२, ग्यारह प्रतिमा प्रयुक्त—एकादशीके ११, चार दान प्रयुक्त—चतुर्थीके ४, रत्नत्रय प्रयुक्त—तृतीयाके ३, जल गालन प्रयुक्त—प्रतिमाका १, सामायिक और अन्थउ द्वितीयाके २ =५३। ३—सिर्फ चावल।

पल्य विधान सु चौंतिस दिना, पच्चिस प्रोषध नव पारना।
एकहितैं पंचहि लौं चढ़ै, फेर उतरि पहलै लौं रढ़ै ॥७६॥
व्रत नक्षत्र माल उर धरै, सो चौवन एकांतर करै।
लब्धि विधान करौ व्रत येह, है बत्तीस एकान्तर तेह ॥७७॥
सप्तकुम्भ व्रत बासठ दिना, पैंतालिस सत्रह पारना।
बड़ी सिंहक्रीडन व्रत सुनौ, इकसे अडसठ दिनको गुनौ ॥७८॥
इकसे सैंतीस हि उपवास, करै पारने इकतिस जास।
त्रिगुणसार व्रत इकतालीस, ग्यारा जेवा प्रोषध तीस ॥७९॥
भइ वन सिंहक्रिडनी जान, दो सय दिन ताकौ परवान।
इकसय पचहत्तर उपवास, करै पारने पच्चिस जास ॥८०॥
चारितशुद्धि व्रत गुणधाम, बारहसे चौतीसा नाम।
तेरह अंग नवति उपवास, करै निरन्तर पूरन जास ॥८१॥
व्रत जु सर्वतोभद्र विचार, सौ दिनकी मर्यादा धार।
प्रोषध पचहत्तर परवान, अरु पच्चीस पारने जान ॥८२॥
महा सर्वतोभद्र हि जास, दोमे चौवन दिन परकास।
इक सय पंचावन उपवास, और पारने बर उनचास ॥८३॥
व्रत दुखहरण एकसे बीस, तितने ही एकांतर दीस।
व्रत जु पुरन्दर हरि हरिमास, शुक्लाश्रम लौं एका वास ॥८४॥
धरम चक्र पालक व्रत जास. पट जेवा पोडश उपवास।
बृहद् धर्मचक्र हि व्रत धरै, दशसे दश दिन मौकल करै ॥८५॥
जिनगुणसंपति छ्यासठ दीस, प्रोषध छत्तिस पारन तीस।
लघु जिनगुण-संपति त्रेसट्ठ, कर एकांतर पूज्ञ प्रसट्ठ ॥८६॥

सुख संपति दिन इकइस वीस, पूनौ मावस प्रोषध दीस।
वरष पांच लौं पूरन होइ, सुन अब सुखसंपति व्रत जोइ ॥८७॥
दिन त्रिशोत्तर वृष दश करै, पून्यौ चाहै मावस धरै।
रुद्र वसंत जु चालिस दिना, पैंतिस प्रोषध पन पारना ॥८८॥
शील कल्यान एकसै असी, करैं पोषलौं प्रोषध जसी।
इकसय वीस पञ्चकल्याण, प्रोषध जिन कल्यानक ठान ॥८९॥
इन्द्रकल्यान दिवस पच्चीस, पंचपंच दिन ब्यौरो दीस।
प्रोपध कांजिक एकल ठान, रूक्षजु अनागार पहिचान ॥९०॥
श्रुतकल्याण वही विधि धार, श्रुत हि पठन वर लेइ अहार।
लघुकल्याण व्रतहि दिन पंच, एक-एक दिन बहुविध संच ॥९१॥
मध्यकल्याण जु तेरह दिना, आदि अंत है प्रोपध गिना।
एकलि चार कंजिका तीन, रूक्षरु अनाहार द्वय दीन ॥९२॥
श्रुतस्कन्ध व्रत जन आदरै, तीस दिवस एकांतर करै।
पंच हि श्रुत जान हि व्रत सार, कर उपवास निरंतर धार ॥९३॥
इक सय अड़सट दिनपर मान, जब चाहै आरंभै थान।
लघु रत्नावलि इकतालीस, ग्यारा जेवा प्रोषध तीस ॥९४॥
मध्यम रत्नावलि व्रत और, प्रोषध सबै बहत्तर ठौर।
शुकलपंचमी छट इकदशी, कृष्ण दोज अर छट द्वादशी ॥९५॥
बद्धि रत्नावलि व्रत हि बखान, त्रय सय छासट दिन परवान।
प्रोषध सबै तीनसै धरै, छयासट तहां पारने करै ॥९६॥
मुक्तावलि प्रोषध उनचास, करैं पारने तेरह जास।
लघु मुक्तावलि नव उपवास, ताकौ ब्यौरौ चार जु मास ॥९७॥

भादौं सुदि सप्तम इकदशी, कांर वदी षष्ठी त्रोदशी।
अर सुदिकी एकादश जान, कातिक वदि बारस पहिचान।९८॥
सुदिकी छह अरु एकादशी, अगहन वदि अष्टमि मन वमी।
यही मास सुदि तीज प्रकाश, सो व्रत पालो नव उपवास॥९९॥
अब दुयकावलि व्रत अवनीश, प्रोषध सब इकसय छब्बीस।
मास मासमें वेला तास, शुक्र पक्ष महि चार सु हास॥१००॥
परिमा दोज चौथ ए चून. आठैं नवैं चतुर्दशि पून।
कृष्ण पक्ष छट आठै नमै, तेरस चौदश ए त्रय समै॥१०१॥
लघु दुयकावलि इकसय वीस, बेला प्रोषध कर चौबीस।
इक अहार अड़तालिस और, सबै पारनै चौविस जोर॥१०२॥
अब कनकावलि कर इक वर्ष, महिना प्रतिछह प्रोषध पर्व।
शुक्र प्रतिपदा पंचमि दसैं, कृष्ण दोज छह द्वादश बसै॥१०३॥
वड़ी कनकवलि व्रतहि वखान, दिन जु पंच सय बाइस मान।
प्रोषध कर चहुसै चौंतीस, जेवा सबै अठासी दीस॥१०४॥
इकावलि इक वर्ष समात, मासहि प्रति प्रोषध कर सात।
कृष्ण चौथ चौदश अष्टमी, अरु आठै परिमा पंचमी॥१०५॥
वज्रमध्य व्रत दिन अडतीस. जेवा नव प्रोषध उनतीस।
मृदंग मध्य व्रत कर दिन तीस, सत जेवा प्रोषध तेवीस॥१०६॥
मुरज मध्य दिन तेतिस जान, छब्बिस प्रोषध जेवा सात।
मेरु पंक्ति दो सय दिन वसी, सय बिस प्रोषध जेवा असी॥१०७॥
नन्दीश्वर पंकति व्रत होइ, अष्टोत्तर सय दिन अवलोइ।
प्रोषध तिहि अंठावन धरै, सब पंचास पारने करै॥१०८॥

लक्षण पंक्ति चारसै आठ, कर एकांतर पोषध ठाठ।
विमान पंक्ति दिन त्रेसठ गहै, प्रथम हि वेला एक जु लहै ॥१०९॥
फिर एकांतर वार जु करै, यांही भांत निरन्तर धरै।
बारह तप व्रत बारह भांत, बारह बारह इक रस सात ॥११०॥
रसहि त्याग चौरासी एह, पुन कंजक बारह गन लेह।
अर उदण्ड बारह आहार, मन चिंते बारह निरधार ॥१११॥
एकल बारह बारह रुक्ष, इकसय चवालीस दिन स्वच्छ।
अठ सय गंध त्रय सब बन्न, दुसय अठासी प्रोपध मन्न ॥११२॥
करै पारनै चौसठ जास, अर चन्द्रायन व्रत हर मास।
शुक्ल ग्रास इक दिन दिन बढ़े, कृष्ण पक्ष इक इक घट रहै ॥११३॥
जिनमुख अवलोकन व्रत एव, वर्ष दिना दरशन कर जेव।
जिनरात्री व्रत एक उपास, फागुन सुदि चौदशको भास ॥११४॥
पूजा कर जागरण कराय, पहर पहर प्रति जिन दरशाय।
बार बिजौरा व्रत हर मास, दोउ द्वादशी कर उपवास ॥११५॥
ए सौनव व्रत दिन चारसै, ऊपर तहां पचासी लसै।
जेवा असि चउसय पचवास, इकतं नवलौं चढ़ि चढ़ि जास ॥११६॥
ऐ सोदस व्रत छसै पचास, सौ जेवा सब पांचसै पचास।
दशलौं चढ़ि अनुक्रम सोइ, जो लौं यह व्रत पूरन होइ ॥११७॥
कंजिक व्रत जल भात अहार, चौसठ दिन पालै निरधार।
जथाशक्ति कछु और व्रतंत, तितनै मास रु वर्ष प्रजंत ॥११८॥
व्रत रौहिणि कर प्रोपध गाढ़, एक वरष थवि प्रथम अषाढ़।
कर्म निर्जरा व्रत इक वास, महिना प्रति चौदश उपवास ॥११९॥

श्रुति पंचमि पढ़ि शास्त्र विशाल, जेठ सुदी पंचमि उपपाल।
उज्वल पंचमि पैंसट मास, शुक्ल पंचमीको उपवास।१२०॥
कृष्ण पंचमी तैं ही वर्ष, कृष्ण पक्ष पंचमिको पर्ष।
[आ]काश पंचमी नजर अकास, भादौं सुदि पंचमि उपवास॥१२१॥
पंच पौरिया वा दिन जान, घर पचीस बांटै पकवान।
चन्दन षष्ठी भादौं शुक्ल, चंदन चर्चि सु भोजन शुक्त॥१२२॥
[निर]दोष सप्त भादौं सुदि धर्न, फूलन मंडप पूजा कर्न।
कुवांर सप्तमी वाही दिना, खजुरी मण्डप पूजे जिना॥१२३॥
[नि]शल्य अष्टमी भादौं सुदी, प्रोषध कर शयनासन जुदी।
मन चिंती आठैं वह थान, मन चिंते भोजन पक्वान॥१२४॥
अब सुगन्धदशमी व्रत जान, भादौं सुदि दशमीको मान।
गन्ध चर्च दश भेद य हरै, पीछै भोजन आपुन धरै॥१२५॥
पुनि सौभाग्य दशमि व्रत ठान, दश सुहागनौं भोजन दान।
दशमिलि मानी घृत अन्नधार, आदर जुत परघर आहार॥१२६॥
चमक दशमि औरै चमकाइ, जो भोजन महि हो अंत्राइ।
छहर दशमि व्रत इहि परकार, छह सुपात्रको देइ अहार॥१२७॥
तम्बोल दशमि व्रतको यह ओर, दश सुपात्रको देइ तमोर।
पान दशमि वीरा दश पान, दश श्रावक दे भोजन ठान॥१२८।
फूल दशमि फूलन दश भार, दश सुपात्र पहिराइ अठार।
फल दशमी दश फल कर लेइ, दश श्रावकके घर घर देइ॥१२९॥
दीप संमद संदीप बनाय, जिनहि चढ़ाय अहार कराय।
धूपदशमि व्रत धूप दशंग, खेवैं जिन ढिग भाव अभंग॥१३०॥

झवादशमि व्रत दश दश पुरी, दश श्रावक दे भोजन करी।
बारादशमि सुहारी लेइ, बारा बारा दश घर देइ ॥१३१॥
व्योम दशमि दश दशमि कराइ, नये नये दश पात्र जिमाइ।
दशमि उदंड उदंड अहार, पंच घरनि जो मिलि अविकार॥१३२॥
भंडार दशमि व्रत शक्ति जु पाय, दश जिनभवन भंडार चढ़ाय।
अखय दसें सुन सावन मास, तिहि व्रत कर केवलि उपवास॥१३३॥
अब छह दशमी वांकी ओर, देखो कथाकोशके ठोर*।
दूध रस व्रत सुदि भादौं धरै, बारस को पय भोजन करै ॥१३४॥
श्रवण द्वादशी ताही दिना, अनशन करै शुद्ध मन तना।
अनंतचतुर्दशि चौदह वर्ष, भादौं सुदि चौदशिको पर्ष ॥१३५॥
जितनी शाख जोन व्रत धरै, तितनी वर्ष उजेनो करै।
जथाशक्ति पूजा अर दान, नहितो व्रत दूनो परवान ॥१३६॥
और सबै व्रत करियो जेह, अरु तिहि कस्यो लह्यो फल तेह।
×कथाकोशमें लीजो जान, इहां धरै बहु बढ़े पुरान ॥१३७॥
सो गणराय भूप प्रति कह्यो, भविजन सुन सब ही व्रत लह्यो।
इत्यादिक बहु प्रश्नहि धार, आदि अन्त सब साठ हजार ॥१३८॥
दोहा—जो पूछी नृप वारता, गोतम उत्तर साज।
वार सभा जय जय कियो, कथा नाथ गणराज ॥१३९॥
फिर गणधर पद प्रणमिकै, पूछै श्रेणिक राय।
कहो भवांतर पूर्व मुहि मन विकलप जिमि जाय॥१४०॥

---

* इसके आगेका पाठ मूल प्रतिमें छूटा हुआ है।

× व्रतोंका स्पष्ट वर्णन हरिवंशपुराण (प० गजाधरलालजीका अनुवाद) जैन व्रतकथासंग्रह, तथा कथाकोशके अन्य ग्रन्थोंमें जानना चाहिये।

इन्द्रभूति गणराज कहि, सुन बुधिवंत नरेश।
"एकचित्त तुम सरदहौ, कहौं भवांतर शेष ॥१४१॥

राजा श्रेणिकका भवान्तर वर्णन—

चौपाई।

ये ही आरजखंड मझार, विंध्याचल उत्तंग पहार।
दक्षिण दिश वरकूट विशाल, जहां सघन वन अधिक रसाल ॥१४२॥
खदिरसार तहँ बसै किरात, मांस अहारी जियकर घात।
एक दिना शुभ पुण्य उपाय, दरश समाधिगुप्त मुनिराय ॥१४३॥
शिर नवाइ तिन प्रनमे पाय, धर्मवृद्धि दीनी जतिराय।
सुन किरात फिर जोरे हाथ, भो मुनि कृपासिंधु जगनाथ ॥१४४॥
कहा, धर्म कहिये समझाय, कौन भांति तिरि पावत ताय।
भील वचन सुन मुनिवर कहै, सुरापान मधुमास न लहै ॥१४५॥
जीव तनौं वध करै न लेश, यही धर्म जगमांहि महेश।
ता कर परम पुण्यको लहै, निहचै सुरग सुख्यको गहै ॥१४६॥
तब मुनि वच सुन कहै किरात, मधु अर मास न त्यागौ जात।
याहीको हमरो आहार, या विन छिन नहिं जीवनधार ॥१४७॥
भील वचन सुन कहै मुनेश, काक मांस तुम त्यागो शेष।
यह सुन कहै किरात जु सोय, यौं व्रत नेम राख हौं जोय ॥१४८॥
प्रान जांय पै व्रत नहि तजौं, तुमरे चरणकमल उर भजौं।
भील वचन सुन मुनिव्रत दयौ, अति संतुष्ट होइ तिहि लयौ ॥१४९॥
इहि विधि काक मांस तज तेह, नेम गाढ़ धारौ अधिकेह।
फिर मुनिवरके प्रनमे पाय, गयौ आपने गृह सुख पाय ॥१५०॥
एक समय तिहि अशुभ उपाय, उपजो रोग देह अति जाय।

यह सुन भील कहै तब बैन, काक मांस मैं छोड्यौ ऐन ॥१५१॥
प्रान जांय पर व्रत नहि जाय, व्रत बिन है जीवन दुखदाय।
व्रत युत जीव स्वर्ग पद लहै, व्रत विहीन नर नरकहि गहै ॥१५२॥
यह विधि भद्रनेमि जब सुनौं, भागिनीपति आयौ तिहि तनौं।
सूरवीर तस नाम विशेख, पंथ निकट वट तरु इक देख ॥१५३॥
कांची देवी रोवत जोइ, वाही तरुवर आयौ सोइ।
देवी प्रति सो पूछत भयौ, कौन बिछोह रुदन इत ठयौ ॥१५४॥
को तुम कहां तुम्हारो ठाम, सब विरतंत कहौ अभिराम।
भील वचन सुन देवी कही, मेरे वचन सुनौ तुम सही ॥१५५॥
मैं हौं वनदेवी सुन भ्रात, याही वनमें मेरो वास।
मित्र हेत अति पीड़त देह, काम अगिन वाढी अधिकेह ॥१५६॥
खदिरसार है भर्तृ किरात, आयु निकट आई अवदात।
काक मांस व्रत पुन्यहि जोइ, होनहार मेरो पति सोइ ॥१५७॥
काक-मांस तुम देहो जात, वह नारक गति जैहै खात।
या कारण हौं रोवत खरी, और न दूजो विकलप धरी ॥१५८॥
यह प्रकार जक्षिणि वच सुनै, समाधान ता निज मन गुनै।
नैम भंग मैं करतो जात, धनदेवी जिहि राखी वात ॥१५९॥
या कहि आतुर आयो तहां, भद्र भील दुख पीड़ित जहां।
तिहि परिणाम परीक्षा काज, कपट वचन सो भाषै जास ॥१६०॥
अहो भद्र दुख पीडित गात, वैद्य कथित औषधि किन खात।
वृथा मरण काहे तुम लहो, जो जीवत तौ फिर व्रत गहो ॥१६१॥
तिनके वच सुन बोल्यो वाहि, तुमे जोग यह कहिवो नाहि।
अनुचित कर्म जगतमें निंद, श्वभ्र तनौं कारण दुखवृन्द ॥१६२॥

मरण अवस्था पहुंची मोहि, सांप्रति जमं नित दर्शन होहि।
तातैं किंचित धर्म-सनेह, सो परभव सुखदाय कहेह ॥१६३॥
शूरवीर निश्चय दृढ़ जान, तब हि जक्षिनी कथा बखान।
व्रत फल कह्यौ सकल समझाय, देवी प्रीति वचन अधिकाय॥१६४॥
तिन वच सुन,तब भद्र किरात, उर संवेग बढ्यौ अवदात।
सकल मांसको कीनो त्याग,. पंच अणुव्रतमें अनुराग ॥१६५॥
काल निकट उर धार समाध, तजे प्रान परमेष्ठि अराध।
प्रथम स्वर्ग सौधर्म सुथान, भयो महर्द्धिक देव महान ॥१६६॥
शूरवीर फिर निज पुर जाय, तरुतल देवी देखी जाय।
जब जक्षिन प्रति पूछी तेह, अब किहि कारण रोवत येह ॥१६७॥
तब फिर जक्षिन भाषे एम, शूरवीर सुन कारण जेम।
मो विरतांत कह्यौ तुम जाइ, भील मांस सब त्याग कराइ ॥१६८॥
ता फल प्रथम स्वर्ग सो गयौ, उत्तमदेव महर्द्धिक भयो।
व्यंतर पदको कीनो नाश, मेरो पति न भयो गई आश ॥१६९॥
भुगतै कल्प लोक सुख जाय, बहु देवी सेवैं तिन पाय।
सकल लक्ष्मी तहँ अधिकाय, सो सब भेद कहो समझाय ॥१७०॥
देवी वचन सकल सुन सोइ, उरमें इमि चिंत्यौ भ्रम खोइ।
व्रत फल प्रगट प्रवर सुखकार, परमारथ पथ साधनहार ॥१७१॥
व्रत सौ स्वर्ग संपदा लहै, व्रत बिन नरक घोर दुख सहै।
यह चिंतत वह गयौ वतीपँ, समाधिगुप्त मुनिराज समीप ॥१७२॥
शिर नवाइकै प्रनमौं पाय, श्रावक व्रत लीनौं सुखदाय।

१-इसी समय, २-यमराज मृत्यु। ३-व्रति। ४-व्रतियोंके स्वामी-मुनीन्द्र।

चरणकमल नमिकै गृह गयौ, जथाजोग्य व्रत पालत भयौ ॥१७३॥
ये ही आरज खण्डहि ठयौ, सो मरि सुन्दर सुर द्विज भयौ।
मिथ्यामत तिहिकै अधिकार, अर्हदास संबोध्यौ सार। १७४॥
काललब्धिको नियरी पाय, मिथ्यामति छोड्यौ दुखदाय।
जिनमुद्रा धर तप बहु कियौ, पूरव कर्म जलांजलि दियौ ॥१७५॥
आयु निकट मर तप फल लयौ, प्रथम स्वर्गमें सो सुर भयौ।
बहु देवी जुत क्रीड़ा करै, धर्म नेह निशदिन उर धरै ॥१७६॥

दोहा—खदिरसार सुर सुख भुगत, सागर दोइ प्रजंत।
आयु निकट तहँ तैं चयौ, पुण्य पाक कर संत ॥१७७॥
उपश्रेणिक भूपाल गृह, सती श्रीमती नार।
उपजै श्रेणिक नाम तुम, भवि श्रेणिक सुखकार ॥१७८॥
शूरवीर जिय देव वह, तुम सुत उपज्यौ सोइ।
अभयकुमार प्रधान जग, तद्भव शिवपद होइ। १७९॥
कांची देवी क्रमहि सौं, चेटक नृपकी धीय।
सती चेलना नार तुम, जिन आगम लवलीय ॥१८०॥

चौपाई।

सुने भवान्तर निज समुदाय, सप्त तत्त्व श्रद्धा अधिकाय।
श्री जिन चरणकमल प्रनमाय, गणधर नमि फिर पूछै राय ॥१८१॥
अब आगम भव कहिये मोहि, जातें उर विकलप क्षय होहि।
इन्द्रभूति बोल्यो गणराय. श्रेणिक नृप सुन चित्त लगाय ॥१८२॥
तुम कीनौं प्रथम हि मिथ्यात, पंच पाप हिंसादिक जान।
विषयनमे तुम चित बहु धर्यौ, बौद्ध भक्त अधरम आदर्यौ ॥१८३

नारक गति अवगाढ़ बधाय, थिति कीनी सप्तम भू जाय।
तातैं दुविध धर्म जे करैं, निहचै सुरग मुकति अनुसरैं ॥१८४॥
अरु समकित विन सुधरै नाहि, शिवतरु मूल जु समकित आहि।
ताकी दशविध भूमि महान, मोखमार्ग प्रथम हि सोपान ॥१८५॥
सोरठा—आज्ञा मग उपदेश, सूत्र बीज सम्यक्त्व भव।
संक्षेप हि बहु देश, अर्थगाढ़ परगाढ़ दश ॥१८६॥
पूरव वरनी सोइ, ये समकित दश भूमिका।
देख लेउ भवि लोइ, सब नृप प्रतिगणधर भनी ॥१८७॥

चौपाई।

सो अब तुम नृप रुचि उपजाइ, सकल तत्त्व सुन श्रद्धा लाइ।
परमगाढ़ निश्चै मन दयौ, क्षायिक समकित दृढ़कर भयौ ॥१८८॥
अरु तुम षोडश भावन भाइ, केवल निकट प्रीति अधिकाइ।
इमि बांध्यौ तीर्थंकर गोत, जग अचरज करता यह होत ॥१८९॥
थिति छूटी सप्तम भू तनी, गतिकौ बंध जाइ नहि हनी।
प्रथम नरक पहलौ पाथरौ, कर्मपाक फल भुंजन करौ ॥१९०॥
वरष सहस चौरासी आव, तहँ तैं निकस पुण्य परभाव।
इत ही फिर उत्सर्पिणी काल, क्षेमंकर चौदह कुल बाल ॥१९१॥
पद्मनाभ तीर्थंकर देव, प्रथम हि तुम हूहौ सुन भेव।
धर्मतीर्थ वर्तक गुन गेह, यामें मत मानौ सन्देह ॥१९२॥
इहि विधि सुन श्रेणिक नृप तबै, अति आनंद बढ्यौ उर तबै।
मानो सफल जनम अब एह, जानौं तीर्थंकर पद नेह ॥१९३॥
बारह सभा सुनी यह कथा, भविजन मन सब हरषे जथा।
कै इक तब लीन्यौ वैराग, कै इक समकित धारौ मांग ॥१९४॥

कै इक श्रावक व्रत आदर्यौ, मोह तिमिर उरतैं परिहर्यौ।
पुन नृप जिन चरणाम्बुज नाम, अरु गणधरके प्रणमैं पाय॥१९५॥
प्रभुमुख धर्मसुधा इमि पियौ, फिर निजपुरको आवन कियौ।
अब जे समोशरन थित जीव, तिनकी संख्या सुनहु अतीव॥१९६॥

दोहा—इन्द्रभूति गणधर प्रथम, वायुभूति पुन दोय।
　　अग्निभूति जिन तृतिय भन, तुरिय सुधर्म जु होय॥१९७॥
　　मौर्य पंचम मौढ्य षट, पुण्यमित्र गुण भार।
　　नाम अकंपन अन्धवल, प्रभा सोम अविकार॥१९८॥

चौपाई।

समोशरण श्री सन्मति नाथ, एकादश गणधरके साथ।
चार ज्ञानके धरता सोइ, प्रभु वानी प्रगटत भ्रम खोइ॥१९९॥
अंग पूर्व धारी जे जती, सबै तीनसै उत्तम मती।
नव सहस्र नवसौ मुनिराय, प्रभुके चरन नमौ चित लाय॥२००॥
अवधिज्ञान भूपित निरभंग, ते मुनिवर तेरहसै संग।
केवलज्ञानी जिन सम जोइ, सकल सातसै वरनै जोइ॥२०१॥
ऋद्धि विक्रिया जुत जु महेश, नवसै उत्तम सबै मुनेश।
चार ज्ञानके धारक और, पूज्य पंचसै ते शिरमौर॥२०२॥
उत्तरवादी मुनि सुख खान, सो मुनि प्रगट चारसै जान।
सब मुनि जो पिंडीकृत करौ, सहस चतुर्दश उत्तम धरौ॥२०३॥
जे मुनि वर्धमान जिन संग, पहिरै तीन रतन निरभंग।
चंदनादि छत्तीस हजार, नमैं अर्जिका प्रभुपद सार॥२०४॥
दर्शन ज्ञान चरन तप व्रती, एक लक्ष श्रावक जिन व्रती।
तीन लक्ष श्रावकनी साथ, प्रभुपद नमैं शीस धर हाथ॥२०५॥

देविन सहित देव बुधवान, असंख्यात कहिये परवांन।
प्रभुपद कमल नमै कर सेव, पूजा स्तवन धरैं बहु भेव ॥२०६॥
सिंह सर्प आदिक तिरजंच, वैर विरोध न उपजै रञ्च।
असंख्यात सब समता लियें, जिनवर भक्ति धरैं निज हियें ॥२०७॥
ए सब द्वादश सभा मझार, निवसैं भक्तिभाव उरधार।
शनैः शनैः प्रभु करैं विहार, नाना देश ग्राम पुरभार ॥२०८॥
सबको करैं धर्म उपदेश, मुक्ति-पंथ भवि गहत महेश।
जिन सूरज जब किरण प्रकाश, मत अज्ञान भयो जग नाश ॥२०९॥
आरज खण्ड कियो संम्बोध, तीस वरष विहरै अवरोध।
क्रमकर पावापुरि उंद्यान, शुभ तडाग जहँ वारि निधान ॥२१०॥
तहां आइ प्रभु दीनौं ध्यान, तृतिय शुकल मंड्यो तिहि थान।
दिव्यध्वनि भाषा नहि होइ, समोशरण सब विहगै सोइ ॥२११॥
प्रतिमा जोग दियो भगवान, प्रकृति बहत्तर कीनी हान।
प्रथम देवगति पञ्च शरीर, अरु संघात पञ्च वर वीर ॥२१२॥
बंधन पंच जु अंग उपंग, षट संस्थान संहनन संग।
पंच वरण रस पञ्च द्विगन्ध, अरु असपरस अष्ट हि निरंध ॥२१३॥
देवगत्यानुपूरवी जात, गुरु लघु परघात जु अपघात।
शस्त अशस्त विहायोगती, अरु उश्वास अपरजापती ॥२१४॥
पुन प्रतेक थिर अथिर विनाश, शुभ अरु अशुभ जु दुर्भग त्रास।
अनादेय सुस्वर दुस्वरा, अयश असाती कर्म निहरा ॥२१५॥
नीच गोत्रकी कीनी हान, गये उलंघि तेरम गुणथान।
शुकल ध्यान पुन चौपद धार, चढ़ि अयोगि गुणथान सम्हार ॥२१६
जाके अन्तसमय द्वय मांहि, तेरहि प्रकृति खिपाई ताहि।

प्रथमहि सातावेदनि हनि, मनुष आयु मानुषगति भनी ॥२१७॥
मानुषगत्यानुपूर्वी जान, पंचम इन्द्रिय कीनी हान।
सुभग तहां आदेय विनाश, जस अरु उच्च गोत्र पुन भास ॥२१८॥
परजापति त्रस बादर कर्म, खिप तीर्थंकर गोत्र सुपर्म।
यह विध अष्ट कर्मको जार, ऊर्ध्वगमन कर शिवपुर धार ॥२१९॥
कार्तिक कृष्ण अमावस रात, स्वाति नक्षत्र समय परभात।
लोकशिखर राजत जिन वीर, किंचित ऊन जु चरम शरीर ॥२२०॥
कर्म काप हनि मुक्ति हि गये, सिद्ध अष्टगुण मंडित भये।
मोह कर्म अरि कीनौ नाश, क्षायिक समकित गुण परकाश ॥२२१॥
ज्ञानावरणी कर्म हि चूर, ज्ञान अनन्तानन्त जु पूर।
दर्शनवरणी कर्म निवार, तब अनंत दरशन गुण धार ॥२२२॥
अन्तराय प्रकृतिनको जार, बल अनंतको करी सम्हार।
नाम कर्मकी जब खय कीन, सूक्षम गुणकी प्रापति लीन ॥२२३॥
आयु कर्म जिन नाश्यौ जबै, अवगाहन गुण पायौ तबै।
प्रबल वेदनी कर्म निवार, तब ही गुरु लघु गुण अवधार ॥२२४॥
गोत्र करम जब कीनौ नाश, अव्याबाध गुण हि परकाश।
यह विधि भुगतैं सुख उतंग, निरुपम निराबाध निरभंग ॥२२५॥
नरसुर असुर खचरपति जोई, तीन जगत जिय सुख अवलोइ।
ते सब जो पिंडी कृत करैं, सिद्धन एक समय नहि जुरै ॥२२६॥
अब इहि चतुर निकायी देव, प्रभु निर्वाण जान सब भेव।
अपने अपने वाहन साज, परिजन जुत आये सुरराज ॥२२७॥
सब विभूति पूरब व्रत जान, गति नृत्य उत्सव उर आन।
अन्तिम कल्याणक जिनराय, पावापुर पूजा करवाय ॥२२८॥

प्रभु तन खिर कपूरवत जाय, नख अरु केश रहे समुदाय।
ते लै सुरपति जिन तन रच्यौ, मणिमय शिविकामें पुन सच्यौ॥२२९॥
भक्ति सहित तहँ पूजा करी, अष्ट द्रव्य जल आदिक धरी।
चन्दन अगर कपूर मंगाय, सर उतंग कीनो अधिकाय॥२३०॥
तहँ जिन तनु मायामय धरयौ, अग्निकुमार प्रणाम जु करयौ।
उठी मुकुट ज्वाला मणि तनी, अति विकराल अगिनकी घनी।२३१।
भस्मीकृत सर भयो अभंग. दश ही दिश फैल्यो जु सुगंध।
सब सुर जय जयकार जु करैं, उर आनंद भक्ति अति धरैं॥२३२॥
प्रथम इन्द्र कर भाल लगाय भस्म वन्दना किय अधिकाय।
अरु सब चतुर निकायी देव, निज निज शीस नवन भुव एव॥२३३॥
अवनि पवित्र जान अधिकाय, फिर पूजा कीनी सुरराय।
नाटक रंग कियौ समुदाय, देवन सहित परम उत्साय॥२३४॥
यहि अन्तर गौतम गणराय, शुकलध्यान बल कर्म खिपाय।
केवलज्ञान भयौ अवदात, इन्द्र आदि सुर कीनी जात॥२३५॥
गंधकुटी तहँ रची कुबेर, नाना भांति न लाई देर।
भविजन हित सम्बोधन काज, विहरै सभा सहित गणराज॥२३६॥
दोहा—अहुठ मासकर हीन है, रही वरप जब चार।
श्री सन्मति जिन शिव गये, चौथे काल मझार॥२३७॥

श्री वर्धमान जिनेन्द्रके पूर्वभवोंका समुच्चय वर्णन—

पद्धड़ि छन्द।

भव प्रथम पुरूख भील ईश, सम्बोधे वनमें श्री मुनीश।

१—जब भगवान महावीर मोक्ष गये थे तब तीन वर्ष साढेआठ माह चौथे कालके बाकी थे।

दूजी भव उपजौ भिल्लदेव, सौधर्म स्वर्ग बहु सुख्य लेव ॥२३८॥
तीजी भव भरत चक्रेश पुत्र, मारीच कुंवर मत थाप उत्र।
चौथे भव ब्रह्म जु स्वर्गवास, पंचम भव ब्राह्मण जटिल जास ॥२३९॥
सौ धरम स्वर्ग छट्ठे जु पाय, पुन पहुपमित्र दुज सप्तमाय।
अष्टम सौधरम सु स्वर्ग देव, द्विज अग्निसिंध नवमै गनेव ॥२४०॥
दशमें सुर सनत्कुमार होइ, द्विज अग्नि मित्र गेरम हि सोइ।
माहेन्द्र स्वर्ग द्वादशम वास, तेरम द्विज भारद्वाज जास ॥२४१॥
मिथ्यामत सेयौ बहु प्रकार, परिव्राजक दीक्षा धरि असार।
चौदम भव स्वर्ग महेन्द्र होई, तहँ गिर बहु परजाय सोइ ॥२४२॥

दोहा—इतर निगोदहिं सो गयौ, सागर एक प्रजन्त।
कबहूं असुर कुमार हो, नरकन मांहि फिरन्त ॥२४३॥

पद्धड़ि छन्द।

तब साठ सहस तरू आक होइ, बहु पायौ दुःख न गनहि कोइ।
तहँ असिय सहस भव सीपजान, फिर नीम वृक्ष भयौ दुःखखान॥
सो बीस सहस तन धर उतेह, तहँ करम विपाक जु वश परेह।
पुनि केलवृक्ष सो भयौ आन, भव नवै सहस ताको प्रमान ॥२४५॥
तह चंदन वृक्ष जु सहस तीस, लहि दुःख सहे जानैं जिनीश।
पुन कनयड कोड़ी पंच सोइ, तह तीस कोड़ जलमच्छ होइ ॥२४६॥
फिर निकसि भयौ गनिका जु आन, भव नवै सहस तन धरिउ जान।
पुन पंच कोड़ि सो चिड़ियमार, तह बीस कोड़ भव गज दुःख भार॥
तहँ तैं फिर खर भयो साठ कोड़ि, पुन तीस कोड़ भव खान जोड़ि।
तब भयौ नपुंसक साठलाख, पुन बीसकोड़ तिय वेद भाख ॥२४८

तह रजक भयौ नर नवै लाख, सो आठ कोड़ पुन तुरिय साख।
भवसागरमें रुलियौ निदान, मनजार भयौ तह दुःख खान ॥२४९
तह धरी देह सो वीस कोड़ि, भ्रमियो चिरकाल प्रजाय छोड़ि।
अब साठ लाख भयौ जैन राय, तहँ कर्म न छोड़े कर उपाय ॥२५०
फिर भोगभूमि धर असी लक्ष, तहँ पायौ सुख्य जु विविध दक्ष।
पुन सुरग लोक सुर भयौ सोइ, तहँ असी लक्ष तन धर्यौ जोइ ॥
क्रम सौं गिर नारी गरभ जान, है साठ लक्ष ताको प्रमान।
पुन पुन भ्रमि भ्रमि संसार घोर, बहु बहु प्रजाय धारियो जोर ॥
इह कर्म शृङ्खलन पर्यौ सोइ, त्रस थावरमें तन धरै जोइ।
तहँ सर्व दुःख नानाप्रकार, मिथ्यात सु फलियौ यह अपार ॥ ५३

अब भटकि भयौ द्विज थावराख्य, पूरववत दिक्षा धरिय साख्य।
फिर भयौ महेन्द्र जु स्वर्ग देव, देविन कर भुगतै सुख चनेव ॥२५४॥
तीजै भव श्री नृप विश्वनन्द, कर तपसा धार निदान बन्द।
फिर महाशुक्र सुर भए सोइ, सुख कीनै बहु वर्णन न होइ ॥२५५॥
तहँ तैं चय पोदनपुर अधीश, केशवपद प्रथम त्रिपृष्ट ईश।
पुनि पयौ सप्तमो नरक जाय, दुख सहे तहां धर दुष्ट काय ॥२५६॥
फिर निकस धरी सिंह हि प्रजाय, अति रौद्र ध्यान सौं मरण पाय।
तब प्रथम नरक तहँ गयौ सोई, तहँ जाय सहे बहु क्लेश जोइ ॥२५७॥
पुन भये सिंह हिमगिरि गिरीश, तहँ संबोधै चारण मुनीश।
सौधर्म स्वर्गमें सिंहकेत, सुर लहे सुख्य देविन समेत ।२५८॥
कनकोज्वल विद्याधर जु राय, तिन धरी तपस्या जैन पाय।
फिर लांतव सुर भव द्वादशेव, जहँ नाम लह्यौ जु महर्धदेव ॥२५९॥

हरिषेण नृपति तेरम गनेव, तजि राजऋद्धि वनमें वसेव।
पुन महाशुक्र सुर लहिउ वास, सुख भुगते नाना विधहि जास॥२६०॥
प्रियमित्र चक्रवति गुण-गरीश, पूरब विदेह छहखण्ड ईश।
सहस्रार स्वर्ग पुन सुख्य जास, अट्ठारह सागर आयु तास॥२६१॥
सत्रमभवमें नृपनन्द नाम, षोडश कारण भाइ सुठाम।
अच्युत सुरेश पद लहिउ फेर, सुख कीनौ बाइस जलधि वेर॥२६२॥
तहँ तैं चय त्रिशला उर वसेय, श्री वीर जनम जग प्रगट धेय।
तप केवलज्ञान जु साथ एव, निर्वाण गये वदौं सु देव॥२६३॥

दोहा—आदि भवांतर चौदहा, अन्तहि उन विशेव।
मध्यम भव भटके बहुत, थावर त्रस नर देव॥२६४॥

गीतिका छन्द।

चार गति सुख दुःख भुंजिय, तीर्थपद शुभ पाइयो।
साधै सु चारित जोग उत्तम, सकल कर्म खिपाइयो॥
सुर असुर नर खगपती मुनि सब, सदा सन्मति पद नये।
तह साधि शिवपुर सिद्ध पद लहि, अष्टगुण मंडित भये॥२६५॥

वीर जिन जन चरन पूजत, वीर जिन आश्रय रहै।
वीर नेह विचार शिव-सुख, वीर धीरजको गहै॥
वीरं इन्द्रिय अघ घनेरे, वीर विजयी हौं सही।
वीर प्रभु मुझ बसहु चित नित, वीर कर्म नशावही॥२६६॥

दोहा—श्री सन्मति प्रभु चरित गुण, वरण्यौं आगम देख।
अब कवि ता कुल कहऊँ कछु, उतपति तिनहि विशेख॥२६७

× × ×

कवि परिचय।

चौपाई।

चार वरणमें वैश्य जु संत, तिनमें कवि कुलको अवतंत।
सबहि नैत चौरासी कही, जुदी जुदी भाषौं यह मही ॥२६८॥
गोलापूरव प्रथम बखान, गोलालारे दूजै जान।
गोलसिंघारे तीजै धार, चौथे साख-बन्ध परवार ॥२६९॥
पंचम जैसवालको जान, छठम हूमडे कहे बखान।
कठनेरे सातम है सोइ, खण्डेलवाल आठम गुण जोइ ॥२७०॥
नैत बरहिया नवमें कहे, सिरीमाल दशमें पुन लहे।
एकादशम लमेचू जान, ओसवाल द्वादश परवान ॥२७१॥
त्रयदश अग्गरवारे गोत, तिनमें जे जैनी शुभ होत।
इतनी साढ़ेबारह न्यात, धर्मसनेह पांत इक भांत ॥२७२॥
जिनचेरे चउदम वर भये, बघेलवार पन्द्रम वरनये।
षोडश पद्मावति पुरवार, ठस्सर सत्रहमें गुन धार ॥२७३॥
गृहपति आठारम तिहि शाख, उनविंशतिमें नेमा भाख।
बीसम नैत असैटी लहे, पल्लिवार इकवीसम कहे ॥२७४॥
पोरवार बाइसमौं धार, ढढतवाल तेईस निहार।
चौबीसम माहेश्वर वार, इतनें लौं कछु जैन लगार ॥२७५॥
मण्डित बाल डोडिया जान, सहेलवार हरसौरा मान।
गोरवार पुन नारायना, सीहोरा भटनागर गना ॥२७६॥

चीतोरा जु भटेरा होइ, हरिआ और आकरा सोइ।
शचनगरिया जानो दोइ, मोर बाइडाको पुनि सोइ ॥२७७॥
नागर और जलाहर कहे, नरसिंगपुरी कपोला लहे।
डासीवाल नगेन्द्रा लेव, गौड़ फेर श्रीगौड़ जु भेव ॥२७८॥
गागड़ डाख डायली जान, बघनौरा जुद सौग वान।
घन्नेरा कंथेग हाल, कोरवाल अर सूरीवाल ॥२७९॥
रैकवाल पुन मिंधवाल, नैत सिरियां लाड़ विशाल।
लड़ेळवार अरु जोग प्रबल, जंबूमग सेठिया अपर ॥२८०॥
चतुरथ पंचम दोमै कूर्व, अचिरवाल अजुध्यापूर्व।
नानावाल मडाहर कहे, कारटवाल करहिया लहे ॥२८१॥
अनदोरह हरदोरह सोइ, जेहरवार जेहरी दोइ।
माथ करार नासिया गत्र, कोलपुरी यम चौरा हेव ॥२८२॥
अंकन तह भैमन पुरवार, पवड़ावेस औमडे सार।
ए जानौ चौरासी नेत, वैश्य वरण सब ही थिर जेत ॥२८३॥

दोहा—तिनमें गोलापूर्वकी, उतपति कहौं बखान।
संबोधे श्री आदि जिन, इक्ष्वाक वंश परवान ॥२८४॥

चौपाई।

गोयलगढ़के वासी तेस, आए श्री जिन आदि जिनेश।
चरणकमल प्रनमै धर शीस, अरु अस्तुति कीनी जगदीश ॥२८५॥
तब प्रभु कृपावंत अति भये, श्रावक व्रत तिनहूको दये।
क्रिया चरणकी दीनी सीक, आदर सहित गही निज ठीक ॥२८६॥

पूर्वेहि थापी नेत जु एह, अरु गोयलगढ़ थान कहेह।
तातें गोलापूरब नाम, भाष्यो श्री जिनवर अभिराम * ॥२८७॥

दोहा—गोलापूरब भेद त्रय, प्रथम विसविसे जान।
और दशविसे पंचविसे, कहौं बेंक गुन खान ॥२८८॥

सवैया इकतीसा।

खांग फुसकेले औ चन्देरियां मरैयां पिप-
रैहिया बनोनिहा सुटैटवारे जानिये।
भर्तपुरियां छोरंकटे कोटियां दुगेले औ-
तिगेले डुंडफारे वरधैरिया बखानिये॥
इन्द्रे महाजेने खुरंदेले मिर्लसैया रौते-
ले जतहरिया निरमोलके प्रमानिये।
धोनी पैथवार हैरदेले कपासियां रैसे-
गोदरे गगोरियां धवलियां जु ठानिये ॥२८९॥
कौरचोड़ सैरखड़े साधारैने टीका केरावंत-
भदरोहियां सौनी सोमैरा जु लीजिये।
पतैरि धुधोलियां पैचलौरे भैंडोले सैन-
कुटा हीरापुरिया चेरियां सुन लीजिये॥

---

* ग्रन्थकर्त्ताने गोलापूर्वोंकी उत्पत्तिके विषयमें जो उल्लेख किया है उसका किन्हीं भी उपलब्ध प्राचीन ग्रन्थोंसे समर्थन नहीं होता, इसलिये उसपर सहसा विश्वास नहीं होता। उक्त उल्लेखको सच माननेवाले विद्वानोंको इसके प्राचीन-प्रबल प्रमाण खोजना चाहिये।

कैनकपुरिया[43] कैनसेनहा[44] पटोरियाँ[45] औ—
दूरे[46] रांधेले[47] सांधेले[48] पांडेले[49] प्रमानिये।
पंचरत्न[50] पचैरसे[51] चौसरा[52] कैनकपुरी[53]—
धमोनियाँ[54] औ दगैयां[55] गोरिहाँ[56] वखानिये* ॥२९०॥

दोहा—सिरसपुरी[57] अरु कौनियाँ[58], ए अंठावन बैंक।
'नवल' कहे संक्षेप मौं, निज कुल वरनौं नेक ॥२९१॥

चौपाई।

बैंक चंदेरिया खेरे चार, प्रथम हि बड़ दूजे परधार।
खाम तृतिय खेरो पहिचान, चौथे गेरू चोरा जान ॥२९२॥

---

* छन्द त्रिभंगी।

खाग पुस्केले और तिगेले सुर्देले रस मानि कहे।
बड़घरिया मरैया अरु पिपरैया साधेले रातेले ठहे ॥
साधारन शेखर भरतपुरिया पद्म रत्न रांधेले ठहे।
टीकाके रावत अरु धमोनियां भिल्सैयां सुपडेले लहे ॥ १ ॥
नाहर चन्देरिया अरु बनोनियां टटवार हरदेले ठहे।
उतहरिया पतरिया धोनी कपासिया चौसरा अरु छोकड़े कहे ॥
मजगयां लखनपुरिया जु गोरिहा गोदरे हीरापुरिया सहे।
निर्मोलक गोदरे इन्द्र महाजन दगैयां कोठिया ठहे ॥ २ ॥
कोनिया गढले अरु पटोरिया डडफार वेरिया कहे।
पचरसे दुगले अरु धवलिया सत्रोलिहा सनकुटा गहे ॥
बदरोठिया करैया अरु जुझौतिया पैंधवार कनसेनिया कहे।
गन्द्रप रु कनकपुरिया रु सिरसपुरिया अठावन गोत्र गहे ॥ ३ ॥

नोट—इस पाठान्तरका सकलन राजवैद्य प० बारेलालजी पठा द्वारा भेजी हुई 'गोलापूर्व गोत्रावली परिचय' की सामग्रीसे किया गया है।

बड़ चंदेरिया प्रथम बखान, गोत्र प्रजापति तिनहि बखान।
चतुरथ काल आदि ही मान, गोल्हन शाहु चंदेरी थान ॥२९३॥
तितने जो सब वरनन करौ, बाढ़ै ग्रंथ पार नहिं धरौ।
पंचम काल भेलसी-ग्राम, भीषम शाहु बसै तिहि ठाम ॥२९४॥
चार पुत्र तिनके बड़भाग, कुलदीपक धर्म हि अनुराग।
प्रथम बहोरन गुनकी खान, दुतिय सहोदर कृपा निधान ॥२९५॥
अहमन तीजे सुख अति धर्म, चौथे रतनशाह घर धर्म।
एक दिना शुभ या कहि पाय, मंत्र उपाय कियौ बहु भाय ॥२९६॥
पिता सहित मन कियौ विचार, कीजे कछु धर्म विस्तार।
राज मान अरु धन कन सबै, ताको फल कछु लीजै अबै ॥२९७॥
तबहि प्रतिष्ठाकी विधि करी, रच्यौ दिवालौ उत्तम घरी।
जिन प्रतिमा पधराई जहां, तोरन ध्वजा छत्र अति तहां ॥२९८॥
श्रावक देश देशके आइ, तिनकौ आदर अधिक कराइ।
अरु पूजाकी विधि सब कीन, जथाजोग भावाश्रुत लीन ॥२९९॥
चार संघको दीनो दान, अरु कीनौ सबको सन्मान।
पुन रथको फेरौ चल आप, ऊपर श्री जिनप्रतिमा थाप ॥३००॥
नगर चौधरी लोधी जान, तिन कीनी अधिकी सनमान।
चार संघ मिलि टीका कियौ, 'सिंगई' पद सब जुरके दियौ ॥३०१॥
दोहा—सोरहसौ इक्यावनै, अगहन शुभ तिथि वार।
नृप जुझार बुन्देल कुल, तिनके राज मंझार ॥३०२॥

यह संक्षेप बखान कर, कह्यौ प्रतिष्ठा धर्म।
परिजन जुत वाड़ी विभव, तिन उत्पति बहु धर्म ॥३०३॥

चौपाई।

सिंगही रतनशाह गुन जुत्त, तिनके भये जदोले पुत्त।
तिनके तनुज अनंदीराम, तिनके सुतहि जगत मनिराम ॥३०४॥

दोहा—क्षेत्रविपाकी प्रकृति वश, तज्यौ मेलसी ग्राम।
देश खटोला निज नगर, आय कियौ विश्राम ॥३०५॥
तिनकै उपजै चार सुत, प्रथम हि केशव राय।
हरजू खाडेराय पुन, परमानन्द जु भाय ॥३०६॥
तिनमें खाडेरायकै. तीन पुत्र परवान।
प्रथम हि देवाराय भन, भोज इन्द्र मनमान ॥३०७॥
सिंघई देवाराय घर, प्रानमती उर धार।
चार पुत्र तिनके भये, कहौं नाम अनुसार ॥३०८॥

चौपाई।

प्रथमहि नवलशाह जानियौ. दूजै तुलाराम मानियौ।
तीजै वासीराम बखान, चौथै बांधव सिंघ खुमान ॥३०९॥
प्रथमहि नवलशाह तिहि नाम, ग्रंथारंभ कियौ अभिराम।
अब तिहि देश राजके धनी, वंश बुन्देला सब शिरमनी। ३१०॥

दोहा—क्षत्रशाल पत्ती प्रबल, नाती श्री हिरदेश।
सभा सिंघ सुत हिन्दुपति, करहि राज इहि देश।३११।
ईति भीति व्यापै नहीं, परजा अति आनंद।
भाषा पढ़ैं पढ़ावहीं, खटपुर श्रावक वृन्द ॥३१२॥

चौपाई।

ताहि समय कर मनहि हुलास, कीजै कछु श्री जिनवर रास।
भक्ति प्रभाव बढ्यौ उर आन; तब प्रभ वर्द्धमान गुण खान ॥३१३॥
कह्यौ अस्तवन भाषा जोर, नवल सहित मद तज मन मोर।
सकलकीर्ति उपदेश प्रवांन, पिता पुत्र मिलि रचे पुरान ॥३१४॥
सन्मति जिन गुण कोटि निबद्ध, यह पुनीत अति चरित संबद्ध।
जो सेवै निज हिरदैं ल्याय, ताके उर सब पातक जाय ॥३१५॥
जो यह ग्रन्थ पढ़े उर धार, औरनको जु पढ़ावै सार।
ते परभवहू हैं गुणवान, और प्रगट अति उत्तम ज्ञान ॥३१६॥
लिखै ग्रन्थ यह परम पवित्त, औरे देइ लिखाय सु चित्त।
मति श्रुत ज्ञान लहैं ते जीव, तप कर केवल पति जग पीव ॥३१७॥
राग द्वेष नाशन गुणखान, कटै कर्म अरि बेल निदान।
या तन अंतकाल लग सार, नंदौं आरजखण्ड मंझार ॥३१८॥

दोहा—अद्भुत षोडश स्नपन फल, जन्मवीर जिनराज।
तिन गुण षोडश पर करण, रच्यौ ग्रन्थ भवि काज ॥३१९॥
षोडश कारण भावना, भाई पूरब ठाव।
तीर्थंकर पद लहि चरित, षोड़श तिनहि प्रभाव ॥३२०॥
ऊर्ध्वलोक षोडश स्वग्ग, पुण्य लहै अवतार।
तिन यह षोडश सर्ग[1] कर, लीनौ ग्रन्थ हि पार ॥३२१॥
षोडशकला जु चन्द्रमा, पूरणमासी जान।
तिन षोडश अध्याय कर, पूरन भयौ पुरान ॥३२२॥

१—सर्ग अध्याय।

ज्यों भामिनि उपमा वसै, लैंहिं षोडश शृंगार ।
यह पुरान अनुपम लसै, कहि षोडश अधिकार ॥३२३॥
सप्त प्रकृति उपशम खिपक, नोकषाय खय काज ।
ता हित नव सत माघ कर, रच्यौ ग्रन्थ जिनराज ॥३२४॥
अष्ट कर्म नाशे सबै, अष्टम पृथिवी वास ।
तिन वसु दून दुवार कर, अस्तुत कियौ अभ्यास ॥३२५॥
सात महीना आदि लिख, कछु अंतर नव अंत ।
थिरता अलपहि ग्रंथ रचि, षोडश मास प्रजंत ॥३२६॥

पुराण सङ्ख्या वर्णन—

छप्पय ।

उनतिस सय छ्याछटै, चौपही कही प्रवानै;
दोहा चउसय आठ, सोरठा द्वादश ठाने ।
त्रेशठ गीता छन्द जोगिया, पंचाही धर;
वसु इकतीसा जान, चाल सैताल ठीक करि ।
अधिक सतासी एक सय, छन्द पद्धरी लेखिये,
षट तेइसा गाथा सु चउ, छप्पय आठ विशेषिये ॥३२७॥

दोहा—करखा इक उनतीस, अरिल पंच चच्चरी ठान ।
छन्द त्रिभङ्गी एक दश, काव्य एक परवान ॥३२८॥

सोरठा—अब इनको करजोर, अठतिसशय अरु छय अधिक ।
अरु श्लोकन जोर, षट सहस्र परवांन मिति ॥३२९॥

१—दुगनै ।

दोहा—ऊर्जयन्त विक्रम नृपति, सम्वत सरगत तेह।
सत अठार पच्चिस अधिक, समय विकारी ऐह ॥३३०॥
द्वादशमें सूरज गनौ, द्वादश अंश हि ऊन।
द्वादशमौ मासहि भनौ, सुकल पक्ष तिथि पूर्न ॥३३१॥
द्वादश नखत बखानिये, बुद्धवार वृध जोग।
द्वादश लगन प्रभातमें, श्री दिन लेख मनोग ॥३३२॥
ऋतु वसंत उर फूल अति, फाग समय शुभ होय।
वर्द्धमान भगवान गुण, ग्रन्थ समापति कोय ॥३३३॥

अथ कवि लघुता वर्णन—

दोहा—द्रव्य नवल क्षेत्रहि नवल, काल नवल है और।
भाव नवल भव नवल अति, बुद्धि नवल इहि ठौर ॥३३४॥
काय नवल अरु मन नवल, वचन नवल विसराम।
नव प्रकार जुत नवल यह, नवलशाह कवि नाम ॥३३५॥

छप्पय।

सारस्वत नहि पढ्यौ, काव्य पिंगल नहि सिख्यौ;
तरक छन्द व्याकरण, अमरकोष हि नहि दिख्यौ।
अल्पबुद्धि थिर नांहि, भक्तिवश भाव बढ़ायौ;
जिन मतके अनुसार, ग्रन्थको पार लगायौ॥
बुद्धिवन्त सज्जन विनय, हास्यभाव मत कोई करो;
तुकहीन छन्द जो अमिल जौ, तो विचार अक्षर धरौं।

गीतिका।

कीर्ति जस नहि चाह मेरे, लाभ लालच उर नहीं।

कवित्व छन्द न मान मनमें, तुच्छ बुधि मुझ है सही ॥
ग्रन्थ परमारथ प्रकाशक, स्वपर कारज हित कियौ ।
करम हानि निमित्त निहचै, आत्मापद थिर लियौ ॥३३७।
वीर जिनवर चरित उत्तम, भाव जुत जो सीखही ।
सुनै जे नर त्याग चिन्ता, शुद्ध थिर मन राखही ॥
होइ आठौं सिद्धि नवनिधि, मन प्रतीति धरै सही ।
ज्ञान दरशन चरण आदिक, मुक्ति सामग्री यही ॥३३८॥
सकल तीर्थंकर जु नायक, गुण छयालिस जासुतै ।
सिद्धि जगत निवार अनुपम, अष्ट गुणमय सासुतै ॥
सूरि पंचाचार मंडित, परम पाठक उर धरै ।
साधु जोग अभंग साधन, सदा मो मंगल करै ॥३३९॥
दोहा—पंच परम गुरु जुग चरण, भविजन बुध जुत धाम ।
कृपावंत दीजै भगत, दास 'नवल' परणाम ॥३४०॥

इति श्री कविरत्न नवलशाह विरचित भाषा छंदोबद्ध वर्धमानपुराणमे भगवद्विहार, श्रेणिक कथा, निर्वाण कल्याणक, कवि आदिका वर्णन करनेवाला सोलहवां अधिकार पूर्ण हुआ।

समाप्त ।

पं० पन्नालालजी 'वसंत'
साहित्याचार्य कृत–

मोक्षशास्त्र

सचित्र और सटीक।

पृ० २५०, ६ चित्र, २० चार्ट और
७०० शब्दोंके कोष सहित

मूल्य–सिर्फ १)

मैनेजर, दिगम्बर जैन पुस्तकालय,
सूरत।

"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस–सूरत।